बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन

(मध्य प्रदेश प्रान्त के डिण्डौरी जनपद के विशेष सन्दर्भ में)

वाणिज्य विषय में पी-एच०डी० उपाधि
हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
में प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

गवेषक

देवेन्द्र कुमार खरे
(प्रवक्ता वाणिज्य)
वीर भूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
महोबा (उ०प्र०)

शोध निर्देशक

डॉ० किशन कुमार
(रीडर वाणिज्य)
राजकीय महाविद्यालय बेरी शिवराजपुर
कानपुर (उ०प्र०)
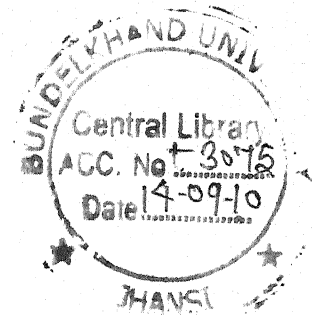
2008

डॉ० किशन कुमार
विभागाध्यक्ष

वाणिज्य विभाग
राजकीय महाविद्यालय
बेरी शिवराजपुर (कानपुर)

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री देवेन्द्र कुमार खरे ने वाणिज्य विषय में पी-एच.डी. की उपाधि **"बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेष्णात्मक अध्ययन"** **(मध्य प्रदेश प्रान्त के डिण्डौरी जनपद के विशेष संदर्भ में)** हेतु मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के पत्रांक बु0वि0/प्रशा0/शोध/ 2005/169-71 दिनांक 18.10.05 के द्वारा पंजीकृत हुए थे ।

श्री देवेन्द्र कुमार खरे ने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय के नियमानुसार वांछित अवधि तक शोध केन्द्र में उपस्थित रहकर शोध के सभी चरणों को अत्यन्त सन्तोषजनक रूप से परिश्रमपूर्वक सम्पन्न किया है।

मै इस शोध प्रबन्ध को वाणिज्य विषय में पी-एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक :-

Kishan Kumar

(डॉ0 किशन कुमार)
शोध निर्देशक

<u>घोषणा</u>

मैं घोषणा करता हूँ कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के अन्तर्गत वाणिज्य विषय में डाक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध **"बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन"** (**मध्य प्रदेश प्रान्त के डिण्डौरी जनपद के विशेष संदर्भ में**) मेरा मौलिक कार्य है। मेरे अभिज्ञान में प्रस्तुत शोध का अल्पांश अथवा पूर्णांश किसी भी विश्वविद्यालय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी अथवा अन्य किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक :- 30.6.08

(देवेन्द्र कुमार खरे)
गवेषक

आभार

शोध विधा के दुर्गम पथ को पार कर पाना मुझ जैसे अल्पज्ञ शोध गवेषक के सामर्थ्य से परे था। ऐसे क्षणों में शोध विधा में महारत प्राप्त मेरे श्रृद्धेय डॉ० किशन कुमार , विभागाध्यक्ष वाणिज्य, राजकीय महाविद्यालय बैरी शिवराजपुर (कानपुर) के कुशल निर्देशन एवं आशीष के बल पर मैं इस शोध प्रज्ञा को पूरा कर सका । डॉ० किशन कुमार जी मेरे शोध निर्देशक ही नहीं बल्कि मेरे विद्या-भवन के आराध्य है जिनका स्नेहिल सहयोग सदैव मेरे साथ रहा।

शोध निर्देशक के रूप में उनके अमूल्य निर्देशन, सुझाव एवं लक्ष्य पाने की जिन विधाओं से उन्होंने मुझे परिचित कराया वह स्मरणीय ही नहीं बल्कि जीवन में धारण करने की अमूल्य धरोहर है, मैं उनकी इस अनुकम्पा का सदैव ऋणी रहूँगा । मैं अपनी अशेष श्रृद्धा उनके सम्मान में अर्पित करता हूँ।

मै डॉ० रमेश चन्द्र, संयुक्त शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) उ.प्र. इलाहाबाद के प्रति नतशीष हूँ जिनकी प्रेरणा और स्नेहिल सानिध्य इस शोध प्रज्ञा पथ पर मेरे साथ रहा । मै डॉ० बी.एल.शर्मा प्राचार्य, वीरभूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय महोबा के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने हर क्षण मुझे सहयोग प्रदान किया ।

मैं डॉ० स्वामी प्रसाद, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, उ०प्र० के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके असीम सहयोग एवं उदारतापूर्ण व्यवहार से यह शोध यज्ञ पूरा हो सका।

मैं डॉ० एल.सी.अनुरागी , प्रवक्ता राजनीति विज्ञान विभाग, बीर भूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महोबा के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके प्रेरणाप्रद सहयोग ने मेरी कलम की कोर को धार प्रदान की।

मै डॉ० ए.के.सैनी , विभागाध्यक्ष रसायन विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय अलीगंज लखनऊ के प्रति श्रृद्धा अर्पित करता हूँ जिनके सतत् सहयोग ने सदैव मुझे शोध पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

मै अपने पूज्य पिता श्री जगदीश प्रसाद खरे एवं जननी श्रीमती विमला खरे के प्रति चिर-ऋणी रहूंगा जिनका इस शोध लक्ष्य को प्राप्त करने में सदैव अप्रत्यक्ष आशीष प्राप्त होता रहा है।

मैं अनुज श्री जितेन्द्र खरे के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनका सहयोग सदैव पग-पग पर प्राप्त होता रहा है।

मैं अपनी भार्या श्रीमती ममता खरे के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने मुझे पारिवारिक दायित्व से मुक्त रखकर मुझे इस लक्ष्य को पाने में नित नवीन उत्साह से सहयोग प्रदान किया। मैं अपनी पुत्री मेहा एवं पुत्र मिहुल के प्रति भी आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने वात्सल्य के क्षणों से दूर रहकर भी इस कार्य को पूरा करने में अविस्मरणीय सहयोग किया।

मै वीरभूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय महोबा के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति विनयावत हूँ जिनसे पुस्तकीय सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा।

मैं डिण्डौरी क्षेत्र के आदिवासी बैगा परिवारों की महिलाओं एवं पुरूषों तथा युवा सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग के बिना तथ्यों का संग्रहण असंभव था।

शोध टंकण के लिए श्री जनक, आर.बी.कम्प्यूटर्स, जजी रोड हमीरपुर एवं आवरण सज्जा के लिए अहमद बाइंडर्स, कानपुर बधाई के पात्र हैं जिनके अपूर्व

सहयोग से मेरा यह अभीष्ट पूर्ण हो सका। इन सभी के अतिरिक्त मै उन सभी जाने-अनजाने सुधीजनों की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोध प्रज्ञा की साधना को पूर्ण करने में मेरा सहयोग किया।

दिनांक :- 30.6.08

(देवेन्द्र कुमार खरे)
गवेषक

अनुक्रम

*****

अध्याय : प्रथम

प्रस्तावना

1. प्रस्तावना

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश और भारतीय लेखकों ने अंग्रेजों के प्रशासनिक हितों को ध्यान में रखकर आदिवासियों के विषय में लेखन कार्य किया है । तत्कालीन सत्ता के प्रति प्रतिबद्ध इन लेखकों ने आदिवासियो को शेष भारतीय जनसंख्या से सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रजातीय दृष्टि से भिन्न बताया है । पृथक्करण की उनकी सुनियोजित चाल का ही यह परिणाम है । भारत के प्रायः सभी आदिवासी वृहद भारतीय समाज के ही अंग रहे हैं। शेष आबादी से पृथक वन्यांचल में रहने के कारण उन्हें भारतीय समाज में पंचम वर्ण की स्थिति प्रदान की गई है। इस तथ्य के साक्षी हमारे विविध शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। आदिवासी और शेष भारतीय मूलतः एक ही व्यवस्था के अंग होने के बावजूद उनमें जो अन्तर दिखाई देते हैं, वे मुख्यतः आवास सम्बन्धी पृथकता और उससे उत्पन्न सम्पर्कहीनता का परिणाम है । आदिवासी हमारे अतीत के प्रतिनिधि हैं। हम परिवर्तित और विकसित इसलिए हुए कि हम परस्पर सम्पर्क में रहे तथा हमें विकास के अवसर मिलें। आदिवासी इसलिए पिछड़ गए क्योंकि आन्तरिक वन्य व पर्वतीय, दुर्गम अंचलों में रहने के कारण वे शेष आबादी से कट गए, उनके साथ सम्पर्क में निरन्तरता नहीं रह पाई तथा विकास के अवसर उन्हें नहीं मिले।

1.1 भारतीय जनजातीय समाज

किसी मानव समूह को एक जनजाति मानने के लिए यथार्थ रूप से कौन-कौन सी कसौटियाँ हैं ? जनजातीय जीवन की क्या विलक्षणता है ? यह रोचक किन्तु दुःखद है कि मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक तथा ऐसे ही दूसरे लोग जो जनजातियों तथा उनकी समस्याओं से सैद्धान्तिक स्तर अथवा व्यवहारिक आधार पर जुड़े रहे हैं, अवधारणा एवं परिषाषा के विषय में एकमत नहीं हैं।

डॉ0 हरीचन्द्र उत्प्रेती (1970) ने उन विभिन्न नृतत्वशास्त्रियों का उल्लेख किया है जिन्होंने जनजातियों को भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया है । जैसे हार्बट रिजले, के. मार्टिन आदि ने आदिवासी, जे.एच. हट्टन ने आदिम-जातियाँ, बेनस (1970) ने हिल ट्राइब्स का नाम दिया है। वैरियर इल्विन (1943) बैगा जनजाति को एक ओर देश के मूलवासी की संज्ञा से विभूषित किया है, तो दूसरी ओर आदिवासियों की दयनीय स्थिति से प्रभावित होकर डॉ0 आर.के.दास एवं डॉ0 एस.आर.दास (1955) ने दलित मानवता की संज्ञा दी है। एम.एल. श्रीकान्त (1970) ने जनजातियों के वर्गीकरण के संदर्भ में इन्हें अरण्यक, रानीपरक तथा आदिवासी कहा है, जो अलग-अलग समयों में अलग-अलग नामों से जानी गई ।

गिलिन एण्ड गिलिन ने अपनी पुस्तक कल्चरल सोसियोलाजी में जनजाति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "ऐसे समूहों को जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी सामान्य संस्कृति है।"[1]

एस.एफ.नाडेल ने जनजाति को स्वयं में एक समाज माना है - ऐसा समाज जो स्वयं में परिपूर्ण होता है, जिसके स्वयं के नियम विधान होते हैं तथा जो सदस्यों के आचार-व्यवहार को नियन्त्रित करता है।[2]

डब्लू.एच.आर.रिवर्स ने अपनी परिभाषा में लिखा है कि 'यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।' रिवर्स ने अपनी परिभाषा में सामान्य निवास का उल्लेख नहीं किया है क्योंकि अनेक जनजातियाँ खानाबदोश जीवन भी व्यतीत करती हैं।

सर्वसम्मत तथ्य है कि आदिवासी समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था, पुराकथा तथा प्रजाति आदि होती है। आमतौर पर प्रत्येक जनजाति का एक निश्चित भू-भाग भी होता है, जिसमें वे निवास करती हैं। कई बार

---

[1] Majumdar, D.N., Races and Culture of India, P. 368

[2] Beteille, Andre, "The Definition of Tribe" , Tribe, Caste and Religion से उद्धत संपादक Romesh Thaper (Mc-Millan and Co. 1977) P. 8

जनजातियों ने बाह्रय आक्रमणों से रक्षा करने के लिए प्रदेश के अगम्य क्षेत्रों में भी शरण लिया तथा परिणामस्वरूप वे अवशिष्ट समाज से अलग-थलग भी पड़ गए हैं। जनजातियों की अर्थव्यवस्था अविकसित होती है। प्रायः वे उत्पादन के आदिम साधनों का प्रयोग करते हैं। उनमें नातेदारी व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होती है । किन्तु ये सब लक्षण इतने बदल गए हैं कि जनजातियों को अवशिष्ट समाज से पृथक करने के लिए प्रायः एक या कुछ लक्षणों को ही ज्यादा महत्व दिया जाता है। भारत भौगोलिक दृष्टि से विशाल आकार वाला देश है। भौगोलिक विशेषता के कारण यहां अनेक ऐसी जनजातियाँ निवास करती हैं, जो आज भी सभ्यता से पर्याप्त दूर हैं। अनेक जनजातियाँ सुदूर जंगलों, पहाड़ों तथा पठारी क्षेत्रों में अपना जीवन यापन करती हैं, इसलिए सभ्य समाजों से काफी दूर हैं।

वैरियर एल्विन ने भारतीय जनजातियों पर व्यापक कार्य किया। 1943 में अपनी पुस्तक “ ” में उन्होनें आदिवासियों के बारे में कहा कि आदिवासी भारतवर्ष के वास्तविक स्वदेशी उपज हैं, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक आधार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए। उन पर सबसे पहले विचार होना चाहिए ?

डॉ0 डी.एन.मजूमदार ने अपनी पुस्तक “रेसेस एण्ड कल्चर आफ इण्डिया” में जनजाति की व्यापक परिभाषा करते हुए लिखा है - कोई जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गो का एक ऐसा समूह है, जिसका एक सामान्य नाम है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर निवास करते हैं, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, जिन्होंने एक आदान-प्रदान सम्बन्धी पारस्परिक कर्तव्य विषयक एक निश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया है। साधारणतया एक जनजाति अन्तर्विवाही के सिद्धान्त का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अन्तर्गत विवाह करते हैं।[1]

राल्फ लिन्टन के अनुसार सरलतम रूप में जनजाति ऐसी टोलियों का एक समूह है, जिसका एक सानिध्य वाले भूखण्ड अथवा भूखण्ड़ों पर अधिकार हो और जिनमें एकता

---

[1] Majumdar, D.N. Races and culture of India, Bombay : Asia Publishing House, 1921. P. 361

की भावना, संस्कृति में गहन समानता, निरन्तर सम्पर्क तथा कतिपय सामुदायिक हितों में समानता से उत्पन्न हुई हो ।

एम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया में जनजाति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - जनजाति समान नाम धारण करने वाले परिवारों का एक संकलन है जो समान बोली बोलते हों, एक ही भूखण्ड पर अधिकार करने का दावा करते हों अथवा दखल रखते हों तथा जो साधारणतया अन्तर्विवाही न हों यद्यपि मूल रूप में चाहे वैसे रह रहे हों ।

आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार जनजाति विकास के आदिम अथवा बर्बर आचरण में लोगों का एक समूह है जो एक मुखिया की सत्ता स्वीकारते हों तथा साधारणतया अपना एक पूर्वज मानते हों।

डॉ0 जी.एस.धूरिये ने अपनी पुस्तक 'दि शिड्यूल्ड ट्राइब्स' में लिखा है कि "जनजातियाँ वस्तुतः पिछड़ी हिन्दू जातियाँ हैं।" धूरिये जनजातियों को हिन्दू जातियों का ही एक अंग मानते हैं। ये समूह हिन्दू हैं लेकिन पिछड़े हुए हैं। जब धूरिये ने इस पुस्तक को लिखा तब उन्होंने उनकी पुस्तक से पहले प्रकाशित वैरियर इल्विन की पुस्तक 'दि लोस ऑफ नर्व' का विरोध किया क्योंकि इस पुस्तक में वैरियर इल्विन ने लिखा है कि 'आदिवासी वस्तुतः प्रकृति प्रेमी हैं और हिन्दू जातियों से उनका कोई सरोकार नहीं है। जबकि धूरिये का तर्क था कि जनजातियाँ हिन्दू समाज का ही एक अंग हैं और उन्हें पृथक से समझना गलत होगा। बाद में वैरियर एल्विन उत्तर-पूर्व के आदिवासियों के सरकारी सलाहकार भी हो गये। पंडित नेहरू जी ने वैरियर इल्विन की सलाह पर ही पंचशील सिद्धान्त को रखा। इस सिद्धान्त का कहना है कि आदिवासी जंगलो और पहाड़ों में रहने वाले हैं और हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और जीवन पद्धति को हमें इन पर लागू नहीं करना चाहिए। इनका विकास तो इनकी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।[1]

आदिवासियों की परिभाषा के संदर्भ में डॉ0 निर्मल कुमार बोस ने अपनी पुस्तक 'दि स्ट्रक्वर ऑफ हिन्दू सोसाइटी' में लिखा है कि जनजातियाँ वास्तव में इस देश के

---

[1] Ghury, G.S. The Scheduled Tribes, Popular Book Depot. Mumbai, 1983

मूल निवासी हैं। परिवर्तन के दौर में ये मूल निवासी हिन्दू जातियों में एकीकृत हो रहे हैं। बोस जी का कहना है कि हिन्दू जातियाँ बड़ी उदार हैं और उनकी एक विधि हैं, जिसके द्वारा वे आदिवासियों को अपने अन्दर समेट लेती हैं।

निहार रंजन रे जो इतिहासकार थे, ने जनजातियों को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि जनजातियाँ इस देश की उपज हैं । वे देशी हैं, आदिवासी हैं और आर्यो के आने से पहले ये लोग देश के विभिन्न भागों और नदी घाटियों में बस गए थे। आर्य भाषा बोलने वाले लोग तो बाद में आयें। निहार रंजन रे कहते हैं कि जनजातियों की अर्थव्यवस्था पिछड़ी होती है। वे कृषि और पशुपालन करती हैं।

टी.बी. नाइक (1968) ने जनजाति को मानवशास्त्री ढंग से परिभाषित करते हुए लिखा है - "A Tribes is a social group with territorial affiliation, endogamous with no specialization of functions, ruled by tribal officers, heriditary or otherwise united in language or dialect, recognizing social distance from tribes of castes but without and stigma attached in the case of a caste structure, following tribal tradtions, beliefs and customs, illiberal of naturalization of ideas from a like sources, above all conscious of a homogeneity of ethnic and territorial integration."[1]

U.R. Ehrenfels (1952) ने जनजाति को भौगोलिक परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक सम्पर्क से दूर रहने वाले समूह के रूप में परिभाषित करते हुए लिखा है - " A Community, however small it may be, may remain in Isolation from the other communities within a geographical region. This applies to a caste as well as to a tribe. The members of a true tribe, however, are generally not included into the traditional Hindu caste hierarch and frequently speak also a common dialect,

[1] Naik, T.B. "What is Tribe" Conflecting definition in Applied Anthropology of India (ed) L.P.Vidyarthi, 1968. P. 86

entertain common beliefs, follow occupational practices and (Most important) consider themselves as members of a small but Semi-national unit."[1]

समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने-अपने संदर्भ में जनजातियों को परिभाषित किया है। विभिन्नता होते हुए भी सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि ये समूह कृषि क्षेत्र में नये हैं। इन्हें खेती करते हुए 100 वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं। जो कुछ खेती वे जानते हैं, हिन्दू जातियों से सीखी हैं। इनमें गरीबी हैं, अशिक्षा है और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जंगलों और पहाड़ों में रहकर उन्होंने पृथक्करण को अपनी जीवन पद्धति समझ लिया है। जनजातियों की इन सभी विशेषताओं में आज बड़ा अन्तर आ गया है। परिवर्तन होते हुए भी इन्हें सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से आरक्षण देने की आवश्यकता है। इसी कारण संविधान ने इन जनजातियों की विविधताओं को समेट कर इन्हें ऐसी परिभाषा में बांधा है, जिसके अनुसार इसका विधिवत विकास हो सके।

संविधान द्वारा दी गयी परिभाषा

देखा जाये तो हमारे देश में 'आदिवासी' या 'जनजाति' पद की कोई पृथक अवधारणा विकसित नहीं हुई है और इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 342 ने जनजातियों को परिभाषित किया है। अब प्रश्न उठता है कि संविधान ने जनजातियों को परिभाषित करने के लिये कौन सी कसौटियों या आधारों को अपनाया है ? 1952 में प्रकाशित अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग ने कुछ कसौटियों को प्रस्तुत किया है। इन कसौटियों में निम्न आधार सम्मिलित किए गये हैं :-

1. पृथक्करण
2. प्रजातीय लक्षण
3. भाषा और बोली
4. खाने की आदतें, मांसाहारी भोजन

---
[1] Ehrenfels, U.R. The kadar of Cochin, Madaras University, 1952.

5. पोशाक : नग्न एवं अर्द्धनग्न

6. घुमक्कड़

7. मद्यपान तथा नृत्य

जनजाति कमीशन ने जिन कसौटियों को रखा है, वे आज वास्तविक धरातल पर सही प्रतीत नहीं होती । ए.आर.देसाई (1961) का कहना है कि यदि इन कसौटियों को लागू किया जाए तो इनके अन्तर्गत केवल 20 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या को ही सम्मिलित किया जा सकता है। डॉ0 के.एस.माथुर का तो कहना है कि संविधान द्वारा परिभाषित अनुसूचित जनजातियों का वर्गीकरण सरकार द्वारा किया गया एक मिथक मात्र है। जगन्नाथ पाथी (1988) कहते हैं कि सरकार ने मनमाने ढंग से जनजातियों को अपनी अनुसूची में शामिल करके उन्हें वैधता दे दी है। वास्तविकता यह है कि संविधान का यह वर्गीकरण जनजातियों को केवल राजनीतिक दृष्टि से देखता है, उनके इतिहास की पड़ताल नहीं करता। हाल में सुसना ने अपनी पुस्तक डिस्कोर्सेस ऑफ इथिनीसिटी में लिखा है कि भारतीय जनजातियों को उनके इथनिसिटी संदर्भ में ही देखना चाहिए। सुसना ही नहीं सुरजीत सिन्हा और डी.सी.दुबे का भी कहना है कि जनजातियों को उनके एथनिक धरातल पर ही परिभाषित करना चाहिए। इधर भारतीय समाजशास्त्र के पुरोधा बी.के. राय बर्मन का तो कहना है कि जनजातियों को हमें उनकी राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्रीय समाज के संदर्भ में ही समझना चाहिए।

डॉ.एस.आर. देसाई[1] ने उन जनजातीय समूहों जो अभी तक संस्कृतिकरण तथा आत्मसात्करण का विरोध करते आये हैं के कुछ सामान्य लक्षणों पर प्रकाश डाला हैं जो एक समय में सभी जनजातियों में पाये जाते थे । ये सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं :-

1. वे सभ्य जगत से दूर पर्वतों व जंगलों में अत्यन्त दुर्गम स्थानों में निवास करते हैं।
2. वे निग्रिटोज, एस्ट्रोलाइड अथवा मंगोलाइड में से किसी एक प्रजातीय समूह से सम्बन्धित है।
3. वे समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते हैं।

[1] Desai, A.R., Rural India in Transition, 1961. P.51-52

4. वे आदिम धर्म को बोलते हैं जोकि सर्वजीववाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जिसमें भूत-प्रेत तथा आत्माओं की पूजा का विशेष स्थान है।
5. वे जनजातीय व्यवसायों को अपनाते हैं । जैसे- प्राकृतिक उपयोग वस्तुओं का संग्रह, शिकार, वन में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का संग्रह करना ।
6. वे अधिकांशतया माँसभक्षी हैं।
7. वे प्रायः नग्न अथवा अर्द्ध नग्न अवस्था में रहते हैं तथा कपड़ों के स्थान पर पेड़ की छाल तथा पत्तों का प्रयोग करते हैं।
8. उनकी आदतें खानाबदोशी होती हैं तथा नृत्य में विशेष रूचि रखते हैं। डॉ0 देसाई के अनुसार अब भारत में कुल जनजातीय जनसंख्या के 1/ 5 भाग में ही ये सामान्य लक्षण पाये जाते हैं। भारत की जनजातीय जनसंख्या विकास के विभिन्न चरणों पर पाई जाती है।

1.2 जनजातीय जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य

भारतीय संविधान में 550 जनजातियों को "अनुसूचित जनजाति" घोषित किया गया है। सन् 1941 में की गई जनगणना के अनुसार भारतीय जनजातियों की कुल जनसंख्या 2,47,12,000 थी । विभाजन के पश्चात सन् 1951 में यह संख्या घटकर 1,91,16,498 रह गई जो उस समय देश की कुल जनसंख्या का 5.36 प्रतिशत थी। सन् 1956 में राज्यों के पुर्नगठन के उपरान्त अनुसूचित जनजातियों की कुल संख्या 2 करोड़ 25 लाख आंकी गई थी। भारतीय संविधान की धारा 341 व 342 के अनुसार, राष्ट्रपति अनुसूचित जनजातियों की सूची घोषित करता है। यह घोषण केन्द्रीय सरकार के द्वारा राज्य सरकार की सिफारिश के आधार पर की जाती है।

1961 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार जनजातियों की कुल संख्या 2,98,83,470 थी जिनमें 1,50,40,707 पुरूष तथा 1,48,42,763 स्त्रियाँ थी। यह संख्या तत्कालीन भारत की सम्पूर्ण संख्या का 6.81 प्रतिशत थी ।

तालिका संख्या 1.2.1

विभिन्न राज्यों में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत

(1971 की जनगणना के आधार पर)

क्र.	राज्य	आदिवासी जनसंख्या	राज्य की कुल जनसंख्या
1	मध्य प्रदेश	8387403	20.14
2	उड़ीसा	5071937	23.11
3	बिहार	4932767	08.75
4	गुजरात	3734422	13.99
5	राजस्थान	3125506	12.13
6	महाराष्ट्र	2954249	05.86
7	पश्चिमी बंगाल	2532969	05.72
8	असम	1919947	12.84
9	आन्ध्र प्रदेश	1657657	03.81
10	नागालैण्ड	457602	88.61
11	त्रिपुरा	450544	28.95
12	अरूणाचल प्रदेश	369408	79.02
13	मणिपुर	334466	31.18
14	तमिलनाडु	311515	00.76
15	केरल	269356	01.26
16	कर्नाटक	231268	00.79
17	उत्तर प्रदेश	198565	00.22
18	हिमाचल प्रदेश	141610	09.09

(स्रोत : भारत की जनगणना, 1971)

भारत में 550 जनजातीय समुदाय थे जिनमें सबसे बड़ा गोंड़ तथा सबसे छोटा अंडमान के आदिवासियों का समूह था। कालान्तर में विभिन्न जनजातीय समूह/ उपसमूह अपनी पृथक पहचान बनाने लगे तथा एक पृथक जनजाति के रूप में सम्बोधित किए जाने लगे। इस प्रकार जनजातीय समूहों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई। वर्तमान में भारत में 700 से अधिक जनजातीय समूह हैं। 1981 में कुल जनजातीय जनसंख्या 5.36 करोड़ थी जो देश की कुल जनसंख्या का 7.58 प्रतिशत थी । 1991 की जनगणना के अनुसार जनजातीय जनसंख्या पौने सात करोड़ के लगभग थी ।

तालिका संख्या 1.2.2

1991 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या

राज्य	पुरूष	स्त्री	कुल	ग्रामीण	नगरीय	राज्य की जनसंख्या का प्रतिशत	राज्य की कुल जनसंख्या के अनु.जाति एवं जनजाति की जनसंख्या का प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	2142817	2056664	4199418	3880254	319227	6.31	22.24
अरूणाचल प्रदेश	275397	254954	550351	518222	32129	63.66	64.13
असम	1461560	1412881	2874441	2777308	97133	12.83	20.23
बिहार	8357568	3259351	6616914	6153659	463255	7.66	22.22
गोवा	199	177	376	89	287	0.03	2.11
गुजरात	3131917	3029828	6161775	5663178	498597	12.92	22.32
हरियाणा	-	-	-	-	-	-	19.75
हिमाचल प्रदेश	110240	103109	218349	212940	5409	4.22	29.56
जम्मू तथा कश्मीर	-	-	-	-	-	-	-
कर्नाटक	976746	938947	1915691	1629496	286195	1.12	20.64
केरल	160842	166155	320967	309764	11208	1.10	11.02
मध्यप्रदेश	7758170	7640860	15399034	14652730	746604	23.27	37.81

महाराष्ट्र	3517788	860049	7318281	6405814	912467	9.27	20.37
मणिपुर	322770	309453	632173	578930	53243	34.11	36.43
मेघालय	760234	757693	151797	1312093	205834	85.58	86.04
मिजोरम	32981	323746	653565	358113	295452	94.75	94.85
नागालैण्ड	545156	515066	1060822	933145	127655	87.70	87.70
उड़ीसा	3512891	3519323	702214	6670506	361708	22.21	38.41
राजस्थान	2837014	2637867	5474881	5220549	254332	12.22	28.31
सिक्किम	475	43397	90901	83486	7415	22.36	29.73
तमिलनाडू	293012	281182	574194	505208	68986	1.03	28.29
त्रिपुरा	434225	19120	853345	839264	14081	30.95	20.21
उत्तर प्रदेश	150420	137481	287901	271028	16873	0.21	47.31
पश्चिमी बंगाल	19938965	1869805	3808760	3612448	196312	5.60	21.25

स्रोत : भारत की जनगणना 1991

तालिका संख्या 1.2.3

2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या

क्रं.	राज्य	कुल जनसंख्या	अनु.जनजाति की जनसंख्या	पुरूष (अनु. जनजाति)	स्त्री (अनु. जनजाति)	कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत
1	आन्ध्र प्रदेश	76210007	5024104	2548295	2475809	6.5
2	अरूणाचल प्रदेश	1097468	705158	352017	353141	64.2
3	असम	20655528	3308570	1678117	1630453	16.01
4	बिहार	82998509	758351	393114	365237	0.9
5	गोवा	1347668	566	200	267	0.04
6	गुजरात	50671017	7481160	3790117	3691043	14.7
7	हरियाणा	21144564	0	0	0	0.0

8	हिमांचल प्रदेश	6077900	244587	122549	122038	4.02
9	जम्मू कश्मीर	10143700	1105979	578949	527030	10.9
10	कर्नाटक	52850562	3463986	1756238	1707748	6.5
11	केरल	31841374	364189	180169	184020	1.14
12	मध्य प्रदेश	60348023	12233474	6195240	6038234	20.27
13	महाराष्ट्र	96878627	8577276	4347754	4229522	8.8
14	मणिपुर	2166788	741141	374319	366822	34.2
15	मेघालय	2318822	1992862	996567	996295	85.9
16	मिजोरम	888573	839310	422963	416347	94.4
17	नागालैण्ड	1990036	1744026	913203	860823	87.6
18	उड़ीसा	36804660	8145081	4066783	4078298	22.1
19	राजस्थान	56507188	7097706	3650982	3446724	12.5
20	सिक्किम	540851	111405	56940	54465	0.20
21	तमिलनाडु	62405679	651321	328917	322404	1.04
22	त्रिपुरा	3199203	993426	504320	489106	31.05
23	उत्तर प्रदेश	166197921	107963	55834	52129	0.06
24	पश्चिम बंगाल	80176197	4406794	223924	2182870	5.4
25	पंजाब	24358999	0	0	0	0.0
26	उत्तरांचल	8489349	256129	131334	124795	3.01
27	चण्डीगढ़	900635	0	0	0	0.0
28	दिल्ली	13850507	0	0	0	0.0
29	उत्तराखण्ड	26945829	7087068	3565960	3521108	26.3
30	छत्तीसगढ़	20833803	6616596	3287334	3329262	31.7

31	पाण्डिचेरी	974345	0	0	0	0.0
32	अण्डमान निकोबार	356152	29469	15127	14342	8.2
33	लक्षद्वीप	60650	57321	28611	28710	94.5
34	दादर नगर हवेली	220490	137225	67663	69562	62.2
35	दमन द्वीप	158204	13997	7190	6807	8.8

स्रोत : जनगणना 2001 भारत सरकार

1.3 जनजातियों का वर्गीकरण

विभिन्न विद्वानों ने भारतीय जनजातीय समूहों का विभाजन विभिन्न तत्वों के आधार पर किया है। यह वर्गीकरण राज्यों की जनसंख्या, भौगोलिक तत्वों, प्रजातीय लक्षणों तथा आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है। जनजातियों के वर्गीकरण का आधार बदलते ही जनजातियों का वितरण तथा वर्गीकरण भी बदल जाता है। जनजातियों के वर्गीकरण के विभिन्न आधार उनकी सामाजिक संरचना के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने में सहायक होते हैं।

1.3.1 भौगोलिक वर्गीकरण

डॉ0 बी.एस.गुहा ने भौगोलिक आधार पर जनजातियों को तीन भांगों में बाँटा है :-

(1) उत्तर तथा उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र

इस क्षेत्र का विस्तार कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश और असम के पहाड़ी भाग तक है। लेह, शिमला और लुशाई पर्वत का क्षेत्र भी इसके अन्तर्गत

आता है। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियों में भोटिया, थारू, लेपचा, गारो, खासी, डाफला, कूकी, मिकिर, चकमा, गुरंग आदि हैं।

(2) मध्यवर्ती क्षेत्र

इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर में गंगा के मैदान से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक है। इसमें बंगाल, बिहार, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में निवास करने वाली जनजातियाँ आती हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियाँ संथाल, मुंडा, ओरांव, हो, खरिया, बिरहोर, गोंड, बैगा, भील, कोल, मीणा आदि।

(3) दक्षिणी क्षेत्र

यह क्षेत्र कृष्णा नदी के दक्षिण में है। इसमें मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन, हैदराबाद, तमिलनाडु आदि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में टोडा, कोटा, पलियन, कादर, चेंचू, कुरूम्बा, उराली आदि प्रमुख है। इस क्षेत्र में अण्डमान और निकोबार द्वीप समूहों की जनजातियों जैसे-जरवा, निकोबारी, सेंटीनल, ओंग आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

1.3.2 प्रजातीय वर्गीकरण

डॉ0 बी.एस.गुहा, जे.एच.हट्टन और श्री हरवर्ट रेसले आदि ने भारतीय जनजातियों में पायी जाने वाली विभिन्न प्रजातीय विशेषताओं के आधार पर उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। भारतीय जनजातियों में रिजले द्रविण एवं मंगोल प्रजातियों के तत्वों को उल्लेख करते हैं तो गुहा नीग्रिटो, आदि-आग्नेय, मंगोल आदि तत्वों को उल्लेख करते हैं।

(1) नीग्रिटो

यह नीग्रो प्रजाति की एक उप शाखा है। इस प्रजाति के शारीरिक लक्षण नाटा कद, चौड़ा सिर, काले ऊनी बाल, मोटे होंठ आदि हैं। ये प्रजातीय तत्व हमें दक्षिण भारत की कादर, इरूला, पलियन, नागाओं आदि में देखने को मिलते हैं।

(2) आदि-आग्नेय

इस प्रजाति की मुख्य शारीरिक विशेषताएँ छोटा कद, लम्बा एवं ऊँचा सिर, मुँह आगे की ओर उठा हुआ तथा नाक छोटी एवं चपटी आदि है। मध्य भारत की प्रायः सभी जनजातियों में आदि-आग्नेय या प्रोटो-आस्ट्रोलायड प्रजाति की विशेषताएँ पायी जाती हैं।

(3) मंगोल

मंगोल प्रजाति के लोग असम, सीमान्त प्रान्तों एवं ब्रम्हपुत्र की घाटी में पाये जाते हैं। भारतीय जनजातियों का प्रजातीय आधार पर वर्गीकरण एक कठिन कार्य है क्योंकि भारत में प्रजाति मिश्रण इतना हुआ है कि कोई प्रजाति आज अपने शुद्ध रूप में नहीं पायी जाती। फिर भी मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत की जनजातियों में मंगोल, नीग्रिटो एवं प्रोटो-आस्ट्रोलायड प्रजातीय तत्व पाये जाते हैं।

1.3.3. भाषायी वर्गीकरण

भाषायी आधार पर भारतीय जनजातियों को प्रमुखतः तीन भांगों में बांटा जा सकता है :-

(1) द्रविड़ भाषा परिवार

द्रविण भाषा परिवार में तेलगू, कन्नड़, तमिल, मलयामल भाषाएँ आती हैं। द्रविड़ भाषा बोलने वाली प्रमुख जनजातियों में टोडा, मलेर, सवर, कोया, पलियन, चेंचू, इरूला, कादर, कुन्ध, ओरॉंव आदि हैं।

(2) ऑस्ट्रिक भाषा परिवार

आस्ट्रिक भाषा में संथाली, मुण्डारी, खरिया, भूमिज, गारो आदि भाषाएँ आती है, जो बिहार, उड़ीसा, बंगाल और असम में बोली जाती हैं। मध्य प्रदेश की कोरकू एवं गड़बा भाषाएँ इसी के अन्तर्गत आती हैं।

(3) चीनी-तिब्बती भाषा परिवार

इस परिवार की भाषाएँ नेपाल, दार्जिलिंग, त्रिपुरा, मणिपुर, पूर्वी कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, असम तथा सिक्किम आदि क्षेत्रों में बोली जाती हैं। उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों में मोनखामेर भाषा बोली जाती है, जो आस्ट्रिक भाषा परिवार की है। उदाहरण के लिए खासी जनजाति मोरखामेर का प्रयोग करती हैं।

1.3.4 सांस्कृतिक वर्गीकरण

वेरियर इल्विन[1] ने 1943 में भारत की जनजातियों का सांस्कृतिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया और इस आधार पर उन्होंने जनजातियों को तीन भांगों में विभक्त किया :-

1. प्रथम श्रेणी में वे आदिवासी लोग आते हैं जो अत्याधिक आदिम हैं, संयुक्त जीवन व्यतीत करते हैं तथा दुर्गम एवं घने जंगलों में निवास करते हैं । इनमें मध्य भारत

[1] Elvin, Verrier, The Aboriginals, Oxford University Press, Bombay, 1943. P7-11

के बस्तर क्षेत्र के पहाड़ी माड़िया, उड़ीसा के जुआंग, गड़बा और बोदों आदि जनजातियाँ प्रमुख हैं।

2. दूसरी श्रेणी में वे जनजातियाँ आती हैं जो प्रथम श्रेणी की भांति ही एकाकी एवं परम्परावादी हैं किन्तु इनके जीवन में कुछ परिवर्तन आ गए हैं। ये लोग अपने सामूहिक जीवन को त्यागकर व्यक्तिवादी हो रहे हैं और इनमें गरीब एवं अमीर में भेद पाया जाता है।

3. तीसरी श्रेणी में वे जनजातियाँ आती हैं जो प्राचीनतम कुलीन वर्ग की हैं । इनमें भील एवं नागा लोग प्रमुख हैं। इन लोगों ने ब्राम्हा संस्कृतियों के सम्पर्क के बावजूद भी अपनी मौलिकता को बनाए रखा है।

डॉ0 डी.एन.मजमूदार और मदान का मत है कि इल्विन के वर्गीकरण को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता । उनके वर्गीकरण से तो ऐसा लगता है कि आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण जनजातियों को केवल हानि ही उठानी पड़ी है। फिर भी यह वर्गीकरण स्थिर भी नहीं है क्योंकि ज्यों-ज्यों जनजातियाँ आधुनिक नगरीय एवं औद्योगिक समाजों के सम्पर्क में आती जायेंगी, इल्विन का वर्गीकरण भी कम महत्वपूर्ण होता जायेगा। शरत चन्द्र राय एवं जे.एच.हट्टन ने जनजातियों के सरकार, ईसाई मिशनरियों एवं हिन्दुओं के सम्पर्क में आने के कारण हुए परिवर्तनों की प्रशंसा की है।

1.3.5 आर्थिक वर्गीकरण

आर्थिक वर्गीकरण पर जनजातियों को चार भांगों में बाँटा गया है :-

1. शिकार करने एवं संकलनशील अर्थव्यवस्था वाली जनजातियाँ

इस श्रेणी में वे जनजातियाँ आती हैं जो वनों व वन उत्पादों पर आश्रित होती है। ये जनजातियाँ घने जंगलों अथवा उनके निकट निवास करती हैं तथा अपने जीवन यापन के

लिए वनों में उत्पन्न होने वाले कंदमूल तथा फलों का संग्रह करती हैं। कोचीन के कादर, ट्रावनकोर के मालापन्तारम, मदुरा के पलियन, हैदाराबाद के चेंचू, बिहार के बिरहोर एवं खड़िया जनजाति के लोग इस श्रेणी में आते हैं।

2. पशु-पाल जनजातियाँ

कई जनजातियाँ पशुपालन करके अपना जीवन यापन करती हैं। इनमें हिमाचल के गुज्जर तथा नीलगिरि के टोड़ा प्रमुख हैं। टोड़ा जनजाति भैंस-पालन का कार्य करती है।

3. कृषि करने वाली जनजातियाँ

कई जनजातियों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि है। कुछ जनजातियाँ स्थानान्तरित कृषि करती हैं। जैसे- माड़िया, कोखा, सावड़ा, नागा, गारो आदि जबकि गोंड, ओरांव, थारू, मुंडा, भील, कोटा, परजा, आदि स्थायी कृषि करती हैं।

4. उद्योगों में लगी हुई जनजातियाँ

भारत के कुछ भागों में जनजातियाँ विभिन्न प्रकार के उद्योगों में लगी हुई हैं। बंगाल, बिहार एवं असम की जनजातियाँ चाय-बागानों, खानों एवं कारखानों में काम करती हैं। नयी अर्थव्यवस्था के कारण इन लोगों ने पैसा तो अधिक कमाया है, किन्तु शराब, वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ भी अपनायी हैं और ये अनेक बीमारियों से ग्रस्त हैं।

डॉ0 डी.एन.मजूमदार[1] ने अपनी पुस्तक 'रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया' में विभिन्न जनजातियों के आर्थिक स्तर का उल्लेख निम्न तालिका के अनुसार प्रस्तुत किया है :-

---

[1] Majumdar, D.N. Races and Culture of India, Bombey, Asia Publishing House, 1961.P.153

तालिका संख्या 1.3.5

आर्थिक आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण

स्थान	शिकार व खाद्य संचय व्यवस्था	स्थानान्तरण कृषि, पेड़ काटना, निर्माण इत्यादि	स्थायी कृषक, मुर्गी पालन, कपड़ा बुनना, बर्तन निर्माण आदि
उत्तर प्रदेश	राजी	कोरवा,सहरिया,भूइंया, खारवार	थारू, मणही, बोक्सा, खस कोल
बिहार	खड़िया, बिरहोर	असुर, कोरवा	हो, तमरिया, उराँव, मूड़िया
बंगाल	कुकी	गारो, साव	पोलिया,संथाल
मध्य प्रदेश	हिलमाड़िया	मूड़िया,दंडामी माड़िया, गोंड	परजा
असम क्षेत्र	कुकी, कोनयक नागा	नागा, गारो	खासी
तमिलनाडु	कोया,कोयरैडडी	खोंड़, कुरूम्बा	बदागा, कोरा
आंन्ध्र प्रदेश	पलियन, कादर	गोंड, सोरा, मुंडावान	इरूला, परजा
उड़ीसा	ज्वांग	सोरा	-
महाराष्ट्र	-	-	भील

औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के परिणामस्वरूप संचार तथा आवागमन के साधनों में तीव्र विकास होने के साथ-साथ जनजातियों का अन्य लोगों के साथ संपर्क बढ़ने लगा है। इस संपर्क का प्रभाव जनजातियों की आर्थिक गतिविधियों तथा व्यवसायों पर पड़ा है। जनजातियाँ अपने परम्परागत उन व्यवसायों को जो आर्थिक रूप से ज्यादा फलदायी नहीं थे, के स्थान पर नए व्यवसाय अपनाने लगी हैं। सरकार द्वारा पिछड़ी जातियों के साथ जनजातियों के लिये किये गये आरक्षण के परिणामस्वरूप उनमें शिक्षा का प्रसार हुआ है तथा वे विभिन्न व्यवसायों जैसे - अध्यापक, डाक्टर, इंजीनियर व अन्य राजकीय व व्यावसायिक पदों पर जाने लगे हैं । अतः अब जनजातियों का वर्गीकरण कठोर रूप से परम्परागत व्यवसाय के आधार पर करना कठिन होता जा रहा है। क्योंकि परम्परागत व्यवसायों के साथ उन्होंने आधुनिक व्यवसायों को भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। उदाहरण के लिए भोटिया लोग भेड़ भी पालते हैं तथा

समान ढोंने का परम्परागत कार्य भी करते हैं। वे वस्तु विनिमय का परम्परागत कार्य भी करते हैं । इस प्रकार जनजातियों की आर्थिक गतिविधियों व स्वरूपों में परिवर्तन आ रहा है।

इस प्रकार जनजातियों के स्वरूप व विकास को समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण तथा कारणों के आधार पर उनको समझने की आवश्यकता है। कतिपय जनजातियों को समझने के लिए उनका भौगोलिक संदर्भ पर्याप्त महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियाँ उनकी आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का निर्धारण करती हैं। भारतीय जनजातियों के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अवशिष्ट समाज के समान भारत का जनजातीय समाज भी भौगोलिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विविधताओं से परिपूर्ण है। उनमें सांस्कृतिक भिन्नताएँ हैं, तथा उनके विकास की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके लिए सर्वकल्याणकारी विकास की नीतियाँ बनाते समय यह भी ध्यान रखना है कि उनकी सांस्कृतिक विविधताओं पर अनावश्यक रूप से प्रहार न हो तथा वृहत्तर संस्कृति के संदर्भ में वे पहचान व विविधता बनाये रख सकें।

1.4 मध्य प्रदेश के आदिवासी

मध्य प्रदेश भारत का ह्रदय प्रदेश है। यह एक विस्तृत अंचल है जो 4,42,841 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ है। मध्य प्रदेश की अनन्त विशिष्टताएं हैं और क्षेत्रफल की दृष्टि से मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित) देश का सबसे बड़ा प्रदेश है। जनसंख्या की दृष्टि से यह छठा बड़ा प्रदेश है। यहाँ आदिवासियों की जनसंख्या सर्वाधिक है, जो प्रदेश की कुल जनसंख्या का 23.27 प्रतिशत है। आदिवासियों की जनसंख्या की दृष्टि से मध्य प्रदेश के बाद उड़ीसा (22.21 प्रतिशत), गुजरात (14.19 प्रतिशत), राजस्थान (12.44 प्रतिशत), बिहार (झारखण्ड सहित 11.26 प्रतिशत), महाराष्ट्र (9.27 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश (6.31 प्रतिशत) तथा पश्चिमी बंगाल (5.95 प्रतिशत) आदि का स्थान आता है।

मध्य प्रदेश के आदिवासी आमतौर पर पहाड़ी तथा वनाच्छादित अंचलों में निवास करते हैं। यह एक संयोग ही है कि प्रदेश का 22 प्रतिशत अंचल वनाच्छादित है और प्रदेश की आदिवासी जनसंख्या भी लगभग इतनी ही है। इससे आदिवासियों और वनों के बीच का साहचर्य समझ में आता है।

मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित) के सभी पैतालीस जिलों में आदिवासी बसते हैं, यद्यपि भिंड, दतिया, मन्दसौर, उज्जैन, इन्दौर, शाजापुर तथा राजगढ़ में इनकी संख्या अत्यल्प है। लगता है कि ये आव्रजक हैं जो बाहर से आकर यहाँ बस गए। अपने आकार के अतिरिक्त प्रदेश की आदिवासी जनसंख्या विविधतामय है । यह आदिवासी समूहों के अन्तर्गत विविध उपवर्गो में बंटी हुई है। प्रदेश की "आदिवासी-उपयोजना" के अनुसार ऐसे कुल समूहों की संख्या 58 है। ये 161 उपसमूहों में वर्गबद्ध हैं। आकार के आधार पर इन विविध समूहों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है :-

तालिका संख्या 1.4.1

क्र.	जनसंख्या का आकार	समूहों की संख्या
1	1000 से कम	05
2	1000 से 4999	13
3	5000 से 9999	05
4	10000 से 19999	08
5	20000 से 49999	11
6	50000 से 99999	05
7	100000 से 999999	08
8	1000000 से ऊपर	02

(स्रोत : शुक्ल, हीरालाल, आदिवासी अस्मिता और विकास)

प्रदेश में निवास करने वाले विविध आदिवासी समूहों की प्रकृति एक दूसरे से बहुत भिन्न है। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तरों पर भी इनमें अनेक भिन्नता है और

इसलिए इन समूहों की समस्याएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। यहाँ दो समूह (गोंड तथा भील) ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या एक हजार से भी कम है।

तालिका संख्या 1.4.2

मध्य प्रदेश के आदिवासी परिक्षेत्र एवं उस परिक्षेत्र में निवास करने वाली प्रमुख अनुसूचित जनजातियाँ

क्र.	प्रमुख आदिवासी क्षेत्र	इस क्षेत्र में निवास करने वाली प्रमुख जनजातियाँ	क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला जिला	म.प्र. के कुल आदिवासी जनसंख्या से जिले में निवास करने वाली आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत	जिले के कुल जनसंख्या से आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत
1	पश्चिम क्षेत्र	भील-भिलाला	झाबुआ	5.53	83.47
			धार	4.59	52.06
			पश्चिमी निमाड़	5.88	43.25
			खण्डवा (पूर्वी निमाड़)	2.46	25.64
			रतलाम	1.40	21.48
2	मध्य क्षेत्र	गोंड, कोरकु, कोल, बैगा, भरिया	मंडला	5.22	60.35
			बैतुल	2.79	36.18
			छिंदवाड़ा	3.43	33.36
			सिवनी	2.45	36.35
			बालाघाट	2.09	21.82
			शहडोल	5.32	47.44
3	उत्तर-पूर्वी क्षेत्र	ओरांव, कोल, पनिका, कवंर, कोरवा, भारिया, बिरहोर, बैगा	सरगुजा	7.46	54.81
			रायगढ़	5.84	48.51
			विलासपुर	5.76	23.39
			सीधी	2.58	31.26
4	दक्षिणी क्षेत्र	माड़िया, मुरिया, हलबा, भतरा, डोरला कमार, बिरहोर, अबूझमाड़िया	बस्तर	10.42	67.78
			दुर्ग	1.99	12.64
			राजनांदगांव	2.46	25.28
			रायपुर	4.77	18.56
5	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	सहरिया	मुरैना	0.57	05.26
			शिवपुरी	0.72	09.98
			गुना	0.91	10.96

(स्रोत : मध्य प्रदेश की जनगणना, 1991)

प्रदेश के आदिवासी समूह भाषा तथा रहन-सहन की दृष्टि से भी भिन्न हैं। ये तीन भाषा- परिवारों में विभाजित हैं। मुंडा भाषा परिवार के अन्तर्गत खड़िया, कोरकू, मवासी, निहाल, कोरवा, बिरहोर, नगेसिया, सौंता, तूरी, माझी तथा मझवार सम्मिलित हैं। द्रविण भाषा परिवार के वक्ताओं में ओरांव, परजा तथा गोंडों के विविध उपवर्ग शामिल हैं। आर्य परिवार की भाषाओं को बालने वाले आदिवासी समूहों की संख्या सर्वाधिक है। विविध समूहों में सांस्कृतिक सम्पर्क की मात्रा भी भिन्न-भिन्न है। यहाँ के आदिवासी समूहों में सात विशेष पिछड़ी जनजातियाँ हैं - बैंगा, अबूझमाड़िया, सहरिया, भारिया, कमार, बिरहोर तथा पहाड़ी कोरबा।

मध्य प्रदेश के अधिकतर आदिवासी प्रोटो आस्ट्रालोयड प्रजाति के हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

(1) अगरिया

जातीय नाम 'अग्नि' से व्युत्पन्न यह समुदाय आज भी लौह अयस्क के पिघलाने के कार्य में लगा हुआ है। ये अपने को लोहार भी कहते हैं। यह समुदाय मैकल-पर्वत श्रृंखला के मंडला, विलासपुर तथा रींवा में अधिक मिलता है। अगरिया पर वैरियर इल्विन का कार्य महत्वपूर्ण है।

(2) असुर

मूलतः यह बिहारी समूह है तथा अपने जातीय नाम को संस्कृत व्युत्पत्ति से जोड़ता है। असुर रायगढ़ के जशपुर क्षेत्र तक ही सीमित हैं। असुरों के अनेक गाँव पहाड़ों पर ही बसे हुए हैं। इन पर अभी तक कोई महत्वपूर्ण मनोविज्ञानी कार्य नहीं हुआ ।

(3) भैना

किवंदती के अनुसार ये बैगा तथा कुवंर की वर्णशंकर सन्तानें हैं। ये रायगढ़ तथा विलासपुर के उपजाऊ क्षेत्र में व्याप्त हैं। रसल के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी इन पर सामग्री नहीं जुटायी ।

(4) भारिया

ये भरहुत के भर-साम्राज्य से अपनी उत्पत्ति खोजते हैं। ये सिवनी तथा छिंदवाडा जिलों में व्याप्त हैं। वैरियर इल्विन (1947) ने मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया में इनके मिथकों का विवरण दिया है।

(5) भतरा

भतरा का अर्थ है सेवक । ये मानते हैं कि अन्नदेव के साथ चौदहवीं शताब्दी में बारंगल से बस्तर आए। भतरा जनजाति पर नेगी (1962) का आलेख महत्वपूर्ण है।

(6) भील

भीलों का एक लम्बा इतिहास है और गुणाढ्य के 'कथासरित्सागर' (छठवीं शताब्दी) में इनकी विस्तृत चर्चा है। श्यामलदास के 'वीरविनोद' (1980) में चर्चा है कि प्राचीनकाल में राजपूतों का टीका भील ही करते थे। मध्य प्रदेश में भील तथा भिलाला नामक दो उपवर्ग है। भिलाला समुदाय झाबुआ, पश्चिमी निमाड़ तथा धार में व्याप्त है।

(7) भूमिया

ये मानते हैं कि जाबालिपुरम की 'भूमि' में ये सबसे पहले आकर बसे। वर्तमान समय में ये कटनी से लेकर जबलपुर तक के क्षेत्र में फैले हुए हैं। रसल ने इनका संक्षिप्त परिचय दिया था।

(8) भुँजिया

यह समुदाय रायपुर जिले तक सीमित है। इनकी मातृभाषा 'भुँजिया' बस्तर की हलबी के बहुत निकट है। रसल ने भुँजिया पर 1916 में संक्षिप्त आलेख प्रस्तुत किया था।

(9) बियार

पारम्परिक तौर पर ये भूमि के उत्खनन से जुड़े हुए हैं। इनकी कुल-जनसंख्या 7374 है। ये मध्य प्रदेश के उत्तरी क्षेत्र व बघेलखण्ड में निवास करते हैं।

(10) बिंझवार

विन्ध्य पर्वत के मूल निवासी होने के कारण ये बिंझवार कहलाए। बिंझवार छत्तीसगढ़ अंचल में व्याप्त है। छत्तीसगढ़ के महान क्रान्तिकारी वीरनारायण सिंह इसी समुदाय के थे। एब्रोरिजिनल ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया में बिंझवारों का संक्षिप्त परिचय दिया है। टी.बी. नायक की 'बारह भाई बिंझवार' इन पर एक पठनीय पुस्तक है।

(11) बिरहोड़

बिरहोड़ का अर्थ है वने (बिर) चर (होड़) वन्य जाति। बिरहोड़ रायगढ़ जिले में व्याप्त है। ये छत्तीसगढ़ को मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त करते हैं तथा अपने पूर्वजों की मुंडा भाषा को भूल गए हैं।

(12) बिरजिया

'बिरजिया' का अर्थ है 'जंगल की मछली' ये अपना मूल निवास सरगुजा जिले में मानते हैं। ये सरहुल, कर्मा, फगुआ तथा रामनवमी जैसे उत्सव मनाते हैं।

(13) दामोर

इन्हें 'दामोरिया' भी कहा जाता है। ये मालवा के जंगलों में निवास करते हैं। इन पर सामग्री की अत्यल्पता है।

(14) धनवार

'धनवार' शब्द की व्युत्पत्ति 'धनुष' से हुई है, जिसका अर्थ है 'धनुर्धारी' । रसल एवं हीरालाल (1916) के अनुसार धनवार समुदाय गोंड या कवँर की ही एक शाखा है। ये विलासपुर, रायगढ़ तथा सरगुजा जिलों में व्याप्त है।

(15) धुरवा

ये बस्तर जिले के बस्तर तथा सुकमा विकासखंडो तक सीमित है। धुरवा पहले अपने आपको परजा कहते थे । के.एन. थुसु की पुस्तक धुरवा ऑफ बस्तर इन पर एक महत्वपूर्ण कार्य है।

(16) गदबा

ये बस्तर जिले में व्याप्त हैं जहाँ इनकी जनसंख्या 4354 है। ये पहले मुंडा परिवार की गदबा का व्यवहार करते थे, किन्तु आज इनकी मूल भाषा मर गयी है और अब हलबी ही इनकी मातृभाषा है।

(17) गोंड

संख्या की दृष्टि से यह मध्य प्रदेश की सबसे बड़ी जनजाति है, जो सतपुड़ा पर्वतमाला से गोदावरी तक व्याप्त है। इन्हीं के नाम से मध्य युग में 'गोंडवाना' को प्रसिद्धि मिली।

गोंड शब्द की व्युत्पत्ति तमिल से हुई है जिसका अर्थ है, 'पर्वननिवासी' । सच तो यह है कि गोंड अपने को 'कोयतोर' या 'कोया' ही के रूप में जानते हैं। मध्य प्रदेश में

गोंडों की कुल मिलाकर 50 शाखाएँ हैं, जिनमें प्रमुख हैं - अबुझमाड़िया, आमत गोड़, दंड़ामी माड़िया, धुरवा, दोरला, धुरगोंड, धुलिया, ढेरिया गोंड, कंदरा गोंड, खटेला गोड, मुरिया, ओझा, पहाड़िया गोंड, राजमुरिया, सनरिया गोंड़, सरगुजिया गोंड, ठटिया तथा नागवंशी इत्यादि ।

(18) हलबा

हलवाहक होने के कारण 'हलबा' नाम पड़ा। हलबा बस्तर जिले में ही केंद्रीभूत हैं। हलब की ही एक अन्य शाखा नागवंशी हलबा है जो बस्तर क्षेत्र के दन्तबाड़ा तथा नारायणपुर तहसीलों में व्याप्त है।

(19) कमार

रायपुर के दक्षिण पूर्व अंचल में बसने वाली इस जनजाति के अधिकांश गाँव वनाच्छादित पहाड़ियों में हैं। रसल एवं हीरालाल (1916) ने कमारों को गोंड़ों की ही एक शाखा माना है। कमारों पर डॉ0 एस.सी.दुबे (1949-50) तथा रसल एवं हीरालाल के कार्य उल्लेखनीय है।

(20) कवर

कवर अपना मूल निवास रायपुर जिले के सीदर तथा राजगढ़ जिले को मानते हैं। उनका मानना है कि 'कवर' कौरव का ही अपभ्रंश है। कौरव महाभारत की शासक प्रजाति थी और ये उसी से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं।

(21) खैरवार

इन्हें 'कथकार' भी कहा जाता है। ये सरगुजा, विलासपुर, सीधी, रीवा तथा छतरपुर जिलों में निवास करते हैं। 'कत्था' का व्यवसाय करने के कारण ये कथकार या खैरवार नाम से सम्बोधित हुए । खैरवारों पर अहमद, गर्ग एवं जोशी के कार्य उल्लेखनीय हैं।

(22) खड़िया

खड़खड़िया (अर्थात पालकी) ढोने के कारण ये खड़िया कहलाए। ये रायगढ़ जिले की जशपुर तहसील तक सीमित हैं।

(23) कीर

ये होशंगाबाद, भोपाल, रायसेन तथा सीहोर जिलों के निवासी हैं। बहुत पहले गुजरात और राजस्थान से आकर यहाँ बसे थे। कीर पर रसल एवं हीरालाल ने कार्य किया है।

(24) कोडकु

ये सरगुजा तथा रायगढ़ जिलों में फैले हुए हैं। 'कोडकु' का अर्थ है, भूमि को खोदने वाला। कोड़कु पर सिंह (1977) तथा बनर्जी (1982) के कार्य उल्लेखनीय हैं।

(25) कोल

कोल एक जातीय नाम है जो संस्कृत साहित्य में भील तथा किरात के साथ बहुशः प्रयुक्त हुआ है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में भी कोलों की चर्चा है। कोल रींवा, जबलपुर, नरसिंहपुर तथा दमोह जिलों में अधिक व्याप्त हैं। रसल एवं हीरालाल के बाद मध्य प्रदेश की कोल जनजाति पर ग्रिफिथ का कार्य द कोल्स ऑफ सेन्ट्रल इण्डियन महत्वपूर्ण है।

(26) कंध

'कंध' शब्द द्रविड़ के कोण्ड शब्द से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है 'पहाड़'। इन्हें खोंड़ या कोण्ड भी कहा जाता है। ये रायगढ़ जिले तक सीमित हैं।

(27) कोरकू

कोरकू सतपुड़ा की पर्वत श्रृंखला में बिखरे हुए हैं। ये बैतूल, खंड़वा, होशंगाबाद, देवास, हरदा जिलों में सघन रूप से मिलते हैं। कोरकू पर रसल एवं हीरालाल के बाद पुच का कार्य द कोरकू ऑफ विन्ध्या हिल्स उल्लेखनीय है।

(28) कोरवा

इन्हें 'दिहरिया' और 'किसान कोरवा' भी कहा जाता है । वर्तमान समय में ये सरगुजा, राजगढ़ तथा विलासपुर जिले में व्याप्त हैं। कोरवा के दो भेद हैं। पहाड़ी कोरवा तथा जंगली कोरवा। पहाड़ी कोरवा पर देवगाँवकर (1986), रिजवी (1977,1989) आदि ने कार्य किया है।

(29) कोया

ये बस्तर के गोदावरी अंचल में निवास करते हैं तथा यदा-कदा अपने को दोरला या कोयतूर भी कहते हैं। ये गोंड़ वर्ग के ही अन्तर्गत संसूचित हैं। इनकी तीन उपशाखाएँ हैं - दोर्ला कोया, गुट्टा कोया, मेट्टा कोया ।

(30) मझवार

रसल एवं हीरालाल गोंड़, मुण्डा तथा कवर के वर्णसंकरत्व से इनकी उत्पत्ति मानते हैं। ये विलासपुर जिले की कटघोरा तहसील में व्याप्त हैं। रसल एवं हीरालाल तथा क्रुक ने इन पर कार्य किया है।

(31) मावसी

ये होशंगाबाद, पन्ना तथा सतना जिलों के पहाड़ी क्षेत्रों में फैले हुए हैं। ये हिन्दी की स्थानीय बोलियों का प्रयोग करते हैं। रसल एवं हीरालाल ने इन पर विचार किया है।

(32) मीणा

ये अपने को राजस्थान से आव्रजित पारम्परिक योद्धा समुदाय से जोड़ते हैं। मीन (मछली) से इनका जातीय नाम पड़ा और इसीलिए मछली इनके लिए निषिद्ध है। ये ग्वालियर, शिवपुरी, गुना तथा विदिशा जिलों में बिखरे हुए हैं। मध्य प्रदेश के मीणा पर......... ने कार्य किया है।

(33) मुण्डा

ये बस्तर के जगदलपुर तक ही सीमित है तथा बस्तर राजवंश के पारम्परिक गायक हैं। ये भतरी तथा हलबी भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

(34) नगेसिया

इन्हें 'किसान' भी कहा गया है। इनके जातीय नाम की व्युत्पत्ति 'नाग' (सर्प) से हुई है। ये सरगुजा तथा रायगढ़ जिलों में व्याप्त हैं। नगेसिया राजमोहिनी देवी, साहनी गुरू तथा गाहिरा गुरू के समाज सुधारक कार्यक्रम से बहुत प्रभावित हुए हैं। इन पर अहमद तथा रसल एवं हीरालाल आदि ने कार्य किया है।

(35) नहाल

'नहाल' का शाब्दिक अर्थ है 'व्याघ्र' । रसल एवं हीरालाल ने यह माना था कि ये भील तथा कोरकू के मिश्रण है। पद्मपुराण में इनकी चर्चा 'नहालिका' नाम से हुई है। नहालों पर रसल एवं हीरालाल की टीप मिलती है। एन्थोवेन ने भी इनका उल्लेख किया है।

(36) ओराँव

ये अपने को 'कुडुख' भी कहते हैं। ये छत्तीसगढ़ के रायगढ़ तथा सरगुजा जिलों में व्याप्त हैं। इनमें ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार के कारण शोध कार्य की बहुतायत है।

(37) पाण्डो

ये अपने को पाण्डवों के वंश से जोडते हैं। सरगुजा तथा विलासपुर जिलों में व्याप्त पाण्डों की मातृभाषा छत्तीसगढ़ी है। पाण्डों पर अहमद बनर्जी तथा सिन्हा के कार्य उल्लेखनीय है।

(38) पनिका

मध्य प्रदेश के पनिका बुनाई की परम्परा से जुड़े हुए हैं। ये अम्बिकापुर, विलासपुर, क्षेत्रों में व्याप्त हैं। रसल एवं हीरालाल ने पनिकाओं का विवरण दिया है।

(39) पाव

इन्हें 'पवारा' भी कहा जाता है। इनकी मातृभाषा बघेलखंडी हिन्दी है तथा ये बघेलखंड अंचल में व्याप्त हैं। सी.ए. वेंकटाचर ने 1931 की जनगणना प्रतिवेदन में इनका उल्लेख किया है।

(40) परधान

परधान (प्रधान) संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है 'मंत्री' । ये सिवनी, मंडला, छिदवाड़ा, होशंगाबाद, बैतूल, बालाघाट, रायपुर तथा विलासपुर जिलों में व्याप्त हैं। ये गाथावाचक

के रूप में जाने जाते हैं । ये गोंड राजाओं के प्रशस्तिगायक भी थे । परधानों पर अहमद के अतिरिक्त सेम्रो का कार्य उल्लेखनीय है।

(41) पारधी

पारधी बस्तर जिलें में निवास करते हैं तथा अपने को नाहर भी कहते हैं। बस्तर से बाहर भोपाल, रायसेन तथा सीहोर जिलों में भी पारधी रहते हैं। पारधी पर रसल एवं हीरालाल के अतिरिक्त वाटस ने भी अपनी पुस्तक द प्रधानस ऑफ अवर नर्मदा वेली में इनका वर्णन किया है।

(42) परजा

बस्तर क्षेत्र में केन्द्रीभूत परजा, धुरवा की ही एक शाखा है।

(43) पटेलिया

पटेलिया झाबुआ जिले के निवासी हैं। जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार ये भीलों तथा राजपूतों की सन्ताने हैं। इनमें भगत तथा नगद दो वर्ग हैं।

(44) सहरिया

सहरिया का अर्थ है व्याध्र का मित्र । ये भोपाल, विदिसा, शिवपुरी, गुना, दतिया तथा ग्वालियर जिलों में व्याप्त है। ये स्थानीय हिन्दी की बोली का प्रयोग करते हैं। सहरिया पर रसल एवं हीरालाल की टीप मिलती है।

(45) पलिहा

ये शहडोल तथा उससे संलग्न सीधी जिले में व्याप्त हैं।

(46) सौरा

संस्कृत साहित्य में वर्णित 'शबर' इनके पूर्वज हैं। शबरों का ऐतिहासिक विवरण प्राचीन काल से ही मिलता है तथा ईसा पूर्व 800 से ईशा की बारहवीं शताब्दी तक ये बहुतः उद्धृत हुए हैं। इनकी मातृभाषा मुंडा भाषा परिवार से सम्बद्ध है।

(47) सौंता

ये विलासपुर जिले के कटघोरा तहसील तक सीमित हैं। सौंता पर भादुड़ी (1941) का कार्य उल्लेखनीय है।

(48) सौर

ये पन्ना, टीकमगड़, सतना तथा छतरपुर जिलों में व्याप्त हैं।

(49) सोन

ये अपने को रामायण की शबरी से जोड़ते हैं। ये मूलतः सागर के आसपास सबते हैं।

(50) भिम्मा

ये आदिवासी नर्तक तथा गायक हैं तथा मंडला जिले में फैले हुए हैं। नृत्य और गीत ही इनका व्यवसाय है।

(51) धोबा

·धोबा बैगा पट्टी मंडला में निवास करते हैं। ये खेतिहार हैं तथा यदा-कदा गोंडो की पुरोतिहाई करते हैं।

(52) बैगा

'बैगा' शब्द का अर्थ है 'पुरोहित' और इसीलिए इन्हें 'पंडा' भी कहा जाता है। ये नांगा बैगा को अपना पूर्वज मानते हैं । ग्राम के पुरोहित होने के साथ-साथ ये चिकित्सक भी हैं। ये मंडला, विलासपुर, सिवनी, शहडोल, छिंदवाडा, डिंडौरी के पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। ऐरियर एल्विन की पुस्तक द बैगाज तथा दयाशंकर नाग की पुस्तक ट्राइबल इकोनोमी बैगाओं पर आश्रित है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर मध्य प्रदेश को पाँच आदिवासी क्षेत्रों में इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :-

1. दक्षिणी आदिवासी क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत हलबा, भतरा, धुरवा, दोरला, दंडामी माड़िया, अबुझमाड़िया, मुरिया, गोंड़, मुण्डा, कोया, कमार, बवर तथा बिंझवार आदि आते हैं।

2. पूर्वीत आदिवासी क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत कोरवा, नगेसिया, गोंड, ओराँव, कोल, पनिका तथा कवर आदि आते हैं।

3. केन्द्रीय आदिवासी क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत गोंड, बैगा, भुमिया, कोल, कोरकू, परधान, अगरिया तथा धोबा आदि आते हैं।

4. पश्चिमी आदिवासी क्षेत्र

इस क्षेत्र के अन्तर्गत भील तथा भिलाला आदि आते हैं।

5. उत्तर-पश्चिमी आदिवासी क्षेत्र

इनमें सहरिया जनजाति आती हैं।

क्षेत्रफल की दृष्टि से केन्द्रीय आदिवासी क्षेत्र वृहत्तम है जबकि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र लघुत्तम है। आदिवासी जनसंख्या की दृष्टि से पश्चिमी आदिवासी क्षेत्र वृहत्तम है जबकि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र लघुत्तम है।

मध्य प्रदेश के इन आदिवासियों से हमें अभी बहुत कुछ सीखना है। जीवन का बहुत कुछ सौन्दर्य आज भी मध्य प्रदेश के दूरस्थ पहाड़ी अंचलों में बिखरा हुआ है, जहाँ नृत्य और गीत रोजमर्रे की जिन्दगी के एक जीवंत अंग हैं, जहाँ लोग स्वच्छन्द रूप से बिना किसी भय या दबाब के बोलते और सोचते हैं। इसलिए हमारे कार्यकर्ताओं को भी सुनिश्चित करना होगा कि अपने जोश और उत्साह में इन आदिवासियों की संस्थाओं में अन्तर्निहित अच्छाइयों को तथाकथित 'आधुनिक' या 'विकसित' तकनीकों से न तो दूषित करें और न ही स्थानापन्न बनाएँ, क्योंकि ये आयातित तकनीकें आदिवासियों की अर्थव्यवस्था और सोच के अनुकूल नहीं है। आदिवासियों का दृष्टिकोण वस्तुतः बहुत ही साफ-सुथरा, प्रत्यक्ष तथा स्वच्छ है। वह नगरवासियों के अस्वाभाविक जीवन में व्याप्त विकृत मनोग्रन्थियों से मुक्त होकर संतुष्ट जीवन बिता रहा है। नगरवासियों की दैनंदिन क्रिया मशीनों से जुड़ी हुई हैं। ईश्वर की सृष्टि, प्रकृति का सौन्दर्य, ताजी हवा और रोशनी तथा मुक्त अट्टाहास से मरहूम नगरवासी इन वनचरों की क्या सीख देंगें ?

आदिवासियों ने नृत्य और गीत सहज हैं। वे उनकी आत्मा की उसी प्रकार की अभिव्यक्ति हैं जैसे कि उनके द्वारा बुने गए वस्त्रों की आकृतियाँ । उनका उद्योग निश्चित रूप से एक गृह उद्योग है, क्योंकि सम्प्रेषण के अभाव में अपने उत्पादों के लिए वे बाहरी बाजारों से जुड़ नहीं पाए। यदि हम आदिवासियों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें यह दिखाना होगा कि

इन आदिवासियों और इनके संस्थाओं के प्रति हमारे मन में सम्मान है। उनकी भाषाओं और गीतों के प्रति हमारे मन में आदर-भाव है। ऐसा सम्मान प्रदर्शित करते हुए ही इन अंचलों में हमें किसी काम का बीड़ा उठाना होगा। इससे हम उनका विश्वास अर्जित कर सकेंगे। इसीलिए प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए निर्देश होना चाहिए कि वह अपने कार्यक्षेत्र की आदिवासी भाषा से परिचित हो। अंचल के लोगों के रीति-रिवाज व परम्पराओं को समझता हो और उनमें उसकी भागीदारी हो। एक परदेशी के रूप में नहीं, अपितु उन्हीं के बीच में से एक व्यक्ति के रूप में।

मध्य प्रदेश के आदिवासी हमारे लिए एक विशेष प्रकार की चुनौती पेश करते हैं। उनकी सरलता बहुत ही प्यारी है। उनका सौजन्य, उनका अतिथि सत्कार, उनका अनुशासन, उनकी आत्म-निर्भरता, कठोर परिश्रम करने की उनकी क्षमता, उनकी सामुदायिकता, अपरिचित के सामने उनकी यदा-कदा घबड़ाहट किन्तु अनुकूलता की स्थिति में अपरिचितों का स्वागत ये बातें उनके बीच कार्य करने वालों का मन जीत लेती हैं। आदिवासियों की भलाई का अर्थ है, हम उनकी अच्छाइयों के सहभागी बनें।

अध्याय : द्वितीय

पद्धतिशास्त्र

2. पद्धति शास्त्र

प्रथम अध्याय में जनजाति की अवधारणा, भारत में जनजातीय जनसंख्या का वितरण, जनजातियों का वर्गीकरण, मध्य प्रदेश में जनजातियों की संख्या पर विस्तार से चर्चा की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में पद्धतिशास्त्र की विस्तृत विवेचना की गयी है।

जिस प्रकार विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि मेधावी-मानव है उसी प्रकार मानव की सर्वोत्तम सृष्टि मानव समाज व उसकी विचित्र घटनाएँ हैं। यह मानव बुद्धिजीवी है, जिज्ञासा से भरपूर ज्ञान पिपासु है। इसीलिये यह सच ही कहा गया है कि मानव प्रकृति का सबसे आश्चर्यजनक भाग है। यह बुद्धिजीवी, ज्ञान पिपासु मानव केवल प्रकृति का ही नहीं स्वयं अपना तथा अपनी जाति का भी अध्ययन करता है। आकाश, धरती, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और उसके ज्ञान-विज्ञान के भण्डार को भरता रहता है, परन्तु स्वयं अपना तथा अपने समाज का अपने व्यवहारों का, या फिर सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मानव के लिए और भी रोचक, अत्यन्त आश्चर्यजनक अनुभवों से भरपूर और अनोखेपन से समृद्ध होता है। पर यह अध्ययन मनमाने ढंग से नहीं अपितु निरीक्षण, परीक्षण व प्रयोग पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा ही संभव है। सामाजिक घटनाओं के बारे में सत्य की खोज करना ही सामाजिक शोध है। इसीलिये कार्ल पियर्सन ने कहा है कि "सत्य तक पहुँचने के लिये कोई संक्षिप्त पथ नहीं है । विश्व के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा से गुजरना ही पड़ेगा।"

पद्धति वह प्रणाली है जिसके द्वारा वैज्ञानिक या एक अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित विवेचना करता है। पद्धति, अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली है। इसके विपरीत प्रविधि वह तरीका है जिसके माध्यम से अध्ययन विषय से सम्बन्धित सूचनाओं तथा आँकड़ों को प्राप्त किया जाता है।[1]

कोई भी वह अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक पद्धति है जिसके द्वारा एक अनुसंधानकर्ता पक्षपात रहित होकर विभिन्न घटनाओं का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करता है।

---

[1] Pearson, Karl, The Grammer of Science, A and C Black, London, 1911, P.1

यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें व्यक्ति की भावना, दर्शन तथा तत्व ज्ञान का कोई महत्व नहीं होता है। वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली को इसकी श्रेणी में रखा जाता है।

अध्ययन को सफल बनाने के लिये वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरणों से गुजरना पड़ता है।

2.1 समस्या का चयन

किसी भी शोध के लिये समस्या का चयन सबसे महत्वपूर्ण है। उसी के द्वारा शोध की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। प्रस्तुत शोध में समस्या के चयन के रूप में एक ऐसे जनजातीय समाज को रखा गया है जो सदियों से दूर-दराज, पहाड़ी व घने जंगलों में बसता आया है। यह जनजाति बैगा जनजाति है जिसे म.प्र. सरकार ने पिछड़ी जनजातियों की श्रेणी में रखा है। बैगा जनजाति पर वैरियर इल्विन से लेकर अब तक अनेक कार्य हो चुके हैं और कई पुस्तकें भी लिखी जा चुकी हैं। वैरियर इल्विन से पहले भी कुछ विद्वानों ने बैगा जनजाति का उल्लेख किया है परन्तु इन सभी विद्वानों ने उस समय बैगा जनजाति में जो कुछ देखा उसी का वर्णन किया है। इस संदर्भ में वैरियर इल्विन का कार्य महत्वपूर्ण है। परन्तु आज इनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आया है जिसका उल्लेख अभी तक नहीं किया गया, क्योंकि उस समय ये परिवर्तन घटित भी नहीं हुए थे । बेवर खेती का पतन, परम्परागत फसलों का ह्रास, गाँवों में स्कूलों, आँगनबाडी व स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, प्रत्येक गाँव को सड़क से जोड़ने की योजना, सरकारी सुविधाओं व योजनाओं का लाभ, पंचायतीराज व्यवस्था का प्रभाव तथा अन्य जनजातियों एवं जातियों से सम्पर्क व औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आवागमन के साधनों के कारण इनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन आया है। जिसका प्रभाव इनकी आर्थिक संरचना पर भी परिलक्षित हुआ है । प्रस्तुत अध्ययन की समस्या बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

2.2 अध्ययन की आवश्यकता व महत्व

आज कोई भी समाज परिवर्तन से अछूता नहीं है। यह अवश्य है कि नगरीय व ग्रामीण समाज की तुलना में जनजातीय समाज में परिवर्तन की गति धीमी रही है। इसका एक बहुत बड़ा कारण जनजातीय समाजों की पृथकता है। लेकिन वर्तमान में जनजातीय समाज ग्रामीण व नगरीय समाज की ओर गतिशील है, विशेषकर ग्रामीण समाज की ओर। साथ ही ग्रामीण व नगरीय समाज के लोगों ने भी अपने आर्थिक लाभ के लिये इनके समाजों में प्रवेश का दायरा बढ़ाया है जिससे जनजातीय जीवन में और भी हलचल पैदा हुई है। दूसरी तरफ जनजातीय समाज ने भी अपने आर्थिक घुमक्कड़पन को त्याग कर ग्रामीण समाज की स्थिर कृषि प्रणाली को अपनाने पर जोर दे रहे हैं और बहुत सी जनजातियाँ तो पूर्णरूप से कृषक जातियों में भी विलीन हो गई है। जो जनजातियाँ पहले जंगली उत्पादों को ही अपने आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार मानती रही है, आज उनकी संख्या कम होती जा रही है। अब जंगल सरकार के कब्जे में चले गये हैं। परिणामस्वरूप शिकार भी जनजातियों के हाथों से निकल गया। चूँकि शिकार आसानी से उपलब्ध हो जाता था, अतः ये लोग हष्ट-पुष्ट थे। लेकिन अब शकाहारी पोषण की मंहगाई व आदिवासियों की कमजोर आर्थिक स्थिति ने उन्हें कुपोषण का शिकार बना दिया है। अतः मजबूरन इन्हें कृषि पद्धति को अपनाना पड़ा। कृषि पद्धति को देरी से अपनाने के कारण उन्हें जो भूमि भी मिली वह भी ज्यादा उपजाऊ नहीं है।

जनजातियों का सामाजिक जीवन अब उतना रोमांचकारी, नृत्यों, गीतों, पर्व से परिपूर्ण नहीं रह गया। आधुनिकता की आंधी ने इनके जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप जनजातीय जीवन के अनेक पहलू लुप्त होते जा रहे हैं। अब किसी भी व्यक्ति को वेशभूषा, रंग आदि के आधार पर आदिवासी की संज्ञा देने में कठिनाई होती है। जनजातीय नृत्यों का लोप बहुत तेजी से हो रहा है और उनकी जगह फिल्मी गीतों का चलन बढ़ता जा रहा है। अब जनजातीय जीवन में रेडियों, टी.बी. से गीत सुनना व देखना भी आम बात होती जा रही है। आदिवासियों में जीवन साथी चुनने के तरीके भी सीमित होते जा रहे हैं।

अब इनमें भी सर्वमान्य विवाह पद्धति को प्राथमिकता दी जा रही है। जिसके फलस्वरूप अन्य तरीके समाप्त होते जा रहे हैं। नई पीढ़ी के जनजातीय युवक अपने परम्परागत देवी-देवताओं को भूलते जा रहे हैं और हिन्दू देवी-देवताओं की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में भी जनजातियों में विशेष जागरूकता देखने को मिल रही है। अब ये लोग भी चाहते हैं कि कोई उनकी जाति/ गाँव/ क्षेत्र का नेता हो जो उनके विकास पर ध्यान दें। इसी का परिणाम है कि ये लोग भी मतदान प्रक्रिया के सम्बन्ध में जागरूक हुए हैं। कई गाँवों के प्रधान व सरपंच तो आदिवासी लोग ही हैं। यह अलग बात है कि अशिक्षित व कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण वे सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाते ।

वर्तमान समय में जनजातीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है तथा परिवर्तन जनजातीय जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित कर रहा है। बाह्य सम्पर्क इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जो जनजातीय समाज सुदूर, बीहड़ एवं अगम्य प्रदेशों में निवास करते आये हैं, उनकी सामाजिक संरचना अपने मूल स्वरूप के अधिक निकट है। यद्यपि वर्तमान में कोई भी ऐसी जनजाति नहीं है, चाहे वे अरूणाचल के अपातानी हों या अरावती के भील, अण्डमान-निकोबार द्वीप के आदिवासी हों या बैगाचक के बैगा, संचार के माध्यम एवं यातायात तथा आवागमन के साधनों ने उन्हें बाह्य समाजों की संरचना से न्यूनाधिक मात्रा में प्रभावित अवश्य किया है। नवीन संवैधानिक प्राविधानों ने आदिवासियों के जीवन निर्वहन की प्रक्रिया को प्रभावित किया है। जिन वनों के वे स्वामी हुआ करते थे, उन पर शासकीय आधिपत्य आ जाने से उनकी आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। ऐसी स्थिति में बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन समीचीन था । प्रस्तुत अध्ययन इसी आवश्यकता की पूर्ति का एक प्रयास है।

2.3 साहित्य का पुनरावलोकन

शोध प्रबन्ध की परम्परागत श्रृंखला में साहित्य का पुनरावलोकन एक अपरिहार्य कड़ी होने के कारण आवश्यक रूप से संलग्निक किया जा रहा है। इन उपलब्ध समीक्षाओं के आधार पर ही शोध की परिकल्पना एवं संभावित विषय-वस्तु का निर्माण किया जाता है।

आदिवासी संदर्भ के शोध कार्य भारत में प्रमुख रूप से मानवशास्त्रियों द्वारा किये गये एवं यह प्रक्रिया आधुनिक समय तक अनवरत चल रही है। इन अध्ययनों को ब्रिटिश प्रशासकों एवं शिक्षाविद्रों के द्वारा प्रमुखता प्रदान करते हुए विदेशी धर्म सम्प्रदाय के व्यक्तियों एवं शैलानियों को आंमत्रित करके जिज्ञासापूर्वक अध्ययन के लिये प्रेरित किया गया।

वास्तविक रूप से भारतीय महाद्वीप में मानवशास्त्र का इतिहास आदिवासी अध्ययनों से परिपूर्ण है। इस प्रकार के अध्ययन की प्रमुख गतिविधियों का उल्लेख करते हुए उस समय के जो शिक्षाविद् संदर्भित किये जा सकते हैं, उनमें Dr. D.N.Majumdar (1950-1956), Dr. G.S.Ghurye (1956), Dr. S.C.Dube (1956-1962), Dr. N.K.Bose (1963), Dr.L.P.Vidyarathi (1966, 1970), Surajit Sinha (1968), S.C.Ray (1981) प्रमुख हैं। वर्ष 1921 के प्रारम्भ में एस.सी.राय के द्वारा उन मानवशास्त्रिय अध्ययनों का संकल्प क्रमानुसार तैयार किया गया जिसमें आदिवासी संदर्भ के प्रमुख योगदान संदर्भित थे । इन संकलन में इन्होंने प्रकाशित साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :-

1. पत्रिकाओं में छपे हुए लेख
2. छोटी लिपिबद्ध पुस्तकें जो विभिन्न क्षेत्रों की थी एवं
3. आदिवासियों पर स्पष्टीकृत मोनोग्राफ ।

यह प्रयास सर्वप्रथम होने के कारण इस संकलन को व्यवस्थित ग्रन्थ की संज्ञा प्राप्त हुई। इसमें यह भी बताया गया है कि ब्रिटिश प्रशासकों, विदेशी सम्प्रदायों के व्यक्तियों एवं शैलानियों आदि का कितना वर्चस्व भारतीय आदिवासी क्षेत्र पर स्थापित था।

इसके 25 वर्ष बाद तक कोई भी प्रयास किसी उल्लेखनीय शिक्षाविद् का प्राप्त नहीं हो सका। तदुपरान्त एक व्याख्यान माला के अन्तर्गत डॉ0 डी.एन.मजूमदार के संदर्भ की

प्राप्ति होती है। यह व्याख्यानमाला विश्वविद्यालयों में आयोजित की गई थी और इसमें विभिन्न प्रकार के मानवशास्त्रियों शोध कार्यो के विकास की समीक्षा की गई थी। इसमें डॉ0 डी.एन. मजूमदार के द्वारा ब्रिटिश प्रशासकों, ब्रिटिश मानवशास्त्रियों का उल्लेख करते हुए यह बताया गया कि किसी प्रकार से भारतीय महाद्वीप का आदिवासी क्षेत्र अभावग्रस्त है।

1952 में डॉ0 एस.सी.दुबे के द्वारा यह प्रयास किया गया कि भारतीय मानवशास्त्रीय क्षेत्र के शोध समीकरण, आदिवासी शोध कार्यों के सापेक्ष स्थापित होना चाहिए। वर्ष 1956 में वियाना में हुई मानवशास्त्रीय संगोष्ठी में डॉ0 एस.सी.दुबे के द्वारा विश्व के तमाम राजनैतिक नेताओं, राजनीतिशास्त्रियों एवं समाज वैज्ञानिकों का स्पष्ट रूप से ध्यानाकर्षण किया गया कि किस प्रकार से भारतीय परिधि के अन्तर्गत सांस्कृतिक बाहुल्यता का समन्वय कहे जाने वाले आदिवासी शोध अध्ययन की दृष्टि से उपेक्षित किये जा रहे हैं। इसमें प्रमुख रूप से आदिवासियों की संस्कृति, कला, समूह संरचना एवं जाति घनत्व आदि का प्रसंग विशेष रूप से ध्यानाकर्षण का केन्द्र बनाया गया। डॉ0 एस.सी.दुबे के द्वारा यह अनुभव किया गया कि विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों एवं व्यक्तिगत शिक्षाविदों के सामूहिक प्रयास के द्वारा आदिवासी संदर्भ के शोध एवं उपयोगी सुझाव निर्मित किये जा सकते हैं।

डॉ0 एस.सी.दुबे (1962) के द्वारा एक अन्य शोध पत्र में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया कि किस प्रकार भारतीय समकालीन समाज में भारतीय मानवशास्त्री आदिवासी समस्याओं के प्रति अधिक केन्द्रित नहीं हो सके हैं। इसी के संदर्भित ग्रन्थ में एफ. जी.बैले द्वारा उन शोध कार्यो को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया जो आधुनिक परिवेश में निवास करने वाली जटिल समाज शैली के संदर्भ में थी ।

डॉ0 एन.के.बोस (1963) के द्वारा मानवशास्त्र के 50 वर्षीय विकास का पुनरावलोकन Indian Science Congress Association" के सौजन्य से किया गया। इसमें

संक्षिप्त रूप में प्रारम्भिक शोध कार्यो की समीक्षा की गई एवं भारत में मानवशास्त्र विकास का पुनरावलोकन तीन वर्गो में किया गया :-

1. Pre-Historic Archeology
2. Physical Antropology
3. Cultural Antrhopology

इस संकलन में विशेष रूप से ग्रामीण अध्ययनों तथा विवाह एवं परिवार प्रणालियों पर उचित ध्यान दिया गया । इसमें विशेष रूप से जाति की व्याख्या गुणात्मक आधारों पर करने की चेष्टा की गई ।

डॉ0 एल.पी.विद्यार्थी (1966) के द्वारा दो शोध पत्रों के माध्यम से भारतवर्ष के संदर्भ में समाजशास्त्रीय शोध कार्यो की समीक्षा की गई । इन अध्ययनों में प्रमुख रूप से यह बताया गया कि किस प्रकार आदिवासी परिप्रेक्ष्य के अध्ययन वर्ष से प्रखरित हुए। इसमें प्रमुख रूप से ग्रामीण, जातीय एवं शहरी आशय के सामाजिक अध्ययनों के विकास की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए यह प्रस्तावित किया गया कि वर्ष 1950 की अवधि को ही समकालीन प्रसंग में उचित माना जा सकता है। इस आशय की संस्तुति सुरजीत सिन्हा (1968) के द्वारा की गई। इस अवधि में जो प्रमुख शिक्षाविद् भारतीय क्षेत्र के संदर्भ में उभर कर सामने आये, उनमें डॉ. एन.के. बोस, डा.एल.पी. विद्यार्थी प्रमुख हैं।

यह विकास की कृमिक अवस्था एवं तदर्थ पुनरावलोकन की मीमांसा क्रमानुसार यह ब्यौरा देती है कि जनजातीयों के संदर्भ में कोई अत्याधिक उल्लेखनीय शोध कार्य वर्ष 1950 के पूर्व तक नहीं किया गया था। इस आशय के माध्यम से एल.पी.विद्यार्थी (1970) के द्वारा भारतीय आदिवासी शोध कार्यो की जो समीक्षा प्रस्तुत की गई उसमें ग्रामीण अध्ययन, शहरी एवं औद्योगिक अध्ययन, जातीय अध्ययन एवं संस्कृति तथा व्यक्तित्व के संदर्भ के अध्ययन आदि उल्लेखनीय है। इस संकलन में लगभग आधा अंश चार क्षेत्रों में विभाजित भारतीय आदिवासी संदर्भ के शोध कार्यो का है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यदि भारतीय जनजातीय शोध कार्य को विभाजित किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि यह तीन अंशो में वर्णन योग्य है :-

1. निर्माणावधि (1774-1919)
2. रचनात्मक अवधि (1920-1949)
3. वर्गीकरण एवं विश्लेषण (1950 के पश्चात)

निर्माणावधि (1774-1919)

यद्यपि यह वर्गीकरण व्यापक रूप से उपयोगी है, फिर भी सदैव सचेत रहना चाहिए कि उपर्युक्त वर्णित तीनों अवस्थायें किसी प्रकार से एक-दूसरे के सापेक्ष अंशों में अपरिवर्तनीय है। भौगोलिक सीमा निर्धारण की दृष्टि से भी आदिवासी शोध कार्यो पर जो तथाकथित शैक्षणिक संकीर्णता निर्मित करने की चेष्टा की गई, उसका स्पष्ट प्रभाव संबंधित शोध कार्यो के विकास पर परिलक्षित होता हैं।

इस प्रसंग में भारत में उत्तर पूर्व में जो क्षेत्र नेफा का जाना जाता है, उसमें निवास करने वाली कुछ आदिवासियों के संदर्भ में कोई निर्माण अथवा संरचना की उचित शैली का विकास शोध कार्य के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया गया। इस प्रकरण को संदर्भित करने का आशय यह है कि दीर्घकालिक एवं व्यापक स्तर की शोध पद्धति भारतीय आदिवासी क्षेत्रों में प्रभावी तौर पर उपयोग में नहीं लाई गई ।

साहित्य के पुनरावलोकन के वर्तमान प्रसंग में कुछ और अध्ययनों को समायोजित करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि तत्कालीन समय के विशेष प्रसंगों पर एक विहंगम दृष्टिपात किया जाए। बंगाल में वर्ष 1774 के पश्चात जो एशियाटिक सोसाइटी का निर्माण किया गया उसके माध्यम से ब्रिटिश प्रशासकों, मिशनरियों, आगन्तुकों एवं मानवशास्त्रीय संदर्भ के व्यक्तियों द्वारा आदिवासी एवं ग्रामीण समूहों के संदर्भ में तथ्यों का संकलन किया गया। इन संकलनों के आधार पर ग्रामीण जनजीवन एवं संस्कृति का संभावित ब्यौरा प्रस्तुत

किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक एवं भू-गर्भशास्त्री सूचनाओं के आधार पर कुछ सूचनाओं के आधार पर कुछ सूचनाओं का संयोजन आदिवासी परिप्रेक्ष्य में प्रकाशित किया गया जिसमें डिस्ट्रिक गजेटियर तथा आदिवासी एवं जातीय संदर्भ की छोटी पुस्तकें तथा कुछ मोनोग्राफ प्रमुखता रखते हैं। यह समस्त योगदान आसाम के आदिवासी परिप्रेक्ष्य में है। इस अंश के अन्तर्गत उल्लेखनीय है कि वर्ष 1931 एवं 1941 के राष्ट्रीय सर्वेक्षणों में ब्रिटिश एवं भारतीय मानवशास्त्रियों ने संयुक्त रूप से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले जातीय एवं आदिम जातीय समूहों के संदर्भ में तथ्य एकत्रित किये ।

इस संदर्भ में कुछ ब्रिटिश प्रशासनिक व्यक्ति जो भारत के प्रमुख क्षेत्रों में नियुक्त थे, को भी संदर्भित किया जा सकता है - जैसे रिजले, डाल्टन, रसल। इन समस्त व्यक्तियों के माध्यम से भारतीय जाति एवं आदिम जाति के बारे में जो कुछ आविष्कार इनसाइक्लोपीडिया के अध्ययन से संकलित किये गये जो आज भी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले व्यक्तियों के सामान्य जन जीवन में तत्कालीन सूचनायें प्रदान करते हैं। इन समस्त प्रयासों के माध्यम से भारतीय परिप्रेक्ष्य में विभिन्न मोनोग्राफ निर्मित किये गये।

समस्त प्रयासों के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर शरतचन्द्र राय द्वारा 1912 में मुण्डा जनजाति, 1915 में ओराँव जनजाति, 1925 में बिरहोर जनजाति, 1928 में ओराँव धर्म एवं प्रथाएँ तथा वर्ष 1935 में पहाडी भुइया तथा वर्ष 1937 में खरिया जनजाति के संदर्भ में अविस्मृत होने वाली शोध पत्रावलियाँ प्रस्तुत की गई। तत्कालीन समय में 5 जनवरी 1938 में कलकत्ता में जो मानवशास्त्री संगोष्ठी हुई उसमें जे.एस.हट्टन के द्वारा शरत चन्द्र राय के योगदानों को जनजातीय शोध कार्यो के सापेक्ष प्रमुख प्रणेता के रूप में माना गया। आर.पी.चन्द्रा द्वारा वर्ष 1916 में एक ग्रन्थ का संकलन किया गया जिसमें इण्डो आर्यन प्रजाति का उल्लेख किया गया। इसके माध्यम से प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास एवं भारत में जनजातीय मिश्रण की विवेचना की गई।

रचनात्मक अवस्था (1920-1949)

वर्ष 1919 में बम्बई विश्वविद्यालय एवं वर्ष 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा क्रमानुसार जनजातियों के संदर्भ में समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय शोध अध्ययन प्रोत्साहित किये गये। विभिन्न बुद्धिजीवियों को प्रशिक्षित करके जनजातीय शोध कार्यो के लिये सक्षमता प्रदान की गई। इसके तुरन्त बाद विशेषीकृत विषयों तथा नातेदारी व्यवस्थाओं, सामाजिक संगठनों आदि को अध्ययन विषय का आधार मानते हुए व्यापक स्तर पर क्षेत्र परीक्षण करते हुए जनजातीय संदर्भ शोध समीकरण का निर्माण किया गया। [Dr.G.SGhurye (1943,1952,1954),K.P.Chattopadhyay(1922, 1925), Dr. Mysore Narsimhachar Srinivas (1925,1946), Dr. Dhirendra Nath Majumdar (1937), Dr. Irawati Karve (1940-1941), & Some others studies]

म.प्र. आदिवासियों के संदर्भ में वैरियर इल्विन का योगदान महत्वपूर्ण है। वैरियर इल्विन म.प्र. में आदिवासियों के अध्ययन के लिये पहले बैतूल ओर बाद में पाटनगढ़ जाकर रहे। यहाँ उन्होंने 22 वर्ष प्रख्यात मानवशास्त्री जी.सी.हेडन के सानिध्य एवं निर्देशन में जनजातियों का अध्ययन किया। बाद में बैगा (1939), अगरिया (1942), मरिया (1943), मुरिया (1947) एवं बौण्ड (1950) तथा कुटिया, कोण्ड, परधान जैसे अनेक आदिवासी समूहों का अध्ययन किया और आदिवासियों पर अनेक पुस्तकें लिखीं। 1952 में वैरियर इल्विन आसाम के तत्कालीन गवर्नर के आमंत्रण पर वहाँ गये और मणिपुर, आसाम की जनजातियों (1959) का अध्ययन किया । वैरियर इल्विन ने "अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कमीशन" में सचिव के रूप में कार्य किया और सन् 1960 में सरकार को इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की। वैरियर इल्विन भारतीय सरकार के जनजातीय मामलों के सलाहकार भी रहे। वैरियर इल्विन ने जनजातियों की समस्याओं के समाधान हेतु प्रारम्भ में "नेशनल पार्क" (अलग-थलग की नीति) के उपागम को प्रस्तुत किया किन्तु बाद में उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू की "एकीकरण की नीति" (आरक्षण एवं विकास) का समर्थन किया। संक्षेप में वैरियर इल्विन ने

जनजातियों के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीतियों के निर्माण एवं नियोजन कार्य में महती भूमिका अदा की है।

फ्यूरर हेमण्डार्फ (1943) के द्वारा हैदराबाद के आदिवासियों तथा अन्य प्रकाशनों द्वारा यह प्रयास किया गया कि आगामी शोध कार्यो में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य शोध परियोजना निर्मित की जा सकती है। इसी संदर्भ में Bricks (1920), Ayyer (1929), Hutton (1946) का उल्लेख किया जा सकता है जिनके माध्यम से परम्परागत आदिवासी समाजों के बारे में जो सूचनाएँ प्रदत्त की गई हैं वह सम्बन्धित किसी भी शोध कार्य के लिये नैतिक पृष्ठभूमि का आधार निर्मित करती हैं।

वर्गीकरण एवं विश्लेषण अवधि (1950 के पश्चात)

इस अंश के अन्तर्गत 1950 के पश्चात के विभिन्न शोध प्रसंगों का ब्यौरा प्रस्तुत किया जा सकता है। इस अवधि में यह माना जा सकता है कि विशेष रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात तथा स्पष्ट रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अमेरिकन मानव समाजशास्त्रियों का आगमन इस क्षेत्र में हुआ। इनमें आस्कर लेविस, मेण्डलबॉम आदि प्रमुख हैं जो अपनी शोध समितियों के साथ भारतवर्ष में निवास करते हुए भारतीय जीवन के संदर्भ में तथ्यों का उल्लेखनीय संग्रह करते रहे। इन अध्ययनों के माध्यम से उपलब्ध शोध पद्धतियों को भी पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया। इस प्रसंग में सामुदायिक विकास योजनाओं का जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिये किस प्रकार से संभावित उपयोग किया जा सकता है, को भी विवेचना एवं विश्लेषण का केन्द्र बनाया गया किन्तु आर्थिक परिदृश्य इन अध्ययनों में विलुप्त ही रहा।

1977 में कृष्णा महापात्रा ने रिसर्च प्रोसीडिंग पत्रिका में अपने लेख द बोडा टूडे में उड़ीसा की बोड़ा जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के संदर्भ में जो सूचनाएँ प्रदत्त की हैं वे काफी महत्वपूर्ण है। जे.एम.गिलबर्ट ने 1978 में

नार्थ वेस्टर्न निवासी ग्रिब जनजाति की भाषा, जनसंख्या, कृषि, खाद्य सामग्री, वस्तु, आवास एवं उनके सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन प्रस्तुत किया।

वर्तमान प्रसंग के अन्तर्गत विभिन्न शिक्षाविदों के द्वारा ग्रामीण संस्कृति, नेतृत्व, शक्ति संरचना, धार्मिक अवलम्बन एवं व्यक्तित्व की विविधताओं आदि का स्पष्ट रूप से मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया। इसमें जनजातीय प्रसंग की विश्लेषण एवं कार्यशैली की जो संयुक्त समीक्षा निर्मित करने की चेष्टा की गई, वह वर्तमान समय में भी जिज्ञासा एवं शोध विवेचना का केन्द्र बनी हुई है। इन अध्ययनों के माध्यमों से जनजातीय एवं गैर जनजातीय समाजों में स्पष्ट विभेदीकरण का प्रयास भी किया गया है। इस संदर्भ में डॉ0 डी.एन. मजूमदार का खस जनजाति की बहुपति प्रथा का अध्ययन (1962), सुरजीत सिन्हा का भूमिज जनजाति का अध्ययन (1957), एल.पी.विद्यार्थी का मालर पहाडी क्षेत्रीय अध्ययन (1965) तथा जे.एडवर्ड का मुड़िया ग्राम (1970) का अध्ययन प्रमुख है। ये अध्ययन मुख्यतः सामाजिक परिदृश्य को निरूपित करते हैं। आर्थिक संरचना का अध्ययन अभी भी अछूता ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उपयोगिता एवं क्षेत्रीयता के आधार पर विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों में जनजातीय शोध संस्थान स्थापित किये गये। इनमें म.प्र. में भोपाल व छिंदवाड़ा (1954), बिहार में राँची (1954), बंगाल में कलकत्ता (1955), उड़ीसा में भुवनेश्वर (1955), आसाम में शिलांग (1964), राजस्थान में उदयपुर (1964) तथा इसके पश्चात आन्ध्र प्रदेश में हैदराबाद एवं महाराष्ट्र में पूना तथा अन्य जगहों पर खोले गये संस्थान प्रमुख हैं। इनके माध्यम से प्रभावी शोध योजनाएँ तथा प्रशिक्षण के कार्यक्रम इस प्रकार चलाये जा रहे हैं जिससे जनजातीय सामाजिक संगठनों की न्यून से न्यून इकाइयों के बारे में तथ्यों का संग्रह किया जा सकें।

वर्ष 1974 में एशियाटिक सोसाइटी के बंगाल में निर्मित होने के पश्चात जो मानवशास्त्री शोध सर्वेक्षण क्षेत्रीयता के आधार पर प्रोत्साहित करने के प्रयास किये गये उनमें जनजातीय समस्याओं के अध्ययन की प्रमुखता को शीर्ष पर रखा गया। वर्ष 1881, 1891, 1901 एवं 1921 में किये गये अखिल भारतीय स्तर के राष्ट्रीय सर्वेक्षण के माध्यम से मध्य

भारत में निवास करने वाले आदिवासियों के संदर्भ में तथ्यों का संभावित संग्रह प्रदान करने की चेष्टा की गई। वर्ष 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र विभाग द्वारा जनजातीय समाजों के संदर्भ में शोध कार्यो का सिलसिला प्रारम्भ किया गया। तदुपरान्त बिहार एवं उड़ीसा में तत्संबंधित शोध कार्यो को प्रोत्साहन दिया गया।

साहित्य के पुनरावलोकन के परिप्रेक्ष्य में जो व्यापक स्तर पर शोध कार्य किये गये, उनमें से कुछ का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :- S.C.Roy (1915,1925,1928,1933), S.S. Sarkar (1938), W.J.Kalcha (1941), T.C.Das (1943), Dr. D.N.Majumdar (1950, 1956), Surajit Sinha (1957-1959, 1961-1962, 1965), B.B. Mukerjee (1960), A.B.Saran (1961), A.K.Das & others (1962-1966, 1968-1969), L.P.Vidyarthi (1963), K.Bhaumik (1963), K.N.Sahai (1964), Rajendra Singh (1966), K.C.Sasmol (1967), B.N.Sahai (1968), R.K.Prasad (1968), Sacchidanand (1968), D.P.Sinha (1968), S.K.Gupta (1969), K.K.Verma (1970), Sachin Roy & Usha Agrawal (1971), Vatan Singh Jaunsari (1984), L.N.Meena (1991), Ashok De Patil (1998) etc.

इन अध्ययनों के माध्यम से भारतीय महाद्वीप में जनजातीय सामाजिक संगठनों के प्रति किये गये शोध कार्यो की आख्या प्राप्त होती है। वस्तुतः यह संदर्भित शोध कार्य पूर्ण व्यक्तिगत शैलियों पर अवलम्बित प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त वर्णित अध्ययनों में जनजातीय समस्याओं के किसी एक कारक विशेष के संदर्भ में अधिक जानकारी दी गई है।

इसके अतिरिक्त अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं, लोककला परिषदों एवं शोध संस्थानों द्वारा भी समय-समय पर आदिवासियों पर शोध कार्य किये जाते रहे हैं। भोपाल में स्थिति आदिवासी लोककला परिषद द्वारा म.प्र. की जनजातियों की कला को जानने हेतु अनेक सर्वेखण किये गये हैं और बाद में विभिन्न जनजातियों पर मोनोग्राफ के रूप में प्रकाशित हुए। इनमें नवल शुक्ल द्वारा दण्डामी माड़िया (1986-1988), वसन्त निरगुणे द्वारा सहरिया, भारिया (1987-1988), निरंजन महावर द्वारा देवार (1986), महेश चन्द्र शांडिल्य एवं बसन्त निरगुणे

द्वारा कोरकू, शेख गुलाब द्वारा गोंड़, नवल शुक्ल द्वारा मुरिया एवं वसन्त निरगुणे द्वारा बैगा जनजाति पर लिखे गये मोनोग्राफ प्रमुख है। परन्तु इन विद्वानों ने जनजातियों के परिवर्तित प्रतिमानों को दर्शाने का प्रयास नहीं किया वरन परम्परागत स्वरूपों को ही विस्तार दिया है।

बैगा आदिवासियों के बारे में सबसे पहले सन् 1867 में कैप्टन थामसन ने लिखा था कि बैगा बहुत घने जंगलों और सहज रूप से अगम्य वनों में रहने वाली सबसे जंगली जनजाति हैं।

इसके पश्चात 1868 से 1885 तक बालाघाट बिलासपुर जोन के डिप्टी कलेक्टर कर्नल ब्लोम फीड ने भी बैगा जनजाति पर लेखन कार्य किया और अपनी रिपोर्ट ब्रिटेन की ईसाई मिश्नरी को भेजी। सन् 1931 में रसल ने करीब 24 पेजों पर बैगा जनजाति के इतिहास पर चित्रण किया। इसके पश्चात् सन् 1932 में वैरियर इल्विन ने अपने मित्र श्याम राव हिवाले के साथ बैगा चक के ग्राम पाटन एवं सड़वा छापर में रहकर करीब 6 वर्षो तक इस जनजाति पर कार्य किया और द बैगा नाम पुस्तक लिखी। यह बैगाओं पर पहली पुस्तक थी जो बैगा जनजाति के सम्पूर्ण जीवन को समाहित करती है। वास्तव में वैरियर इल्विन ने इस पुस्तक में जो सहभागिक चित्रण व विवरण प्रस्तुत किया है वैसा विवरण व चित्रण प्रायः अन्य स्थानों पर देखने को नहीं मिलता है। इस पुस्तक में वैरियर इल्विन ने बारीक से बारीक पक्षों पर प्रकाश डाला है।

वैरियर इल्विन अंग्रेज थे। इन्होंने बैगाओं के बीच रहकर उनकी बोली सीखी। वह इस दौरान दो-तीन बार बैहर तहसील भी गये जहाँ भरौतिया एवं नरौतिया बैगाओं के सम्पर्क में रहे। साथ ही कवर्धा, रींवा, विलासपुर क्षेत्र में भी जनजाति पर कार्य किया। इनका अधिकतर कार्य डिण्डौरी एवं कवर्धा जिलों की सीमा पण्डरिया ग्राम के बीच हुआ है। वैरियर इल्विन ने कहा कि बैगा वास्तव में भूमिया जनजाति की ही एक शाखा है। भूमिया अथवा भूइंगा का अर्थ 'भूमिराजा' या 'भूमिजन' होता है। वैरियर इल्विन ने बैगा जनजाति के अतिरिक्त परधान, अगरिया, मारिया, मुरिया, कुटिया, कोण्ड, बौण्ड, जैसे अनेक आदिवासी समूहों पर

कार्य किया। 1952 में आसाम के तत्कालीन गवर्नर के आमंत्रण पर वहाँ गये और 'नेफा प्रदेश' की जनजातियों का अध्ययन किया और कई पुस्तकें लिखी ।

आर.वी.रसल इंग्लैण्ड के पादरी व कमिश्नर थे जबकि जबलपुर निवासी हीरालाल, जबलपुर के कमिश्नर थे और इंग्लैण्ड में पढ़े थे। इन्हें सर की उपाधि दी गई थी । ये दोनों मित्र थे और अधिकतर लेखन कार्य साथ-साथ मिलकर किया। इन्होंने भी बैगा जनजाति पर काफी कुछ लिखा है। आर.वी.रसल और हीरालाल ने बैगा का अर्थ भूमिया जनजाति के उन विशेष व्यक्तियों से लगाया है जो गुनियाई और भुताई का कार्य करते हैं। संभवतः भूमिया जनजाति का जो वर्ग दवा-दारू और गुनियाई-भुताई का कार्य करने लगा, उसे बैगा कहने लगे।

इसके पश्चात ट्राइबल रिसर्च डेवलपमेण्ट इस्टीट्यूट भोपाल की सर्वेक्षण टीमों ने समय-समय पर विभिन्न जनजातियों पर सर्वे कार्य किया। लेकिन ये टीमें जनजातीय जीवन के किसी एक पहलू को लेकर ही चलती थीं और उसी के बारे में सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट संस्थान को प्रस्तुत करती थीं। बाद में ये रिपोर्ट लेखों के रूप में ट्राइबल बुलेटिन में प्रकाशित हुई।

सन् 1986 में आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल की सर्वेक्षण टीम ने वसन्त निरगुणे के नेतृत्व में बैगा जनजाति पर सर्वेक्षण का कार्य किया। बाद में यह सर्वेक्षित रिपोर्ट एक मोनोग्राफ 'बैगा' के रूप में प्रकाशित हुई जिसमें सरल भाषा में बैगा जनजाति के विभिन्न पहलुओं को चित्रण सहित प्रस्तुत किया गया है। प्रकाशित होने से पूर्व प्रसिद्ध मानवशास्त्री डॉ0 एस.सी.दुबे ने इस मोनोग्राफ को पढ़कर अपनी स्वीकृति प्रदान की। वसन्त निरगुणे सेवानिवृत्ति के बाद भी लेखन कार्य में अभी भी लगे हुए हैं और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों में व्यतीत किये हुए अपने अनुभवों को प्रस्तुत किया है।

बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल के तुलनात्मक भाषा और संस्कृति विभाग के प्रो0 हीरालाल शुक्ल ने सन् 1997 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आदिवासी अस्मिता और विकास' में बैगा जनजाति के विषय में बहुत ही संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की ।

म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के आमंत्रण पर लोकसंस्कृतिकार डॉ0 विजय चौरसिया ने सन् 2004 में प्रकृति पुत्र बैगा नामक पुस्तक लिखी जिसमें बैगा जनजाति की जनसंख्या, गांवों व स्त्री-पुरूषों की संख्या, रहन-सहन आदि का विवरण प्रस्तुत किया।

2.4 अध्ययन के उद्देश्य

कोई भी अनुसंधान कार्य बिना उद्देश्य के इधर-उधर पैर मारने जैसा है । ज्ञान का क्षेत्र असीमित है। अतः सीमाएँ निश्चित करना आवश्यक है। इसी सृष्टि से प्रत्येक अनुसंधान कार्य के उद्देश्य सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित कर लिए जाते हैं। इसी मान्यता के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन के भी कुछ उद्देश्य निर्दिष्ट किए हैं, जो निम्नवत हैं :-

1. आदिवासी बैगाओं की आर्थिक संरचना का अध्ययन करना।
2. बैगाओं द्वारा अर्थोर्जन हेतु किए जा रहे कार्यो एवं उन्हें मिलने वाले श्रममूल्य की स्थिति का विश्लेषण करना।
3. बैगाओं की ऋणग्रस्तता की समस्या के छिपे कारणें को ज्ञात करना।
4. आदिवासियों की शोषण की स्थिति का अध्ययन करना ।
5. आदिवासियों या जनजातियों के लिए शासन द्वारा चलायी जा रही विकासोन्मुख योजनाओं तथा आदिवासियों को उनसे मिलने वाले लाभों की स्थिति का अध्ययन करना।
6. वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आदिवासी बैगाओं की आर्थिक संरचना की स्थिति का अध्ययन करना।

इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए निम्नांकित उपकल्पनाओं की स्थिति का निर्धारण किया गया है :-

1. आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक एवं आर्थिक संरचना में पुरूष एवं महिलाओं की समान सहभागिता होती है।
2. बैगा आदिवासियों में महिलाएं जंगलात से प्राप्त उत्पादों के संग्रहण का कार्य करती हैं तथा विक्रय का कार्य पुरूष एवं महिला दोनों द्वारा किया जाता है।
3. बैगाओं को उनके द्वारा किए जाने वाले श्रम का मूल्य पूरा एवं समय से प्राप्त नहीं होता है जिससे वे आर्थिक शोषण के शिकार होते हैं।
4. बैगा आदिवासी क्षेत्रों में शासन की नवीनतम आर्थिक विकास की अवधारणा स्वयं सहायता समूह संचालित नहीं है जिससे उनका आर्थिक विकास अवरूद्ध है।
5. शासन स्तर पर चलायी जा रही आर्थिक एवं कल्याणकारी योजनाओं और कार्यक्रमों की जानकारी आदिवासी बैगाओं को नहीं है।
6. बैगा महिलाएं आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होती हैं।

2.5 अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन म.प्र. के डिंडौरी जिले के बजाग विकासखंड के अन्तर्गत आयोजित किया गया है। डिण्डौरी जिले के अन्तर्गत पांच विकासखण्ड अमरपुर, करंजिया, समनापुर, बजाग व डिंडौरी विकासखंड आते हैं। विकासखण्ड बजाग के 23 गांवों में बैगा जनजाति निवास करती है। बजाग विकासखण्ड के 23 गांवों में जिनमें बैगा जनजाति निवास करती है, उनमें 8 गाँव वनग्राम हैं जबकि शेष 14 गाँव राजस्व ग्राम के अन्तर्गत आते हैं। 23 गांवों में से चार गांवों को अध्ययन के लिए चुना गया है। इन चार गांवों का चुनाव इसलिए किया गया क्योंकि इनमें बैगा जनजाति की बहुलता है। शेष गाँव में बैगा जनजाति की संख्या अत्यन्त न्यून है। जिन चार गांवों को अध्ययन के लिए चुना गया है उनमें से दो गाँव वनग्राम

हैं जबकि दो गाँव राजस्व ग्राम हैं। चारों गांव की दूरी भी बजाग ब्लाक से लगभग एक समान है। चयनित चारों गाँवों के नाम व उनमें परिवारों की संख्या का विवरण निम्नवत् है :-

तालिका संख्या 2.5.1

क्र.	गांव का नाम	परिवारों की संख्या
1	पचगांव रैयत	78
2	पिपरिया	88
3	जल्दा	80
4	बौना	83
	योग	329

स्रोत :- बैगा विकास परियोजना, डिण्डौरी

पंचगांव रैयत में परिवारों की संख्या 78, पिपरिया में 88, जल्दा में 80 व बौना में 83 है। इस प्रकार चारों गांवों में परिवारों की कुल संख्या 329 है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमने इन समस्त गांवों में से प्रथम दृष्टया उपलब्ध परिवारों में से 75-75 प्रति ग्राम परिवारों का साक्षात्कार किया और उनसे प्राप्त जानकारी को अनुसूची में लिपिबद्ध किया। प्रथम दृष्टया से तात्पर्य यह है कि जिन परिवारों के मुखिया उपलब्ध नहीं हुए जो बाहर लम्बे समय के लिए गए हुए थे, उन्हें छोड़ दिया गया।

इस प्रकार कुल 329 परिवारों में से 308 परिवारों का व्यवस्थित साक्षात्कार किया गया। 329 में से 21 परिवारों के मुखिया उपलब्ध नहीं हुए। 308 परिवारों में से विश्लेषण में समरूपता के लिए प्रति ग्राम में से 75-75 परिवारों का चयन किया गया, शेष 8 को छोड दिया गया। इस प्रकार कुल उत्तरदाताओं की संख्या 300 रखी गयी ।

2.6 अध्ययन पद्धति

अनुसंधान (शोध) का तात्पर्य बार-बार खोजने से है। इसमें दो मौलिक तत्वों की प्रधानता पायी जाती है। प्रथम, अवलोकन द्वारा घटना को उद्देश्यपूर्ण ढंग से देखना अथवा

उपलब्ध तथ्यों के आधार पर घटना को समझना । इन दोनों तत्वों को ध्यान में रखकर जो ज्ञान संचित किया जाता है, उसे विश्वसनीय एवं प्रमाणिक माना जाता है। इस प्रकार ज्ञान को संचित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही अनुसंधान के नाम से जाना जाता है।

स्पष्ट है कि अनुसंधान घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने और उन घटनाओं के मूल तक पहुँचने एवं कार्य-कारण संबंधों का पता लगाने का एक व्यवस्थित वैज्ञानिक तरीका है।

जब कोई अनुसंधान सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक जटिलताओं से संबंधित होता है, तब उसे सामाजिक अनुसंधान कहते हैं। इसमें इन सबके संबंध में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस हेतु निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण तथा सत्यापन के आधार पर सामाजिक घटनाओं के कारणों को ढूँढ निकाला जाता है। सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक विधि को काम में लेते हुए अवलोकन तथा सत्यापन का विशेषतः सहारा लिया जाता है। सामाजिक शोध एक लम्बी प्रक्रिया है। वैज्ञानिक निष्कर्षो तक पहुँचने एवं नियमों के प्रतिपादन हेतु आवश्यक है कि शोध के प्रत्येक चरण से संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्यो का सम्पादन निष्पक्ष रूप से सावधानीपूर्वक किया जाए। साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वत्र बनाए रखना भी अनिवार्य है। इस प्रकार के शोधों से प्राप्त सामान्यीकरण एवं नियम ही किसी विषय के ज्ञान भंडार को बढ़ाने में योग देते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक यथार्थकताओं की वैज्ञानिक विधि द्वारा खोज पर विशेष बल दिया जाता है।

प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक शोध प्रारूप का सहारा लिया गया है। अतः आवश्यक है कि इसके अर्थ को भलीभांति समझ लें। विषय या समस्या के संबंध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध संरचना का मुख्य

उद्देश्य है। जिस शोध प्रचना का उद्देश्य वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है, उसे वर्णनात्मक शोध प्रचना कहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु साक्षात्कार अनुसूची प्रविधि को आधार बनाकर साक्षात्कार लेकर उत्तरदाताओं से पूछकर अनुसूची को भरा गया। अध्ययन के दौरान 308 लोगों को साक्षात्कार लिया गया। विश्लेषण में समरूपता के लिए प्रति ग्राम में से 75-75 परिवारों का चयन किया गया। शेष 8 को छोड़ दिया गया। इस प्रकार अध्ययन के लिए कुल 300 परिवारों का चयन किया गया।

अध्याय : तृतीय

आदिवासी बैगाओं का सामाजिक पार्श्व

3. आदिवासी बैगाओं का सामाजिक पार्श्व

पूर्व अध्याय में अध्ययन कार्य से सम्बन्धित अध्ययन पद्धति की विवेचना की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में बैगा जनजाति के सामाजिक पार्श्व की परिदृश्य की विवेचना की गयी है।

3.1 बैगा एक परिचय

बैगा जनजातिय समाज की सर्वाधिक प्राचीन जनजाति है। कैप्टन थामसन ने सर्वप्रथम 1867 में इस जनजातिय समूह के बारे में वर्णन किया । उनके अनुसार बैगा घने जंगलों एवं सहज रूप से अगम्य वनों में रहने वाली सबसे जंगली जाति है।

इसके पश्चात 1868 से 1885 तक बालाघाट विलासपुर जोन के डिप्टी कलेक्टर कर्नल ब्लोम फीड ने भी बैगा जनजाति पर लेखन कार्य किया और अपनी रिपोर्ट ब्रिटेन की ईसाई मिशनरी को भेजी। सन् 1931 में आर.वी.रसेल और हीरालाल ने करीब 24 पृष्ठों पर बैगाओं के इतिहास का चित्रण किया। इसके पश्चात 1932 में वैरियर इल्विन ने अपने मित्र श्याम राव हिवाले के साथ बैगाचक के ग्राम पाटन एवं सड़वा छापर में रहकर करीब 6 वर्षो तक इस जनजाति पर कार्य किया और " दि बैगा" नामक पुस्तक लिखी। वैरियर इल्विन अंग्रेज थे, इन्होंने बैगाओं के बीच रहकर उनकी बोली सीखी । वे इस दौरान 2-3 बार बैहर तहसील भी गये जहाँ भरौतिया एवं नरौतिया बैगाओं के संपर्क में रहे । साथ ही कवर्धा, रीवा, विलासपुर क्षेत्र में भी जनजाति पर कार्य किया। इनका अधिकतर कार्य डिंडौरी एवं कवर्धा जिले की सीमा पंडरिया ग्राम के भूमिया बैगाओं के बीच हुआ। वैरियर इल्विन ने कहा कि बैगा वास्तव में भूमिया जाति की ही एक शाखा है। भूडंगा अथवा भूमिया का अर्थ 'भूमि राजा' या 'भूमिजन' होता है।

सर आर.वी. रसेल और हीरालाल ने बैगा का अर्थ भूमिया जाति के उन विशेष व्यक्तियों से लगाया है जो गुनियायी और भुताई का कार्य करते हैं। संभवतः भूमिया जाति का जो वर्ग दवा-दारू और गुनियायी-भुताई का कार्य करने लगा, उसे बैगा कहने लगे।

बैगा मैकल पर्वत की गहन गिरि कंदराओं, घाटियों तथा नर्मदा नदी के किनारे निवास करते हैं। बैगा मंडला, डिंडौरी, विलासपुर, कवर्धा, शहडोल, बालाघाट, सिवनी एवं छिंदवाडा जिलों के हिस्सों में बसे हुए हैं। रींवा एवं जबलपुर जिलों में भी कहीं-कहीं देखे जा सकते हैं। डिंडौरी जिले और विलासपुर जिले के बीच का भाग ही बैगाचक कहलाता है। बैगाओं से लगी हुई हर जगह गोंड जनजाति की बस्तियाँ हैं, पर गोंड इनकी तुलना में बहुत विकसित हैं। गोंडो के सारे धार्मिक कार्य बैगा कराते हैं।

मध्य प्रदेश में बैगा जनजाति का वितरण अत्यन्त असमान है। भौगोलिक दृष्टि से यह प्रदेश के मैकल पर्वतीय अंचल की गहन गिरि कंदराओं और नर्मदा किनारे की सुरम्य वनस्थलीय में सदियों से जीवन व्यतीत करती आ रही है। 1881 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश में इनकी जनसंख्या 38883 थी, 1891 में 21336, 1901 में 23471, 1911 में 30000, 1921 में 25078, 1931 में 37086, 1961 में 114486 और 1971 में 138626 रही।

1971 की जनगणना के अनुसार म.प्र. की कुल बैगा जनजाति का सबसे अधिक प्रतिशत शहडोल में 40.87 प्रतिशत था। इसके बाद क्रमशः मण्डला में 28.25 प्रतिशत, सीधी में 14.73 प्रतिशत, बालाघाट में 7.17 प्रतिशत, सरगुजा में 5.67 प्रतिशत, विलासपुर में 1.70 प्रतिशत, टीकमगढ़ में 0.70 प्रतिशत तथा 1.21 प्रतिशत अन्य जिलों में वितरित थी।

3.2 बैगाचक

बैगाचक की स्थापना जबलपुर संभाग के कमिश्नर के सचिव श्री आई.के. लौरियर के आदेश क्रमांक 2860/ 221/ 13मई /1890 द्वारा की गई । बैगाचक क्षेत्र जिला

मुख्यालय डिण्डौरी से करीब 65 कि.मी. जबलपुर-अमरकंटक मार्ग पर गाड़ासरई नामक कस्बे से 35 कि.मी. दूरी पर स्थित है। सम्पूर्ण बैगाचक क्षेत्र के अन्तर्गत विकासखण्ड बजाग, करंजिया एवं समनापुर आते हैं। बैगाचक क्षेत्र में बैगाओं के विकास के लिए बैगा विकास अभिकरण की स्थापना 1967 में की गई थी। बैगाचक का केन्द्र बिन्दु वनग्राम चांडा है। इस क्षेत्र में 52 बैगा बाहुल्य ग्राम हैं। प्रारम्भ में बैगाचक के अन्तर्गत 7 वनग्रामों का चयन किया गया जिसमें 1551 बैगा जनजाति के लोग निवास करते थे । ये वनग्राम धुरकुटा, सिलपिड़ी, ढाबा, अजगर, झीलंग, लमोटा एवं रजनी सरई थे । इसके बाद क्रमशः समय-समय पर बैगाचक के अन्तर्गत अन्य ग्रामों को सम्मिलित किया गया। बैगाचक में वर्तमान समय में 52 ग्राम हैं जोकि डिंडौरी जिले के अन्तर्गत आते हैं। इनके परिवारों के संख्या 3250 के लगभग और जनसंख्या 1996 की जनगणना के अनुसार 16283 है। यह क्षेत्र लगभग 60 कि.मी. चौड़ा और 300 कि.मी. लम्बा है। बैगाचक के 52 गाँव तीन विकासखण्डों समनापुर, बजाग और करंजिया के अन्तर्गत आते हैं, जिनका विवरण निम्नवत है :-

विकासखण्ड समनापुर

धुरकुटा, रजनीसरई, अजगर, ढाबा, कांदावानी, फिटारी, गौरा, कन्हारी, झीलंग, पौड़ी, रंजना, बंजरा, सरईमाल, माडागौर माल, माडागौर रैयत, सरईरैयत, बीतनपुर ।

विकासखण्ड बजाग

खारीडीह, सोनतीरथ, कुंदरा, बहरा, चकरार, दो मुहानी, लीमटोला, पीपरपानी, बघरा दादर, बेयरहा, मिलकी दादर, तिरछुला उद्धौर, पंडरीपानी,दलदल, पांडपुर, उफरी, चकमी, महगांव, गोपालपुर, सहजना, बहारपुर, खमार, खुदरा, जुमदेई, चौरादादर ।

डिण्डौरी एवं मंडला जिलों में सन् 1961 की जनगणना में बैगाओं की जनसंख्या 31751 थी । 1971 की जनगणना में इनकी संख्या बढ़कर 48803 पहुँच गई। म.प्र. में 1993 की जनगणना के अनुसार बैगा जनजाति के परिवारों एवं ग्रामों की विस्तृत जानकारी इस प्रकार है :-

तालिका संख्या 3.2

म.प्र. के विभिन्न जिलों में बैगा जनजाति का विवरण

जिला	विकास खण्ड	ग्रामों की संख्या	टोलों की संख्या	परिवारों की संख्या	पुरूष	महिला	कुल
डिण्डौरी	डिण्डौरी	40	111	726	2331	2228	4559
	अमरपुर	38	186	389	966	971	1937
	समनापुर	32	37	775	2053	2017	4070
	बजाग	33	66	759	2177	2250	4427
	करंजिया	24	44	521	1580	1551	3131
बालाघाट	बैहर	69	69	1130	2436	2490	228
	बिरसा	54	54	1182	2979	2979	4816
	परसवाडा	66	66	687	1525	1548	2558
मंडला	नैनपुर	06	13	43	116	112	3706
	बिछिया	45	76	961	2461	2355	4060
	मवई	24	24	588	1287	1271	3095
	घुघरी	49	201	765	1898	1808	2019
	मोहगांव	37	131	886	2055	2005	1096
	मंडला	34	37	556	1631	1464	3115
	मेहदवानी	38	38	397	1000	1019	324
	शहपुरा	22	22	225	540	556	1715
	नारायणगंज	31	31	615	1509	1607	4926
	निवास	07	07	70	160	164	5958
	बीजाडांडी	15	15	375	799	916	3073
कवर्धा	कवर्धा	35	43	371	1023	1004	2027
	बोदला	81	139	1436	4677	4677	9354
	सहजपुरी	18	21	304	628	623	1251
	पंडरिया	59	107	1616	3761	3784	7545
शहडोल	सोहागपुर	104	217	4873	11181	10850	22031
उमरिया	पाली	49	49	1559	5433	5313	10746

	गोहपारू	69	116	2421	4175	3884	8058
	पुष्पराजगढ़	65	117	914	2538	2493	5031
विलासपुर	गौरेला	15	49	709	1739	1734	3473
	कोटा	12	16	374	976	931	1907
	लोरमी	33	43	962	2288	2116	4404

3.3 बैगा जनजाति की उत्पत्ति संबंधी मिथक

मध्य प्रदेश की जनजातियों में बैगा समूह अपनी आदिम पहचान रखता है। बैगा अपने आपको जंगल का राजा कहते हैं। बैगा उत्पत्ति के बारे में कोई लिखित प्रमाण नहीं है। लेकिन बैगाओं की उत्पत्ति सम्बन्धी कई मिथक प्रचलित हैं।

सर आर.वी. रसेल और हीरालाल के अनुसार "प्रारम्भ में भगवान ने नांगा बैगा और नांगी बैगिन को बनाया। नांगा बैगा और नांगी बैगिन जंगल में रहने लगे। थोड़े दिन बाद उनकी दों संन्ताने हुई । पहली सन्तान बैगा व दूसरी सन्तान गोंड कहलायी। दोंनों सन्तानों ने अपनी दोनों बहनों से विवाह कर लिया। आगे चलकर मनुष्य जाति की उत्पत्ति इन्हीं दो युगलों से हुई। पहले युगल से बैगा हुए और दूसरे युगल से गोंड उत्पन्न हुए।

ग्राम माडागौर समनापुर के गंधूलाल बैगा ने बैगा उत्पत्ति की एक कथा सन् 1980 में सर्वेक्षण अधिकारी श्री वसंत निरगुणे को इस प्रकार बताई - "शुरू मां जलय जल रहा, पुरान पान मा भगवान बैठे रहीसा। मन मा धोखे, दिल में चिरे अपने जलय जल रहे, धरती झय मिले रहीस। भगवान ब्रम्हा अपन छाती के मैल का निकारीस, ओखर कागा बनाइस। ऐखेर बाद वा कागा से बोलीस कि - जा रे कागा धरती के पता बतावा। कागा उड़ गईस । उड़त-उड़त ककरामल कुंवर डाढ़ा दिखाई दईस । वां डाढ़ा पै कागा बैठ गईस । कागा बोलीस - ककरामतल कुंवर तै झूठ झय बोलवे और मोला धरती क माटी का पता बताता, मोला धरती के माटी दे। ककरामल कुंवर कागा का दबाईस और पाताल ला चले दईस । धरती के माटी किचकमल राजा के पास रहीस । राजा माटी ला कागा का दईस । ककरामल कुंवर पातार से

ऊपर आ गईस । कागा धरती के माटी ला भगवान का दईस । भगवान एक बर्तन मंगाईस वा में सर्प के गेरी बनाइस और ओइच के मथानी बनाइस। ओला माटी का बरतन में डारीस। डार के माथन लागै। पूरा माथन के बाद व माटी ला पूरे पानी मां बिखेर दईस । तब धरती बन गईस। ऐखेर बाद भगवान वा धरती में चारों और घूम के देखीस। धरती इत्थै-उत्थै डोलत रहीस। भगवान ने तत्काल अगरिया बनाइस। अगरिया ने लोहे के खीला बनाइस। ओखेर बाद भगवान ने नांगा बैगा ला बनाइस। नांगा बैगा ने धरती के चारों ओर खीला डोकीस। तब से धरती एक जगे हो गईस ।"

जब इस पृथ्वी का निर्माण नहीं हुआ था । उस समय चारों और जल ही जल था। उस जल में कमल के पत्ते पर ब्रम्हा जी बैठे थे। तब ब्रम्हा जी ने पृथ्वी निर्माण के बारे में अपने मन में सोचा-विचारा और अपनी छाती से मैल निकालकर उस मैल से एक कौए का निर्माण किया और कौए को आदेश दिया कि जाकर पृथ्वी का पता लगाकर आये। कौवा समुद्र के ऊपर उड़ने लगा तब से समुद्र में ककरामल कुँवर (केकड़ा) की पीठ दिखाई दी। तब कौए ने ककरामल कुवंर को ब्रम्हा जी का संदेश सुनाया। तब ककरामल कुवरं कौए के साथ पाताल लोक पहुँचा जहां उसे किचकमल राजा केंचुआ मिला। किचलमल राजा से कौए ने अपने आने का प्रयोजन बतलाया और उससे पृथ्वी की मिटटी मांगी। किचलमल राजा ने पृथ्वी की मिटटी देने में आनाकानी की तो ककरामल कुंवर ने किचकमल राजा की गर्दन अपने पंजो से दबाना शुरू किया किचकमल राजा की गर्दन में ककरामल कुंवर के पंजे के निशान आज भी देखे जा सकते हैं। ककरामल कुंवर ने पृथ्वी की मिटटी एकत्र की और कौए को दे दिया तथा पाताल लोक से समुद्र में आग गए । पृथ्वी की मिटटी लेकर कौआ ब्रम्हा जी के पास आया तब ब्रम्हा जी ने उस मिटटी से एक कलश बनाया तथा नागराज की गेरी और उसी की मथानी बनाई। उस कलश में पृथ्वी की मिट्टी डालकर मथानी और गेरी से खूब मिलाया। जब सब मिटटी मिल गई तो उसे जल में बिखेर दिया। जहाँ-जहाँ मिटटी बिखेरी वहाँ पृथ्वी बन गई बाकी जगह समुद्र बन गया। जब पृथ्वी निर्माण हो गया तब ब्रम्हा जी ने अगरिया बनाया। उस अगरिया ने लोहे के चार खीले बनाये। उसके पश्चात ब्रम्हा जी ने नांगा बैगा बनाया। तब नांगा बैगा ने

पृथ्वी के चारों कोनों में खीला ठोंक दिया, उसी समय से पृथ्वी स्थिर हो गई और बैगा पृथ्वी को संवारने वाले बन गए। बैगा पृथ्वी को मां के समान मानते हैं। इसी कारण वे पृथ्वी पर हल नहीं चलाते हैं।

सन् 1956 में श्री शेख गुलाब ने ग्राम चांडा के बिलमा नामक बैगा वृद्ध से बैगा उत्पत्ति की कथा प्राप्त की थी, जो ऊपर की कथा से कुछ मिलती-जुलती है। "बहुत समय पहले चारों ओर जल ही जल था। जल में केवल एक कमल का फूल और कुछ पत्ते थे। पत्तों पर सब देवगण बैठते थे । एक बार हवा को झोंका आया और पत्तों पर पानी ही पानी भर गया। देवता भींग गये और पानी पर क्रोधित हो गए। लेकिन क्या करते ? विचार कर उन्होने पानी पर धरती बनाने की सोची । धरती का कहीं पता ठिकाना नहीं था। जलराशि के छोर में जम्बू द्वीप था। उस द्वीप में नांगा बैगा रहता था। सब देवतागण नांगा बैगा के पास गए। नांगा बैगा ने धरती खोजने का वचन दिया। देवता अपने-अपने स्थान लौट गये ।

नागा बैगा धरती के बारे में नहीं जानता था। उसने कौवा कुंवर को स्मरण किया। कौआ कुवंर एक क्षण में उपस्थित था। नागा बैगा ने कुवंर को धरती ढूँढ लाने को कहा। कौआ कुवंर ने अपना विशाल रूप बनाया। उड़ते समय वह बादल जैसा आकाश में छा गया। सूरज की किरणें उस पर अटक गई और सारे जल में उसकी छाया बन गई। कौआ लगातार कई वर्षो तक उड़ता रहा। उसे विश्राम के लिए एक ऊँची मीनार सी दिखी। वह उस पर बैठ गया। वह मीनार एक केकड़े की डाढ़ थी। केकड़ा उस समय सूर्य की आराधना कर रहा था। कौआ के बोझ से केकड़े का जबड़ा टूट गया। क्रोधित केकड़े ने कौवे की गरदन दूसरे जबड़े से दबा ली। कौवे ने अपनी व्यथा कह सुनाई। केकड़े ने धरती को ढूंढने में कौवे की मदद की। कौआ उस पर सवार होकर आगे बढ़ने लगा। चलते-चलते वे दोनों हाडन राजा के यहाँ पहुँचे। वहाँ एक तालाब था। तालाब के आस-पास हड्डियों का पहाड़ था। उस तालाब में एक नाग कन्या स्नान करने आई। दोनों ने उसे पृथ्वी समझा। वह सौन्दर्यवती थी। केकड़ा उसे फुसलाने लगा। केकड़ा बड़ा होशियार था। उसने हाडन राजा के कुप्रबन्धों का वर्णन कर उसे अपने शब्द जाल में फँसा लिया। केकड़ा और कौआ उस कन्या को लेकर चले। रास्ते में

केंचुआ नामक दानव मिला। वह अपनी माया से कन्या को निगल गया। केकडा और कौआ कन्या को न देखकर बड़े चिन्तित हुए। इतने में गिलहरी मौसी ने दानव की तरफ इशारा कर दिया। केकड़े ने केचुआ के पेट में अपना जबड़ा चुभा दिया। केंचुआ ने वीट कर कन्या को छोड़ दिया। कन्या पाकर दोनों गन्तव्य की ओर फिर चल पड़े। केकड़ा और कौआ देवताओं के पास पहुँचे। सुन्दर कन्या को देखकर सभी देवता मुग्ध हो गये। केकड़े और कौवे का भारी स्वागत हुआ।

जलराशि के ऊपर देवताओं ने उस कन्या का स्वयंवर रचाया। कन्या ने किसी देवता का वरण नहीं किया। सब देवता आश्चर्य में पड़ गये कि आखिर कन्या किसे चाहती है। उसी समय देवताओं को नागा बैगा की सुधि आई। जम्बू द्वीप से नागा बैगा को आदर सहित लाया गया। नागा बैगा तो साधु थे, शरीर में भस्म लगी थी। अबकी बार कन्या ने नांगा बैगा के गले में वरमाला डाल दी लेकिन नागा बैगा आग बबूला हो गया। उसने कहा मै तो इसे पुत्री मान चुका हूँ। इसने ऐसा पाप क्यों किया। यह कहते हुए उसने फरसे से कन्या के दो टुकड़े कर दिए। कन्या का खून सारे जल में फैल गया। फैले हुए खून को नागा बैगा तथा देवताओं ने थपथपाया। वह जग गया। वही पृथ्वी की सतह बन गई। ऊँचे स्थान पहाड़ और नीचे स्थान समुद्र तथा झील बन गई। नांगा बैगा ने पृथ्वी को बनाया, इसलिए वह भूमिया कहलाया। पृथ्वी उसकी बेटी है। अतः वह उसकी छाती पर हल नहीं चलाता। अब पृथ्वी के विवाह की चिन्ता सभी देवताओं को सताने लगी। पृथ्वी के लिए बादल को वर चुना गया। दूल्हा सज-धज कर आया। घूघू से सिर हिला दिया। बादल हवा में उड़ गया। पृथ्वी ने घूघू को श्राप दिया। नांगा बैगा ने पृथ्वी को धीरज बंधाया। उसने बादलों को हराने के लिए पहाड़ों का आश्रय लिया। तब से पहाड़ बादलों की राह रोकते हैं और वर्षा होती है। इससे पृथ्वी फलती-फूलती है। बैगा लोग जंगलों को काटकर उन्हें जलाकर अन्न उपजाते हैं। गोंड बीज बोने के प्रारम्भ में बैगाओं से पृथ्वी व खेतों की पूजा करवाते हैं। गोंड बैगा को भूमि सम्बन्धी पुरोहित मानते हैं, जिन्हें ये देवार और स्त्रियों को देवारिन कहते है। देवार और देवारिन बैगाओं के लिए सम्मान सूचक सम्बोधन है।

अमरकंटक क्षेत्र के ग्राम कबीर चबूतरा के बैगा टोला के पैसंठ वर्षीय लामू बैगा ने बैगा उत्पत्ति की एक कथा एक प्रकार बताई। ''पहले धरती नहीं रही। चारों तरफ जल ही जल था। एक दिन ब्रम्हा ने जल में धरती बनाई। उसी समय धरती फोड़ के दो साधू निकले। पहला ब्राम्हण और दूसरा साधू नांगा बैगा था। ब्रम्हा ने ब्राम्हण को लिखने-पढ़ने के लिए कागज थमा दिया और नांगा बैगा को टंगिया दे दिया। ब्रम्हा ने नांगा बैगा को कोदो-कुटकी देकर खेती करने का आदेश दिया। तब से बैगा जंगल काटकर खेती कर रहे हैं।''

एक अन्य बैगा धारणा के अनुसार नांगा बैगा तुम्बे में से पैदा हुए। तुम्बे से दो आदमी निकले। पहला नांगा बैगा हुआ व दूसरा गोंड। नांगा बैगा टंगिया लेकर जंगल काटने चला गया। गोंड ने नागर संभाल लिया।

उपर्युक्त अवधारणाओं से यह तो स्पष्ट होता है कि बैगा लोग अपना सम्बन्ध धरती के प्रारम्भ से जोड़ते आये हैं। मिथकों में नांगा बैगा को पहला मानव चित्रित किया गया है। बाद में नांगा बैगा की सन्तान से मानव जाति का विकास हुआ।

बैगाओं की उत्पत्ति सम्बन्धी कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। सर आर. वी. रसेल और हीरालाल ने बैगाओं को भूमिया की शाखा माना है ।

" Baigas are realy a branch of the primitive Bhumiya Tribe of Chota Nagpur, and They have taken or been given the name of Baiga, the disignation of a village Priest one migration in to the central provinces. There is reason to believe that the Baigas were once dominant in the Chhattisgarh plain and the hills surrounding it which adjoin Chota Nagpur, the home of Bhumiyas." (Baigas Pages 78-79)"

बैगा प्रकृति पुत्र हैं। प्रकृति के सतत सानिध्य में रहने से इनकी त्वचा का रंग प्रायः गहरा काला होता है। फिर भी कहीं-कहीं हल्का ताम्र वर्ण भी इनमें पाया जाता है। बैगाओं की नाक चौड़ी होती है व होंठ कुछ मोटे होते हैं। आंखे औसतन कम गोल और काली होती हैं। पुरूष और स्त्री के बाल लम्बे होते हैं। पुरूष लम्बे बाल जन्म से रखवाते हैं। गरेदन के

पीछे एक ओर कौवे की पूछनुमा जूड़ा बांधते हैं। बैगा कौवे का विशेष सम्मान करते हैं क्योंकि कौआ ने ब्रम्हा के आदेश से पृथ्वी की खोज की थी।

3.4 गोत्र, जाति व टोटम सम्बन्धी विवरण

बैगा एक आदिम जनजाति है। यद्यपि बैगा भूमिया की एक शाखा है तदापि बैगाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व और निजी अस्मिता है। बैगाओं के कई गोत्र हैं। गणना में ये एक सौ आठ तक हैं। ये लोग मरावी, धुर्वे, मरकाम, परतेती, तेकाम को अपनी जाति बताते हैं और जिस नाम से वंश या परिवार जाना जाता है उसे वे गोत्र कहते हैं।

तालिका संख्या 3.4.1

बैगा जनजाति में गोत्र, जाति व टोटम सम्बन्धी विवरण

क्र.	गोत्र	जाति	टोटम
1.	दवड़िया	मरावी	एक दौरा भात खाने वाला शिकारी
2.	रठूड़िया	धुर्वा	नाले किनारे रहने वाला या हाड़ा गोड़ा सकेलने वाला
3.	घुठिया	–	–
4.	गुठलिया	–	–
5	नंदिया	धुर्वा	मछली मारने नदी किनारे जाने वाला
6.	सरड़िया	–	सरई वृक्ष
7.	कुसरिया	धुर्वा	खुसरू (उल्लू पक्षी)
8.	पड़िया	–	पड़िया (भैंस का नवजात शिशु)
9.	उदरिया	–	उदार वृद्ध
10.	कड़मिया	–	कड़म-कड़म चलने वाला
11.	ततड़िया	धुर्वा	ततरा आदमी, बौरा (गूंगा)

12.	बरंगिया	धुर्वा	बरंगा झाड़
13.	घटिया	–	घाट चढ़ने वाला
14.	बरिया	–	बारह स्थानों में बैठने वाला
15.	बगदरिया	–	बाघ मारने से मना करने वाला
16.	पलथरिया	–	दूसरी जाति में रहने वाला
17.	मंगड़िया	–	मांगने वाला
18.	जिलांगया	–	जिलंदा
19.	पंचगइया	–	पंचगांव
20.	मुंडकिया	धुर्वा	मुंड पकड़ने वाला
21.	घघरिया	धुर्वा	घंघर घाट में रहने वाला
22.	करकुटिया	मरावी	–
23.	चड़चड़िया	–	चाड़ा में रहने वाला
24.	तलशिया	–	पानी
25.	कुड़ोप	निया	–
26.	तिलसिया	–	–
27.	अमखैया	–	–
28.	लकिया	–	–
29.	ढोंढिया	–	–
30.	बड़दइया	–	–
31.	कुकरिया	–	कुकर पालने वाला
32.	छिन्दिया	–	–
33.	बुम्दरिया	–	–
34.	लाखिया	–	–

35.	बड़रिया	-	-
36.	भुरकुंडिया	-	-
37.	लमोठिया	-	-
38.	खोहड़िया	-	खेत में रहने वाला
39.	मछिया	-	-
40.	मौघिया	-	-

अध्याय : चतुर्थ

आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक एवं आर्थिक संलग्नता

4.आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक एवं आर्थिक संलग्नता

पूर्व अध्याय में आदिवासी बैगाओं के सामाजिक पार्श्व की विवेचना की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में उनकी व्यावसायिक एवं आर्थिक संलग्नता का विश्लेषण किया गया है।

मानव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सदैव से ही प्रयत्नशील रहा है। उसकी तीन प्रमुख आवश्यकताएं हैं : भोजन वस्त्र तथा आवास। लेकिन आंरभिक अवस्थाओं में जबकि मानव ने संस्कृति का आचरण भी नहीं ओढ़ा था अथवा जब मानव उपभोग की अर्थव्यवस्था में था, उसे अपनी उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति में पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। मानव आरम्भ से ही अन्य जीवधारियों से भिन्न रहा है। वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एक व्यवस्था के अन्दर करता आया है। वह अपनी आवश्यकताओं के साथ-साथ अपने परिवार तथा कबीले के प्रति भी उत्तरदायी रहा है। एक निश्चित अवस्था के तहत वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा है।

अर्थव्यवस्था को स्पष्ट करते हुए लूसी मेयर ने कहा है कि ये मानव द्वारा अपनाए गए वे क्रिया-कलाप हैं जिनके माध्यम से वे अपने भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार के साधनों की व्यवस्था करते हैं तथा उनके विभिन्न उपयोगों में से कुछ को अपनाते हैं।

रेमण्ड फर्थ के अनुसार "यह मानव क्रिया-कलापों का वह विस्तृत क्षेत्र है जिसका संबंध साधनों के परिसीमित उपभोग और संगठन से हैं।"[1]

बोहानन के शब्दों में, मानव एवं सामाजिक समूहों की भौतिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए स्रोतों, प्रविधि एवं कार्य का संगठित करने का जो तरीका है, उसे ही अर्थव्यवस्था कहते हैं।"[2]

---

[1] फर्थ, आर. डब्लू, प्रिमिटिव पालीनेशन इकोनोमिक्स, 1939

[2] बोहानन, पी. सोशल एन्थ्रोयोलोजी, पृ.सं. 211-212

मजूमदार और मदन के अनुसार "जीवन की दिन-प्रतिदिन की अधिकाधिक आवश्यकताओं को कम से कम परिश्रम से पूरा करने हेतु मानव संबंधो तथा प्रयत्नों को नियमित एवं संगठित करना ही अर्थ-व्यवस्था है।"[3]

इस प्रकार मानव अपने अस्तित्व को बनाए रखने हेतु विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा इसके लिए उसे प्रयत्न भी न्यूनाधिक मात्रा में करने पड़ते हैं। वह अनेक साधनों का उपयोग करता है। भौगोलिक स्थिति, पर्यावरण एवं संस्कृति ये मिलकर उसके (मानव) साधनों का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार प्रकृति एवं संस्कृति मिलकर मानव के भौतिक साधनों का निश्चय करते हैं।

आदिवासी लोग आज के वैज्ञानिक युग में भी अधिकांशतया प्रकृति पर ही आश्रित हैं। हजारों वर्षो से उनकी सम्पत्ति के मुख्य स्रोत जंगल, पहाड़, घाटियां एवं नदियाँ ही रही हैं। जंगलों तथा पहाड़ों से खाद्य-संग्रह करना, नदियों तथा तालाबों से मछली पकड़ना तथा कहीं-कहीं घाटियों व अन्यत्र पहाड़ी ढ़ालों पर कृषि करना ही उनकी आजीविका के प्रमुख साधन रहे हैं। अतः आधुनिक तौर-तरीके बदलने तथा सभ्य कहे जाने वाले लोगों की अपेक्षा जनजातियों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन भौगोलिक पर्यावरण के प्रत्यक्ष प्रभाव से ओतप्रोत रहा है। जनजातीय जीवन को प्रकृति से लगातार संघर्ष करना पड़ता है और उदर पूर्ति के लिए उन्हें कठोर परिश्रम भी करना पड़ता है।

जनजातियों के औजार उनके द्वारा ही बनाए हुए तथा उन धातुओं के बने हुए होते हैं जोकि उनको आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं। कुछ लोग जनजातीय जीवन का वर्णन करते समय उनमें व्याप्त संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन से ही इतने अधिक प्रभावित हो जाते हैं कि उनकी वास्तविक एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्याएँ गौण बनकर रह जाती हैं। वास्तव में जनजातीय जीवन में संतुलन का अभाव स्पष्ट रूप से देखने में आता है। भविष्य के प्रति आश्वस्त होना तथा संघर्ष मय जीवन व्यतीत करना ही इनका एक लक्ष्य बन जाता है। उनके औजारों, निवास स्थानों व अन्य भौतिक सामग्री से यह स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि

---

[3] मजूमदार एवं मदान, एन इन्ट्रोडक्सन ऑफ सोशल एन्थ्रोयोलोजी, बाम्बे

उनकी वस्तुएँ एवं आवश्यकताएँ उनकी स्वयं की उपलब्धि के साधनों तक ही सीमित है। उन्होंने आज तक स्वयं ही पर्यावरण की शक्ति तथा भौतिक आवश्यकताओं के बीच एक सन्तुलन को कारगर बनाए रखने का हर संभव प्रयास किया। परन्तु स्वाभाविक है कि बढ़ती हुई आबादी, प्रकृति का ह्रास, भूमि की उपज में कमी, जंगलों का अभाव अथवा उनमें प्रशासनिक प्रतिबंध तथा सबसे महत्वपूर्ण बात है - बाहरी जगत का जनजातीय जीवन पर प्रभाव, जिससे व सुदूर एवं एकान्त स्थानों में रहते हुए भी अपने आपको नहीं बचा पाए।

इन सब बातों ने जनजातीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन ला दिए हैं। परन्तु ये प्रभाव अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग मात्रा में हुए हैं। कुछ स्थान आज भी ऐसे हैं जहाँ जनजातियाँ आदिम अर्थव्यवस्था के सन्निकट हैं। अन्यत्र औद्योगिक जगत में प्रवेश पाए हुए, उच्च शिक्षा प्राप्त व अभिजातों की श्रेणी में रखे जाने वाले विशिष्ट व्यक्ति भी जनजाति के लोगों में पाये जाते हैं जो अपनी आर्थिक परिस्थिति में सुधार लाने में सफलता प्राप्त कर सके हैं।

आदिम संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसमें सामाजिक समानता को काफी महत्व दिया गया है। मजूमदार के अनुसार जनजातीय अर्थव्यवस्था अनेक कारकों पर आधारित है। एक जनजाति को अपने आपको उस स्थान के अनुकूल बना लेना चाहिए जिसमें वे रहते हैं। उसके समूह के सदस्यों में परस्पर निर्भरता के संबंधों का विकास होना आवश्यक है। स्वस्थ्य शरीर का होना आवश्यक है ताकि पर्यावरण की शक्तियों का सामना वे आसानी से कर सकें तथा समूह का उचित संगठन होना अनिवार्य है।

वर्तमान समय में अन्य सभ्य जातियों की भांति ही जनजातियों की आर्थिक व्यवस्था भी गतिहीन नहीं रह गयी है। हालांकि जनजातियाँ भी विकास की ओर उन्मुख हुई हैं परन्तु प्रगति एक रेखिक नहीं हुई है। जनजातियों की वस्तु विनिमय व्यवस्था (बार्टर) उसी प्रकार अपना उद्देश्य पूर्ण करती है जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उच्च विकसित विनिमय प्रणाली अपने उद्देश्य की पूर्ति करती है। जनजातियों के उनके साधनों, स्रोतो व जीवनयापन के प्रकारों में तुरन्त परिवर्तन विघटन का कारण बन सकता है। उन पर किसी चीज के जबरन थोपे जाने से उनकी अर्थव्यवस्था सुधरने के बजाय अधिक बिगड़ सकती है।

4.1 जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

जनजातीय अर्थव्यव्यवस्था अपने सरलतम स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन कार्य में संलग्न दिखाई देता है। उपभोक्ता तथा उत्पादक के मध्य कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में संगठन, नियोजन तथा नियंत्रण आदि बातों का आमतौर पर अभाव रहता है। परिवार आर्थिक उत्पादन की मूल इकाई के रूप में है। परिवार से बाहर अर्थव्यवस्था संगठित रूप से नहीं पाई जाती। संक्षिप्त में आदिम अर्थव्यवस्था की निम्न व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं :-

1. धर्म एवं जादू सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओं के साथ किसी न किसी रूप में संबंधित रहता है। उदाहरण के रूप में कृषि संबंधी कार्यो के लिए देवी-देवताओं की उपासना/ पूजा के उदाहरण अनेक जनजातियों के लोगों में पाए जाते हैं। इन लोगों की मान्यता है कि आर्थिक क्रियाओं में धर्म अथवा जादू के द्वारा आर्थिक सफलता अर्जित होती है।
2. जनजातीय समाजों की अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकी के ज्ञान का अभाव है अर्थात जैसे कृषि के क्षेत्र में अथवा अन्य क्षेत्रों में ये बहुत कम एवं सरलतम औजारों आदि का ही प्रयोग करते हैं। मात्र वाह्मय जगत के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरूप ही ये अब धीरे-धी!रे उत्पादन की अर्थव्यवस्था में प्रवेश पा सकने की स्थिति में हो सकते हैं। इससे पूर्व इनकी अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जा सकता है, अर्थात अतिरिक्त उत्पादन का जनजातीय समाजों में लगभग अभाव सा रहा है।
3. इन लोगों में संचय की प्रवृत्ति का सदैव अभाव रहा है। विनिमय के लाभों के बारे में भी इनका ज्ञान सीमित रहा है।
4. जनजातीय समाजों में विनिमय को प्रोत्साहित करने के लिए किसी भी प्रकार की मुद्रा आदि के चलन का सदैव अभाव रहा है। माध्यम के अभाव में अर्थव्यवस्था का व्यापक संगठन अभी भी अस्तित्व में नहीं आ सका।

5. जनजातीय समाजों में लाभ की प्रवृत्ति का भी नितान्त रूप से अभाव रहा है। अर्थव्यवस्था एक सामुदायिक 'ावना से जुड़ी हुई थी। अतः यह भावना व्यक्तिगत लाभ को नकारती थी। यद्यपि मुद्रा का प्रसार व बाहरी संपर्क के परिणामस्वरूप लाभ की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है।

6. आदिम समाज में नियमित बाजार, प्रतियोगिता तथा एकाधिकार का अपेक्षाकृत रूप से अभाव रहा है। परिवार के सदस्य अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं का संचय एवं पूर्ति स्वयं करने का प्रयत्न करते थे। विशेषीकरण का अभाव था। एक व्यक्ति स्वयं अनेक कार्यो को करता था।

7. इसके अतिरिक्त उनके समाजों की आर्थिक क्रियाओं में सामूहिकता एवं सहकारिता पाई जाती है। सामुदायिक कर्तव्यों को सर्वोपरि माना जाता था। व्यक्तिगत स्वामित्व कम तथा सामूहिक स्वामित्व अधिक था। परिवर्तन का अभाव था एवं उसे अस्वीकार जाता था। उपहार विनिमय एक प्रकार के अधार के रूप में था।

8. जनजातीय अर्थव्यवस्था को जीवन निर्वाह स्तर की अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जा सकती है।

9. यातायात के साधनों के अभाव के कारण अनाज व अन्य वस्तुओं का संग्रह कर उन्हें एक स्थान से अन्यत्र ले जाने की कठिनाई होती है। परिणामस्वरूप आर्थिक क्रियाएँ एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित होकर रह जाती हैं।

10. आदिम लोगों में नित्यप्रति अविष्कार, नवाचार एवं परिवर्तन कम ही होते हैं। उनमें स्थिरता अधिक पाई जाती है। स्थिरता एवं समरूपता के कारण ही आर्थिक उत्पादन की प्रविधि में साधारणतया कोई परिवर्तन नहीं हो पाते।

11. आदिम समाज में विशेषज्ञ एवं विशेषीकरण का अभाव रहता है। श्रम विभाजन का आधार विशेषीकरण नहीं होता तथा न ही कुशलता या अकुशलता।

12. जहाँ तक सम्पत्ति का प्रश्न है, जनजातियों में व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों प्रकार की सम्पत्ति पाई जाती है।

13. आधुनिक अर्थव्यवस्था की तरह यहाँ राजनीतिक शक्ति का आर्थिक नियंत्रण से कोई संबंध नहीं है।

इस प्रकार सम्पर्क से पूर्व की जनजातीय अर्थव्यवस्था व्यक्तिगत लाभों से परे थी, उसमें सामूहिकता का गुण था। व्यक्ति अपने हितों के साथ-साथ समूह के हितों को भी सर्वोपरि मानता था। परन्तु वाह्यजगत के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरूप जनजाति की अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ लगभग समाप्त होती जा रही हैं तथा ये लोग उन सभी विशेषताओं को अपना रहे हैं जो तथाकथित सभ्य समाजों में व्याप्त है।

4.2 जनजातीय अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण

विभिन्न मानवशास्त्रियों ने आदिम अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है । इनमें से कुछ निम्नवत हैं -

ग्रोस ने विकासवादी स्तर के आधार पर अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। ग्रोस ने अर्थव्यवस्था को पांच भागों में इस प्रकार विभक्त किया है[4] -

1. संकलन की अर्थव्यवस्था
2. सांस्कृतिक खानाबदोशी अर्थव्यवस्था
3. स्थिर ग्रामीण अर्थव्यवस्था
4. नगरीय अर्थव्यवस्था
5. महानगरीय अर्थव्यवस्था

जैकब्स और स्टर्न आदिम अर्थव्यवस्था को दो भांगों में विभक्त करते हैं तथा पुनः प्रत्येक मुख्य भाग को दो भागों में विभाजित करते हैं[5] :-

1. शिकार करने, मछली मारने एवं भोजन एकत्रित करने वाली अर्थव्यवस्था

(अ) खाद्य सामग्री संकलन करने वाली सरल अर्थव्यवस्थाएँ

(ब) खाद्य सामग्री संकलन करने वाली विकसित अर्थव्यवस्थाएँ

---

[4] Gross, NBS, Anthropology and Economics (1972), P. 19

[5] Jacobs and Stern, General Anthropoloty P. 132

2. कृषि तथा पशुपालन संबधी अर्थव्यवस्थाएँ

(अ) कृषि संबंधी सरल अर्थव्यवस्थाएँ

(ब) कृषि तथा पशुपालन संबंधी विकसित अर्थव्यवस्थाएँ

फोर्ड एवं हर्षकोविस ने आर्थिक विकास के स्तर को पाँच भागों में बाँटा है। इनकी मान्यता है कि एक ही समाज में एक साथ एक से अधिक आर्थिक अवस्थाएँ रही हैं जो इस प्रकार हैं :-

1. संकलन
2. शिकार
3. मछली पकड़ना
4. पशुपालन

डॉ0 एस.सी.दुबे ने अर्थव्यवस्था को निम्न भागों में बांटा है :-

1. संकलन एवं आखेट स्तर
2. पशुपालन स्तर
3. कृषि स्तर

वास्तविक यह है कि कोई भी समाज पूर्णतः किसी एक ही प्रकार की अर्थव्यवस्था पर निर्भर नहीं है और न ही विकास के जो विभिन्न स्तर बताए गए हैं, उन स्तरों से होकर प्रत्येक समाज गुजरा ही है। उदाहरण के लिए न्यूजीलैण्ड के माओरी वर्तमान में कृषक हैं परन्तु वे उद्‌विकासीय स्तर में कभी भी पशुपालक नहीं रहे। फोर्ड भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि कोई भी समाज न तो किसी एक निश्चित आर्थिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और न ही किसी समय में कोई विशेष अवस्था ही एकमात्र रूप में प्रचलित रही है वरन् विभिन्न अर्थव्यवस्थाएँ संयुक्त रूप से विकास के दौरान प्रचलित रही है।

देश के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाली जनजातियों को अर्थव्यवस्था की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

(1) खाद्य संग्रहीता

खाद्य सामग्री का संचय बगैर अधिक कठोर परिश्रम से करना ही इस व्यवस्था की विशिष्टता है जैसे - जंगली पदार्थ, जड़ें, फल, पत्ते आदि एकत्र करना, मछली पकड़ना व शिकार करना। लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर (केवल एक निश्चित भू-भाग में) भोजन सामग्री की तलाश में जाते थे। छोटा नागपुर में रांची जिले की बिरहोर, उड़ीसा के ज्वांग, मध्य प्रदेश के कोरवा, ट्रावनकोर, कोचीन के कादर तथा महाराष्ट्र की कतकारी जनजाति के लोग इस प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं। भारत के दक्षिणी तट पर रहने वाले मिनिकोय जनजाति (मालावार के पास) के लोगों की सबसे बड़ी फसल नारियल है। चूंकि इससे जीवन निर्वाह नहीं हो सकता, अतः सभी लोग मछलियाँ भी पकड़ते हैं।

(2) चारागाही जनजातियाँ

चरवाहे लोग बहुधा पालतू जानवरों से ही अपना जीवन यापन करते हैं तथा अच्छे चारागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते हैं। हिमालय की घाटियों में रहने वाली भोटिया जनजाति तथा दक्षिण में नीलगिरि की टोडा जनजाति के लोग इसके उत्तम उदाहरण है। कश्मीर में पांखी प्रदेश में रहने वाले पंखवालों का भी प्रमुख व्यवसाय पशुपालन है।

(3) स्थानान्तरण कृषि

इस प्रकार की कृषि व्यवस्था का आरम्भ नियोलिथिक काल में आज से करीब दस हजार वर्ष पूर्व हुआ था। आज विश्व में ऊष्ण तथा उपऊष्ण प्रदेश में स्थानान्तरण कृषि प्रणाली का प्रचलन अनेक जनजातियों में पाया जाता है। भारतवर्ष में मध्य प्रदेश में स्थानान्तरण कृषि अथवा झूम खेती का प्रचलन जिन जनजातियों में पाया जाता है उनमें प्रमुख हैं - गोंड़, भील, कोरकू, बैगा। लेकिन अब उन्होंने निकटवर्ती हिन्दुओं के सम्पर्क में आकर उनकी अनेक

बातों को अपना लिया है तथा उनके आर्थिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया है। इस प्रकार की कृषि प्रणाली को वैरियर इल्विन ने एम्स कल्टिवेशन (अर्थात कुल्हाड़ी द्वारा की जाने वाली कृषि) के नाम की संज्ञा दी है। बैगा में इस प्रकार की खेती को 'बेवर' व माड़िया में यह कृषि 'पेंदा' के नाम से प्रसिद्ध है। असम की गारो जनजाति में इस प्रणाली को ''झूम कृषि'' कहा जाता है। झूम का अर्थ स्थान परिवर्तन से है। भूमियाँ जनजाति के लोग इसे दो प्रतिरूपों में विभक्त करते हैं - दाही और कोमान। विशनहार्न माड़िया लोगों में इसका प्रचलन ''इर्का'' नाम से हैं। गोंड़ इसे ''मालुवा'' नाम से सम्बोधित करते हैं। जसपुर की पहाड़ी कोरवा जनजाति में इसे 'ब्योरा' नाम की संज्ञा दी जाती है। दक्षिण उड़ीसा में इसका प्रचलन 'गूदियां' अथवा ''पोदू'' अथवा डोंगर चास के नाम से है।

(4) स्थायी कृषि व्यवस्था

इस व्यवस्था में कृषि कार्य उसी प्रकार से किया जाता है जिस प्रकार कि अन्य सभ्य जातियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। कृषि कार्य में हल बैलों की सहायता ली जाती है। संख्या के अनुसार जनजातियों में यह वर्ग सबसे बड़ा है। असम में अंगामी नागाओं की आर्थिक स्थिति सेना नागाओं से अच्छी होने के कारण यही है कि उन्होंने झूम-प्रणाली को छोड़कर अब वर्तमान कृषि व्यवस्था को अपना लिया है। कभी-कभी एक ही गाँव में जनजातीय लोग तथा अन्य हिन्दू, मुसलमान व ईसाइयों की बस्तियां साथ-साथ पाई जाती हैं। खेत उनके सामाजिक व सांस्कृतिक पर्वो में स्थान पा चुकी है। हो, मुंडा और कोलों के हेर, बा, साधे, आदि पर्व इस बात के प्रमाण हैं। हेर का प्रयोजन उनकी भाषा में बोना है। गोंड, भूमिज तो अब अपने-आपको अन्य हिन्दू कृषकों से अलग वर्ग के रूप में मानने को भी तैयार नहीं है। यद्यपि अधिकांश मात्रा में जनजातियों के जोत अनार्थिक हैं, भूमि कम उपजाऊ है तथा आधुनिक तकनीकों का अभी ये बहुत कम उपयोग कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त शिल्पकला तथा घरेलू उद्योग एंव औद्योगिक श्रमिक के रूप में भी जनजाति के लोग व्यस्त हैं।

तालिका संख्या 4.2.1

बैगा जनजाति के आर्थिक जीवन के प्रमुख आधार

क्रं.	आधार	संख्या	प्रतिशत
1	शिकार+जंगल+खेती+पशुपालन	150	50.00
2	जंगल+खेती+पशुपालन	150	50.00
	योग -	300	100.00

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित बैगाजनों के आर्थिक जीवन में प्रमुख आधार कौन-कौन से हैं। आज भारत की कोई भी जनजाति अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी एक साधन पर निर्भर नहीं है। आज भी समाजशास्त्र व मानवशास्त्र की पुस्तकों में भारत की कुछ जनजातियों जैसे केरल की कादर, छत्तीसगढ़ की मड़िया, झारखंड़ की बिरहोर, मेघालय व असम की गारो, मध्य प्रदेश की खरिया, आन्ध्र प्रदेश के चेंचू और अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह की ओंज, जरवा आदि जनजातियों को पूर्णतया शिकार व वनों पर आश्रित माना गया है, जबकि आज स्थिति बिल्कुल विपरीत है। आज कोई भी जनजाति केवल शिकार और वनों पर आश्रित नहीं रह गई है। आज लगभग सभी जनजातियाँ खेती की ओर अग्रसर हैं और वनों व शिकार को जीवकोपार्जन की द्वितीयक श्रेणी मानने लगे हैं। बैगा जनजाति को भी शिकार और वनों पर निर्भर रहने वाली जनजाति माना जाता है और खेती करने की श्रेणी में इसे झूम खेती करने वाली जनजाति माना गया है। मध्य प्रदेश की बैगा जनजाति दो प्रकार के गांवों में रहती है - राजस्व ग्राम व वनग्राम। वन ग्राम वन विभाग द्वारा बसाये गए गाँव हैं और इन गाँवों पर वन विभाग का ही नियन्त्रण होता है।

वनग्राम में बसे हुए बैगा जनजाति के गाँव अधिकांशतया जंगलों के भीतरी भाग में हैं जबकि राजस्व ग्राम में बसे हुए बैगा जनजाति के गाँव अन्य कृषक जातियों (गोंड़), कस्बों से कुछ दूरी पर स्थित हैं। तालिका से पता स्पष्ट होता है कि जिन बैगा परिवारों के आर्थिक

जीवन के आधार शिकार, जंगल, खेती और पशुपालन हैं उनकी संख्या 150 (50 प्रतिशत) है अर्थात 50 प्रतिशत बैगा परिवार शिकार, जंगल, खेती व पशुपालन पर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्भर हैं। जो बैगा परिवार जंगल, खेती और पशुपालन पर अपने आर्थिक जीवन के लिए निर्भर हैं, उनकी संख्या भी 150 है। कहने का आशय यह है कि सर्वेक्षित 150 (50 प्रतिशत) बैगा परिवार वन ग्रामों के हैं जबकि 150 परिवार राजस्व ग्राम के हैं। वनग्राम के बैगा समय-समय पर चोरी छिपे शिकार के द्वारा भी अपनी भूख शांत करते रहते हैं। परन्तु ये लोग शिकार केवल उदरपूर्ति अर्थात खाने के लिए ही करते हैं आर्थिक लाभ के लिए ये लोग शिकार नहीं करते।

राजस्व ग्राम के बैगाजन शिकार से वंचित रह जाते हैं क्योंकि इनके घर ऐसी जगहों पर होते हैं जहाँ जंगल का अभाव रहता है। हालांकि राजस्व ग्राम के बैगा आस-पास के जंगलों से जलाने, मकान बनाने व बेचने के लिए लकड़ी काटकर लाते हैं।

सर्वेक्षित बैगा जनजाति के परिवार चाहे वे वनग्राम के हों या राजस्व ग्राम के सभी के पास खेती नहीं है। परन्तु ये लोग सजातीय लोगों से व अन्य जातियों से बटाई (अधिया) पद्धति के द्वारा खेती लेते हैं और उस पर खेती करते हैं। यही कारण है कि तालिका में खेती को प्रमुख आधार के रूप में दर्शाया गया है।

बैगा जनजाति के परिवार चाहे वे राजस्व ग्राम के हों या वनग्राम के, सभी के पास कुछ न कुछ पशु हैं। सुअर, अधिकांशतया बैगाजन पालते हैं। मुर्गी-मुर्गा भी लगभग सभी बैगाजनों के घरों में देखी जा सकती हैं। ये लोग भैंस की अपेक्षा गाय अधिक पालते हैं जिससे खेती करने के लिए बैल मिल सकें।

तालिका 4.2.2

शिकार संबंधी विवरण

क्र.	शिकार	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	150	50.0
2	नहीं	150	50.0
	योग	300	100.0

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित उत्तरदाताओं में से कितने लोग शिकार करते हैं। जल्दा और बौना जोकि वनग्राम हैं, के अधिकतर बैगाजन चोरी छिपे शिकार करते हैं और कुल उत्तरदाताओं में से इनकी संख्या आधी है अर्थात 150 बैगा परिवार शिकार करते हैं। जो लोग शिकार करते हैं वे उत्तरदाता जल्दा और बौना गाँव के है। जबकि जो लोग शिकार नहीं करते अर्थात 150 बैगाजन राजस्व ग्राम के हैं जहाँ वनों का अभाव है। जो बैगाजन शिकार करते हैं उनका उद्देश्य आर्थिक लाभ नहीं रहता वरन् वे केवल उदर पूर्ति के लिए और जानवरों से फसलों को बचाने के लिए ही शिकार करते हैं। जानवरों में विशेषकर जंगली सुअर इनकी फसल को ज्यादा नुकशान पहुँचाता है। बैगाजन सबसे ज्यादा इसी का शिकार करते हैं। इस सुअर का शिकार कई लोग मिलकर अर्थात समूह में करते हैं।

बैगाजन शिकार दो प्रकार से करते हैं । पहला है व्यक्तिगत शिकार अर्थात छोटे-मोटे जीव-जन्तुओं (जैसे- खरहा, चूहा, मछली आदि) और पक्षियों को मारने के लिए एक अकेला बैगा व्यक्ति ही काफी होता है। वे इनकों मारने में समूह या समुदाय के अन्य व्यक्तियों क सहायता नहीं लेता। दूसरा है, सामूहिक शिकार जिसको ये लोग फांदा कहते हैं। फांदा का अर्थ होता है जाल । इसका अर्थ हुआ, शिकार को अपने जाल में फंसाना। सामूहिक शिकार में बड़े जानवरों का ही शिकार किया जाता है जैसे जंगली सुअर, सांभर, भालू आदि इसके

अन्तर्गत आते हैं। शेर व चीता और तेंदुआ की संख्या बहुत ही कम है और जो रहते भी हैं वे जंगल के भीतरी भांगों में ही रहते हैं जिनका बैगाओं से ज्यादा कोई संपर्क नहीं रहता।

शिकार की दृष्टि से देखा जाए तो वर्तमान समय में बैगाजन व्यक्तिगत शिकार पर ही आश्रित हैं जिसको ये लोग चोरी छिपे आसानी से कर सकते हैं और ये शिकार आसानी से उपलब्ध भी रहते हैं। जबकि सामूहिक शिकार कुछ लोगों की सहायता से किया जाता है। जिसकी सूचना कभी-कभार वन विभाग वालों को भी लग जाती है और फिर इनको परेशानी से गुजरना पड़ता है। एक विशेष बात यह है कि ये लोग सामूहिक शिकार खासकर रात में ही करते हैं। इसका कारण यह है कि जंगली सुअर व सांभर रात में ही फसल को ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं और दूसरी बात रात में इनको वन रक्षकों का भय भी नहीं रहता। हालांकि विशेष परिस्थितियों में ये लोग दिन में भी कभी-कभार सामूहिक शिकार करते हैं । जैसे - यदि दिन में इनके खेत में जंगली सुअर आ जाए तो फिर ये लोग इसका सामूहिक शिकार करते हैं और ऐसी स्थिति वन रक्षक भी इनको परेशान नहीं करते।

वर्तमान समय में यदि देखा जाए तो बैगाजन सामूहिक शिकार दो उददेश्यों से करते हैं । पहला है "अपनी फसलों की रक्षा के लिए" और दूसरा है "स्वयं की रक्षा के लिए"। वनग्रामों के आसपास जंगली हिंसक जानवरों में सबसे ज्यादा संख्या भालुओं की है और इन्हीं से बैगाजनों को सबसे ज्यादा खतरा रहता है क्योंकि भालू तुरन्त आक्रमण कर देता है। जल्दा और बौना जो कि वनग्राम हैं, शोधकर्ता कई महीने यहॉ रूका लेकिन बैगाजनों को आर्थिक लाभ के लिए कभी शिकार करते नहीं देखा। एक बार सामूहिक शिकार में शोधकर्ता ने स्वयं भाग लिया परन्तु शिकार निकल चुका था और मेरे कहने पर लोग ज्यादा दूर नहीं जा सकें और हम लोग वापस आ गए। सामूहिक शिकार में कम से कम 5 या 6 लोग तो होते ही हैं और ज्यादा कितने लोग भी हो सकते हैं। यह उस टोले की संख्या पर निर्भर करता है। भालू को वैसे तो बैगाजन मारते नहीं हैं क्योंकि न तो बैगा लोग इसे खाते हैं और न ही इसके अंग को बेचते हैं। लेकिन जब भालू आक्रमण कर ही देता है तब फिर बैगाजन इसे तीर कमान से मार डालते हैं और कभी कभार इसके बालों को नोचकर इससे घर के काम के लिए रस्सी

बना लेते हैं लेकिन अब वन रक्षकों के भय के कारण रस्सी भी नहीं बनाते। सुअर, सांभर और भालू का शिकार विशेष रूप से तीर कमान व लोहे के जाल से ही करते हैं। तीर का आगे का भाग लोहे का होता है जिसमें बैगाजन जहर लगा देते हैं और यह जहर इतना तीव्र होता है कि एक तीर के लगते ही जानवर ढेर हो जाता है। तीर के आगे वाले भाग को बैगाजन अपनी भाषा में ''बिसार'' करते हैं।

तालिका संख्या 4.2.3

शिकार व प्रयुक्त औजारों का विवरण

क्र.	शिकार करने वाले विविध जीव जन्तुओं का विवरण	प्रयुक्त औजारों का विवरण
1	भूमिगत जन्तुओं के शिकार हेतु (बडा चूहा, सेही, केकरा आदि)	लकड़ी का फांदा
2	पानी के जन्तुओं के शिकार हेतु (गूलर, मेढ़क, मछली आदि)	वंशी से, कुमनी, कुरूं से, मच्छरदानी के छन्ने से, पानी को उलीच के भी मछलियों को मारते हैं।
3	पक्षियों के शिकार हेतु (कबूरत (परखा), कड़की, रामहे, ढेंची, फिद्ररी, चैइयाँ, बटेर, तीतर, लावा, वनमुरगी, वनमुरगा, खुसरा (उल्लू) इत्यादि	गुल्ला से (गुलेल) और चोप से (चोप = पीपल का दूध+ फिफरी का दूध + डूमर का दूध+ बड़ा का दूध + रमतिआ या भेलवा का तेल = अत्यन्त तीव्र चिपकने वाला पदार्थ)
4	भागने वाले जानवरों को फँसाने व मारने हेतु (सांभर, चीतल, खरहा, जंगली सुअर, छुटरी, भालू आदि)	बिसार से या लोहे के फांदे से
5	शहद तोड़ने हेतु	कुछ विशेष प्रकार की जड़ी बूटियों के रस का लेप शरीर पर लगाते हैं और टंगिया का सहारा भी लेते हैं।
6	लकड़ी काटने हेतु	टँगिया से

बैगा जनजाति के लोग चूहे को एक विशेष प्रकार के लकड़ी के फांदे से मारते हैं और मारकर उसे खा जाते हैं। चूहे को मारने के लिए बैगाजन मिटटी के घड़े का भी उपयोग करते हैं। घड़े में पहले गोबर के कंड़े तथा कूड़ा कचरा भकर उसमें आग लगाते हैं

इसके बाद घड़ें के मुँह पर फूँकते हैं। फूकने से नीचे के छेद से धुआ निकलता है और वह धुआ बिल में जाता है तो चूहा घबड़ाकर दूसरे बिल से बाहर निकल आता है। फिर उन चूहों को पकड़कर उनके दांत तोड दिए जाते हैं। चूहे का शिकार दबका फंदा तथा कठबिलाई फांदा से भी किया जाता है।

मछलियों को बैगा लोग कई प्रकार से पकडते हैं। बरसात के दिनों में छोटी-छोटी मछलियों को मच्छरदानी के जाल से पकडते हैं । कुरूं और कुमनी लकड़ियों का बना होता है जिसका एक सिरा चौडा होत है जहॉ से पानी के साथ मछलियां प्रवेश करती हैं जबकि दूसरा सिरा संकरा और इस प्रकार का बना होता है कि केवल पानी ही निकल सकता है मछलियां नहीं। बाद में कुरूं और कुमनी से मछलियों को निकालकर, तेल में तलकर नमक मिर्च के साथ बैगाजन बडी चाव से खाते हैं। छोटे-छोटे गढ्ढो में यदि मछलियां होती हैं और यदि पानी की मात्रा कम होती है, तो बैगाजन पानी को उलीचकर भी मछलियां पकड़ते हैं। चूँकि इनके क्षेत्र में पानी की ज्यादा सुविधा नहीं है जिसमें मछलियां पलकर बड़ी हो सके। ज्यादातर इनके क्षेत्र में नाले और झिरिया ही पानी के प्रमुख स्रोत हैं। बैगाजन नालों से ही छोटी-छोटी मछलियां पकड़ते हैं। जरूरी नहीं है कि सभी बैगाजन मछलियों का शिकार ही करते रहते हैं वरन् जिसके पास समय है और जिसका मन मछली खाने का कर रहा, वही अपना समान लेकर मछली पकड़ने चल देता है।

बैगाजन पक्षियों को विशेष रूप से गुलेल से ही मारते हैं और वर्तमान समय में तो बैगा लड़के ही पक्षियों का थोडा बहुत शिकार करते हैं, युवकों और वृद्धों की इसमें कोई रूचि नहीं रह गई है।

कुछ समय पूर्व जब बैगा जनजाति के लोग ज्यादा मात्रा में कृषि नहीं करते थे तब ये लोग भोजन के लिए बड़ी मात्रा में पक्षियों का शिकार करते थे और इसके लिए वे एक पदार्थ का प्रयोग करते थे जिसे ये लोग अपनी भाषा में 'चोप' करते हैं। चोप एक पेस्टनुमा पदार्थ हैं जिसे बैगाजन पीपल के पेड़ के दूध, फिफरी के पेड़ के दूध, डूमर के पौधे के दूध, बर के पौधे के दूध और रमतिला या भेलवा के तेल को मिलाकर बनाते हैं। इन सबकों मिलाने पर

जो पदार्थ बनता है वह इतना चिपचिपा होता है कि कोई चीज इसमें लगने के बाद आसानी से नहीं छूटती। बैगाजन इसी पदार्थ को एक लम्बे बांस के सिरे पर लगाकर जिस पेड़ पर ज्यादा पक्षी बैठे होते हैं उसी के बीचों-बीच खडा कर देते हैं। सूर्य के प्रकाश में यह पदार्थ चमचमाता है जिससे पक्षी इसकी ओर आकर्षित होते हैं और जैसे ही इसे खाने की कोशिश करते हैं वैसे ही वे उसमें चिपक जाते हैं और पक्षी जितना फडफडाता है उतना ज्यादा उसमें चिपकता जाता है। दूसरे पक्षी भी चिल्लाहट के कारण इसमें बैठते हैं और वे भी अपनी जान गवां बैठते हैं। इस प्रकार एक बार में 5 से 10 पंक्षी फंस जाते हैं और बैगाजन इनको निकालकर खाते हैं। वर्तमान समय में इस विधि से बैगाजन नाममात्र ही शिकार करते हैं और धीरे-धीरे यह विधि लुप्तप्राय होती जा रही है।

जंगली सुअर, सांभर, चीतल और भालू आदि का शिकार वनग्राम के बैगाजन तीर कमान (बिसार) और लोहे के फांदे से करते हैं। जिस स्थान पर जानवरों के आने की ज्यादा संभावना होती है उस स्थान पर दिन में ही फांदा लगा दिया जाता है और जब शिकार इसमें फंस जाता है तो उसे बिसार से मार देते हैं। जंगली सुअर अपनी जान को खतरे में देखकर पलटवार भी कर देता है इसी कारण बैगाजन इसको दूर से ही बिसार से मारते हैं और इसमें कई लोग भाग लेते हैं। शिकार के जिस स्थान पर बिसार लगता है उतने भाग को काटकर हटा दिया जाता है और शेष भाग बैगाजन आपस में बांट लेते हैं। बिसार को बैगा लोग अगरिया (लोहार) से खरीदते हैं। अगरिया बिसार को केवल पैसे में ही देता है। अनाज के बदले में इसका मोलभाव नहीं किया जाता। जबकि कृषि के अन्य उपकरण अगरिया अनाज के बदले में भी विनिमय कर देता लेता है। बिसार के अगले भाग में बैगाजन शिकार को मारने के लिए जहर लगाते हैं। जहर बैगाजन गौरेला से लाते हैं जो जल्दा बौना गांव से लगभग 100 कि.मी. की दूरी पर है। अन्य गाँवों के बैगाजन भी शिकार के लिए जहर यहीं से ले जाते हैं।

शहद को बैगाजन विशेष रूप से खाने के लिए ही तोडते हैं। जल्दा बौना गांव के बैगाजन कभी-कभार व गाँव के कुछ व्यक्ति ही शहद तोड़ते हैं। जबकि छोटकी रेवार,

आमाडोब नामक वनग्राम के बैगाजन शहद को तोड़कर स्थानीय व्यापारियों, दुकानदारों और हाटों में बेचते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ मधुमक्खियों के छत्तों की अधिकता है।

यदि बैगाजनों के परिवर्तित स्वरूप को देखा जाए तो इनकी शिकार पर निर्भरता बहुत ही अल्प मात्रा में रह गयी है। शिकार की प्रवृत्ति जो अभी भी अल्प मात्रा में शेष है वह सिर्फ वनग्रामों तक ही सीमित है। अब बैगा जनजाति बहुत तेजी से खेती की ओर परिवर्तित हो रही है, इस कारण इनमें शिकार के लिए समय ही नहीं बचता और दूसरी ओर वन कर्मचारियों का भय, शिकार करने पर इनमें अंकुश लगता है। बैगा जनजाति के लोग भी अब फसलों की रक्षा के लिए कृषक जातियों की भांति खेत पर आदमी के पुतले, रात में रखवाली के लिए अस्थायी घर बनाने लगे हैं। जंगली सुअर, सांभर, चीतल आदि का शिकार बैगाजन फसलों की रक्षा के लिए ही करते हैं और भालू का शिकार अपनी रक्षा के लिए करते हैं। बौना गांव के अगरिया ने भी शोधकर्ता को बताया कि पहले की अपेक्षा बैगा जनजाति के लोग 'बिसार'' कम खरीदते हैं और दिनोंदिन इसकी मांग कम होती जा रही है जबकि अन्य कृषि उपकरणों में लगने वाले लोहे की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है। बैगा जनजाति एक सुअर पालक जनजाति है और इनके प्रत्येक घर में सुअर देखे जा सकते हैं। अतः जब इनकों मांस खाना हुआ तो ये पालतू सुअर को मारकर खा जाते हैं। अब बैगाजन पर्याप्त मात्रा में खाने के लिए अन्न पैदा कर लेते हैं, इस कारण भी इनकों शिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यो ये लोग कृषि के क्षेत्र में आगे बढ़ते जाएंगें, इनमें शिकार करने की प्रवृत्ति का लोप होता जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जंगलों व जीव जन्तुओं की लगातार घटती संख्या, वन रक्षकों का भय, समय का अभाव, अर्थप्रधान समाज और कृषि की तरफ तेजी से रूझान आदि के कारण वनग्रामों के बैगाजनों की शिकार पर निर्भरता बहुत ही कम रह गयी है।

तालिका संख्या 4.2.4

सर्वेक्षित उत्तरदाताओं का वनों में निर्भरता संबंधी विवरण

क्र.	वनों में निर्भरता	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	289	96.33
2	नहीं	11	3.67
	योग	300	100.00

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित गांवों के कितने बैंगाजन वनों पर अपनी दैनिक, और आर्थिक जरूरतों के लिए निर्भर है। वास्तव में जंगल ही आदिवासियों के सच्चे साथी हैं जो हर समय उनकी हर आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे हैं। बैगा जनजाति के लोग विशेषकर वन ग्रामों में बसे हुए बैगाजन खेती के अतिरिक्त शेष समय वनोत्पाद के संकलन में ही लगते हैं। दूसरी ओर राजस्व गाँवों के बैगाजन भी आसपास के जंगलों से वनोपज का संकलन करते हैं।

जब से बैगा जनजाति खेती की ओर बढ़ी है तब से इनके क्षेत्र में वनों की संख्या का तेजी से ह्रास हुआ है जिसका कारण पेड़-पौधों को काटकर खेत बनाने की लालसा है। बैगा जनजाति के लोग जलाऊ लकड़ी जंगलों से ही लाते हैं और सुबह-शाम इसको बेचने भी जाते हैं जिससे इनको प्रतिदिन कुछ न कुछ आर्थिक लाभ हो जाता है। हालांकि बैगा जनजाति के सभी लोग कुछ न कुछ पशु अवश्य पालते हैं पर ये लोग गोबर से कंडे नहीं बनाते क्योंकि इनको जलाऊ लकड़ी वनों से आसानी से प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि कुल 300 उत्तरदाताओं में से 289 (96.33 प्रतिशत) परिवारों ने वनों पर अपनी निर्भरता जतायी है जो 11 (3.67 प्रतिशत) परिवार अपना उत्तर नहीं में देते हैं वे लोग या तो सरकारी सर्विसों में हैं या फिर इनके पास इतनी भूमि है कि इनको वनोपज के संकलन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। फिर भी ये लोग

जलाऊ लकड़ी वनों से ही प्राप्त करते हैं। 3.67 प्रतिशत में जिनके पास खेती अधिक है उनमें भी कुछ लोग कृषि उपकरणों के लिए लकड़ी वनों से ही प्राप्त करते हैं। यह दूसरी बात है कि ये लोग वनोपज़ का संकलन नहीं करते और न ही उसे बेचते हैं। पंचगांव रैयत जोकि एक राजस्व ग्राम हैं यहाँ के बैगाजन दिन में जलाऊ लकड़ी काटकर ले आते हैं और फिर सुबह बड़े तड़के उसको बेचने के लिए बाजार ले जाते हैं। पचगांव रैयत से गाड़ासरई 10 कि.मी. दूर है। इतनी दूरी तय करके ये लोग लकड़ी बेचने आते हैं। जल्दा और बौना जोकि वनग्राम हैं यहाँ के बैगाजन जंगल में ही लकड़ी काटकर उसको बाजार जाने के रास्ते में छुपा देते हैं और सुबह तड़के उसको उठाकर चल देते हैं इससे कुछ दूरी कम हो जाती है। बाजार में लकड़ी ले जाने का काम स्त्री-पुरूष सभी करते हैं। यह जरूरी नहीं है कि सभी लोग लकड़ी बेचने का ही कार्य करते हैं वरन् जिसको आवश्यकता होती है वही यह कार्य करता है। लकड़ी के गट्ठर की सामान्य दर निम्नवत रहता है :-

सामान्य दर

1	गट्ठर	-	10 रू0
1	कांवड़	-	20 रू0

ठंड़ी व बरसात में

1	गट्ठर	-	12-13 रू0
1	कांवड़	-	25-30 रू0

वनोपज के मामले में बैगाजन हमेशा से शोषण का शिकार रहे हैं। ये लोग स्थानीय दुकानदारों को वनोपज आधे मूल्य से भी कम दामों में बेच देते हैं। ये लोग वास्तविक मूल्य से अनभिज्ञ होते हैं और ज्यादा बड़े कस्बों, नगरों में जाने की हिम्मत भी नहीं करते । अपनी दैनिक जरूरतों के लिए भी ये लोग तुरन्त वनोपज को बेंच देते हैं। कई बार तो ऐसा होता है कि जिस वनोपज को वे लोग आधे से भी कम मूल्य में बेंच देते हैं, बाद में उसी को ये लोग दोबारा दुगने मूल्य में खरीदते हैं। जैसे महुए की बहार आने पर ये लोग तीन-चार

रूपये प्रति किलों के हिसाब से बेंच देते हैं, बाद में इसी महुए को इन्हीं दुकानदारों से 10-12 रूपये प्रति किलो के हिसाब से खरीदते हैं।

मई-जून के महीने में बैगाजनों को तेंदूपत्ता की तुड़ाई से भी कुछ आर्थिक लाभ मिल जाता है। तुड़ाई के पहले फंड़ मुंशी प्रत्येक बैगा परिवार को तेंदूपत्ता कार्ड वितरित कर देता है। इस कार्ड पर वह प्रतिदिन के पैसे चढ़ाते जाता है। हर वर्ष नया कार्ड दिया जाता है। तेंदूपत्ता तुड़ाई के एक या दो महीने बाद डिप्टी रेंजर या पालक अधिकारी या ठेकेदार द्वारा पैसा दिया जाता है। 100 गड्डी की मजदूरी 45 रूपये होती है। एक गडडी में 52 पत्ते होते हैं। कुछ बैगाजन तुरंत पैसा पाने के लालच में स्थानीय दुकानदारों को इससे सस्ते दामों में भी तेंदू पत्ता बेंच देते हैं।

बैगाजन साल भर कुछ न कुछ वनोपज एकत्रित करके उसे बेंचते रहते हैं और अपनी छोटी-मोटी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं के द्वारा करते रहते हैं। अग्रिम तालिका में बैगाजन वनोपज को किस मूल्य में बेचते हैं, यह उन्हीं के द्वारा बताए गये मूल्य के रूप में लिखा गया है जबकि बाजारी मूल्य या वास्तविक मूल्य स्थानीय दुकानदारों, ठेकेदारों, शिक्षकों, वन-रक्षकों व अन्य सरकारी कर्मचारियों की सूचनाओं के आधार पर लिखा गया है। बैगाजनों द्वारा संकलित व बेंचे जाने वाली प्रमुख वनोपज अग्रलिखित है :-

तालिका संख्या 4.2.5

बैगा जनजाति द्वारा संकलित की जाने वाली वनोपज का विवरण

क्र.	वनोपज	प्रमुख माह	दुकानदारों/ साहूकारों का मूल्य (स्थानीय मूल्य)	वास्तविक मूल्य (लगभग) (बाजारी मूल्य)
1	साल सरई की रार गोंद (धूप) साल बीज	मार्च-अप्रैल जून	15-20 रू0/ किलो 3-4रू0/ किलो	50-50रू0/ किलो 5-6 रू0/ किलो
2	शहद	मार्च-जून	40-50 रू0/ किलो	100-200रू0/ किलो
3	सफेद मूसली	जनवरी-फरवरी	15-30 रू0/ किलो	40-70 रू0/ किलो
4	बिरंगी	जनवरी-फरवरी	12-15 रू0/ किलो	100 रू0/ किलो
5	हर्रा बहेड़ा	जून-जुलाई	4-5 रू0/ किलो	10-15 रू0/ किलो
6	रेणबिखउल बीज (भकरेंड़ा)	सितम्बर-अक्टूबर	1-2 रू0/ किलो	5-10 रू0/ किलो
7	तेंदू पत्ता	मई-जून	प्रति सौ गडडी की मजदूरी 45 रू0	

8	माहुल पत्ता	-	4-5 रू0/ किलो	10-12 रू0/ किलो
9	भेलवा दाना	फरवरी-अप्रैल	2-5 रू0/ किलो	15-20 रू0/ किलो
10	चिरौंजी	मई-जून	60-90 रू0/ किलो	100-120 रू0/ किलो
11	महुआ (फूल) बीजी	मार्च-अप्रैल जुलाई-अगस्त	3-7 रू0/ किलो 3-5 रू0/ किलो	10-12 रू0/ किलो 7-8 रू0/ किलो
12	आंवला	नवम्बर-फरवरी	2-3 रू0/ किलो नमक के बदले विनिमय	8-10 रू0/ किलो
13	ककड़ी की बीज	अक्टूबर-नवम्बर	50-60 रू0/ किलो	100-120 रू0/ किलो
14	चकोड़ा दाना	अगस्त-सितम्ब	2-3 रू0/ किलो	5-6 रू0/ किलो

वर्तमान समय में बैगा जनजाति का प्रमुख रूझान खेती की ओर है। इसलिए वनोपज अब इनका प्राथमिक नही है वरन द्वितीयक स्रोत बन गया है। एक समय बैगा जनजाति को वनो को रक्षक समझा जाता था और यह कहा जाता था, कि बैगाजन वनों में रहना ही पसन्द करते है । परन्तु आज यही जनजाति खेती के लालच वनो की लगातार कटाई कर रही है यदि वन-विभाग का अंकुश न हो तो ये लोग वनों को काटकर समतल कर दें। अब बैगा जनजाति , गोंड और अन्य जातियों की तरह खेती करने लगी है। अतः नागर (हल) , बख्खर देतरी व अन्य कृषि उपकरणों , मकानों के निर्माण आदि के लिये ये लोग एक से एक हरे भरे काट डालते है यदि दिन को मौका मिलता तो यह काम रात को किया जाता है। हालाकि वन विभाग द्वारा बैगाओं को पर्याप्त मात्रा में खेत दिये गये है। परन्तु यह लोग खेत के आस पास लगे हुये पेडो को काटकर खेत की सीमा बढाते जाते है। वनग्राम बौना के वन रक्षक श्रीनिवास पाण्डेय ने सोधकर्ता को बताया कि बैगाजन खेत के आस पास लगे हुए पेडों को " घुन" की तरह मारकर खेत को फैलाते जाते है। कहने का तात्पर्य यह कि खेत के आस पास लगे हुए पेडों में बैगाजन टंगिया (कुल्हाडी) से पेड के तने में सबसे घेरे द्वारा हरी छाल निकाल देते है, जिसे ये लोग अपनी भाषा में "गार्डर" कहते है। कुछ समय पश्चात यह पेड सूखने लगता है। यदि पेड सूखता तो गार्डर को और चौडा कर दिया जाता है। फिर सूखे हुए पेड की छाल को उतार जलाने के काम लाया है। फिर धीरे-धीरे सूखे पेड को जलाऊ लकडी के रूप में इस्तेमाल कर लिया जाता है। इस प्रकार पेड समाप्त होते जाते है, और खेत की सीमा बढती जाती है।

शोध कर्ता ने भी वनग्राम जल्दा और बौना खेतो के आस पास लगे हुए हरे भरे पेडों में अनेक गार्डर के निशानों को निरीक्षण किया है। कहने का आशय यह है कि वनों को जितना खतरा बाहरी समाजों से है उनको उतना ही खतरा जनजातीय समाजों से भी। बैगा जनजाति को अब यह भलिभांति मालूम है कि खेती ही उनकी आर्थिक स्थिति को सुधार सकती है। क्योकि इनके आस पास के गांवों में रहने वाले गोड खेती के आधार पर ही खुशहाल है।

तालिका संख्या 4.2.6

पशु पालन सम्बन्धी विवरण

क्रमांक	पशु	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	गाय+बैल+सुअर	170	56.6
2.	गाय+बैल+बकरी	60	20.0
3.	गाय+बैल+बकरी+सुअर	50	16.7
4.	गाय+बैल+भैस+सुअर	11	3.7
5.	बैल+बकरी	6	2.0
6.	गाय+सुअर	3	1.0
	योग	300	100.0

उपरोक्त तालिका में यह जानने का प्रयास किया गया हैं कि सर्वेक्षित गांव के बैगाजन कौन- कौन से पशु पालते हैं। बैगा जनजाति एक सुअर पालक जनजाति हैं, इसीलिए इनके घर के आस-पास सुअर से आसानी से देखे जा सकते है। बरसात के दिनों में इन्हीं सुअरों के कारण इनके यहां बडी गंदगी रहती है जिसके कारण अनेक प्रकार की बीमारियां पनपती है। अब बैगाजन व्यवस्थित खेती करने लगी है, इसलिये इनके यहां अनेक गाय-बैल प्रायः सबके यहां देखे जा सकते है।

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ऐसे परिवार जो गाय, बैल और सुअर पालते है उनकी संख्या सर्वाधिक अर्थात 170 (56.6 प्रतिशत) है। गाय, बैल और सुअर पालने वाले ये सभी परिवार जल्दा, बौना और पिपरिया गांव के है। गाय-बैल को ये

लोग खेती करने के लिए पालते है जबकि सुअर को खाने के लिए और देवी-देवताओं में बलि चढ़ाने के लिए व बेचने के लिए पालते है। गाय को बैगाजन मुख्यतः बैलों के लिए ही पालते है और दूध की दृष्टि से भी इनका महत्व है। हालांकि इनके यहां की गायें बहुत दुबली-पतली व अच्छी नस्ल की नहीं होती, इसी कारण इनके बछड़े भी दुबले-पतले होते है। गाय को ये लोग हिन्दुओं की तरह पवित्र नहीं मानते और बैलों के न होने पर गाय से भी खेती करते है।

कुल उत्तरदाताओं में से ऐसे उत्तरदाता जो गाय, बैल और बकरी पालते है उनकी संख्या 60 (20 प्रतिशत) है। ये सभी उत्तरदाता पचगांव रैयत के है। यहां के बैगाजन सुअर नहीं पालते है और देवताओं में बकरे की बलि देते है, इसलिए सभी लोग बकरी पालते है। इस गांव के बैगा आर्थिक दृष्टि से जल्दा, बौना और पिपरिया गांव से कुछ भिन्न है। पचगांव रैयत के बैगाजन भी गोंड और अन्य जातियों की तरह ही खेती करने लगे है और नकदी फसलें बोते है। इस गांव के अधिकांश बैगाजन गोंड और अन्य जातियों की खेती बटाई पर लेते है और जो नकदी फसलें बोने की सलाह व बीज देते है। इसी कारण यहां कोदो, कुटकी की खेती बहुत कम की जाने लगी हैं। दूसरी ओर इस गांव वनों के अभाव के कारण सूअर पालन नहीं करते क्योंकि घर के पास के खेतों की सुअरों से रक्षा के लिए लट्ठे नहीं मिल पाते।

कुल उत्तरदाताओं में से ऐसे उत्तरदाता जो गाय, बैल, बकरी के साथ-साथ सुअर भी पालते है उनकी संख्या 50(16.7 प्रतिशत) है। यह अपनी-अपनी सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि कौन कितने पशु पालता है। हालांकि ये लोग बकरी और सुअर को खाने और बलि चढ़ाने के अतिरिक्त बेचने के लिए भी पालते है, जिससे इनको आर्थिक लाभ मिलता है। जरूरी नहीं है कि सभी के पास दो बैल ही हों। कई लोगों के पास एक बैल भी होता है और ऐसे लोग दूसरे से बैल मांगकर या अपनी गाय को ही बैल के साथ हल से खेती करते है। गाय, बैल, बकरी के साथ-साथ सुअर पालने वाले सभी उत्तरदाता जल्दा, बौना ओर पिपरिया गांव के ही है।

कुल उत्तर दाताओं में से ऐसे उत्तरदाता जो गाय, बैल, सुअर के साथ-साथ भैस भी पालते उनकी संख्या बहुत ही कम अर्थात 11(3.7 प्रतिशत) हैं। भैस भी पालने का कारण इसका महंगा होना हैं जिसे बैगाजन दूसरी जातियों और बाजार से खरीद नहीं पाते। जो लोग भैस पालते हैं वे लोग भैसा से खेती भी करते हैं। एक विशेष बात यह हैं कि बैगाजन अपने बैलों और भैंसा से अन्य कृषक जातियों की तरह ''नाथते'' नहीं हैं। ''नाथते'' का तात्पर्य नकेल डालने से हैं। मैने कई बैगाजनों से पूछा कि वे बैलों को नकेल क्यों नहीं पहनाते तो उन्होने जवाब दिया कि इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जबकि वास्तविक कारण यह है कि इनके बैल इतने दुबले-पतले होते है कि ये खेती करने के दौरान इन्हें परेशान ही नहीं करते, इसीलिए ये लोग नकेल ही नहीं डालते। दूसरा कारण ये लोग गाय-बैलों को खूंटों से नहीं बांधते बल्कि 'बाडा' (पशुओं का घर) में सबको बंद कर देते है, इसलिए भी नकेल की आवश्यकता नहीं पडती। पशुओं के बांडे भी बहुत गंदे होते है और इनको चारा नहीं डाला जाता वरन् सुबह होते ही इनको जंगलों की तरफ चरवाहे के साथ छोड दिया जाता है। जंगलों में पशुओं लायक चारा बहुत कम होता है, जिस कारण इनके पशुओं को भर पेट भोजन तक नहीं मिल पाता। हालांकि बकरी अपना पेट भर लेती है क्योंकि जंगलों में विभिन्न प्रकार की झाडियों की अधिकता होती है। दूसरी ओर सुअर भी दुबले पतले से रहते है क्योंकि इनको भी पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिल पाता। और तो इनके गले में फसलों की रक्षा के लिए गले में वी(V) के आकार की लकडी बांध देते है जिससे ये घर के पास के खेतों में बनी हुई लकडी, पत्थर की दीवारनुमा रचना में न घुस सके। जैसे ही ये सुअर लकडी, पत्थर की दीवारकी सांसो से घुसने की कोशिश करते है, ये लकडी अड जाती है और घुस नहीं पाते। इस लकडी को बैगाजन अपनी भाषा में 'ढढोरी' या 'दढेरी' कहते है। हालांकि समय-समय पर बैगाजन इन सुअरों को खाद्य पदार्थ देते रहते है परन्तु उतना नहीं देते जितना इनको आवश्यकता होती है। ये सुअर घर के पास के खेत के अलावा दूर के खेतों में चरने भी नहीं जाते। इसलिए लकडी, पत्थर की दीवार केवल घरके पास के खेतों में ही होती है, दूरस्थ खेतों में नहीं। सुअर का घर रहने वाले घर के बिल्कुल पीछे या बगल में बना होता है। सुअर के घर को बैगाजन अपनी

भाषा 'गूड़ा' कहते है। कई लोग पशुओं के "बाडे" को दीवार से घेर देते है जबकि कुछ लोग लट्ठों को ही चारों तरफ बांधकर बांडा बनाते है और उसी में पशुओं को बंद कर देते है।

कुछ उत्तरदाताओं में से ऐसे बैगा परिवार जो केवल बैल और बकरी पालते है उनकी संख्या सिर्फ 6 (2.00 प्रतिशत) है। ये परिवार बहुत ही गरीब है और इनके पास बहुत ही कम भूमि है। ये लोग मुख्यतः दूसरे की खेती बटाई पर लेकर, उस पर खेती करके अपना जीवन यापन करते है। ऐसे सभी उत्तरदाता पचगांव रैयत के हैं। कुल उत्तरदाताओं में से जो केवल गाय और सूअर पालते है, उनकी संख्या केवल 3 (1.00 प्रतिशत) है। ये तीनों परिवार बैल इसलिए नहीं पाले क्योकि इन तीनों के पास खेती करने के लिए ट्रैक्टर है। गाय को दूध के लिए और सुअर को खाने के लिए तथा देवी-देवताओं में बलि चढ़ाने के लिए पालते है।

पशुपालन के संबंध में बैगा जनजाति के परिवर्तित प्रतिमान के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह जनजाति अब सुअर पालन की अपेक्षा अन्य पशुओं पर अधिक ध्यान दे रही है। अभी तक यही माना जाता था कि बैगा जनजाति केवल सुअर और बकरी पालती है, अन्य जानवर नहीं पालती क्योंकि बैगा जनजाति हल से खेती नहीं करती। क्योंकि 'नांगा बैगा' ने उन्हें ऐसा करने को कहा था। परन्तु वर्तमान समय में अर्थप्रधान समाज होने के कारण बैगा जनजाति अपनी धार्मिक मान्यताओं के विरूद्ध तेजी से खेती की ओर अग्रसर है। इसी कारण अब इनमें गाय-बैल पालने की ललक ज्यादा है। दूसरी ओर अब पर्याप्त मात्रा में शिकार द्वारा मांस न मिलने के कारण ये लोग दूध, मट्ठा पर भी आश्रित होते जा रहे है जो कि पालतू पशुओं के द्वारा ही संभव है। अब बैगा जनजाति के लोग सुअर और बकरी केवल खाने और देवी-देवताओं पर चढ़ाने के लिए ही नहीं पालते, वरन् बेचने के लिए भी पालते है। बैगा जनजातियों के अलावा इनके पास रहने वाली जनजातियों जैसे- गोंड, पनिका, अगरिया और अन्य जातियों में भी भूत-प्रेत और अन्य देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा प्रबल है और समय-समय इनको प्रसन्न करने के लिए बलि देने पड़ती है और बलि के लिए ये लोग सुअर व बकरा बैगाजनों से ही खरीदकर ले जाते है। इसके अतिरिक्त अन्य जनजातियों, जातियों कस्बे

व नगर के लोग भी खाने के लिए इनके यहां से सुअर व बकरा खरीदकर ले जाते है। जल्दा, बौना और पिपरिया और पचगांव रैयत के बैगाजन अपने सुअरों व बकरी-बकरा को किस मूल्य पर बेचते है, यह उन्हीं के द्वारा बताए गये सूचनाओं के आधार पर निम्नवत् है:-

तालिका संख्या 4.2.7

बकरा-बकरी का मूल्य संबंधी विवरण

क्र.	बकरा-बकरी	मूल्य
1.	तीन-चार साल की बकरी	300-400 रू0
2.	तीन-चार साल का बकरा	400-500 रू0
3.	एक साल का बकरा	1000-1200 रू0
4.	वयस्क बकरा	1500-2000 रू0
5.	वयस्क बकरी	700-800 रू0

तालिका संख्या 4.2.8

सुअर का मूल्य संबंधी विवरण

क्र.	सुअर	मूल्य
1.	तीन या चार महिने का सुअर का बच्चा	200 रू0
2.	एक साल का बच्चा	900-1000 रू0
3.	सबसे बड़ा सबसे ज्यादा ताकतवर सुअर	2500-3000 रू0

तालिका संख्या 4.2.9

मुर्गीपालन संबंधी विवरण

क्र.	मुर्गीपालन	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	291	97.0
2.	नहीं	9	3.0
	योग	300	100.0

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित गांवों के कुल उत्तरदाताओं में से कितने लोग मुर्गीपालन का कार्य करते है। केवल 9 (3 प्रतिशत) उत्तरदाता ही ऐसे मिले जो मुर्गी नहीं पाले थे। लगभग प्रत्येक बैगा गांव के सब परिवारों के यहां मुर्गियां देखी जा सकती है। मुर्गीपालन में बैगाजनों को विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती। इनके यहां पर्याप्त मात्रा में मैदान होता है जहां मुर्गियां चुंगती रहती है। हालांकि बैगाजन बडी मात्रा में मुर्गीपालन नहीं करते, परन्तु अपनी आवश्यकतानुसार सभी लोग मुर्गी पालते है। कुछ बैगाजन मुर्गियों के लिए छोटा सा घर भी बना देते है जबकि कई बैगाजन इनको खुला ही छोड़े रहते है और रात के वक्त रहने वाले घर के अन्दर कर लेते है।

प्रत्येक बैगा परिवार के यहां कम से कम तीन-चार मुर्गी-मुर्गा तो होते ही है और कई लोग तो 10-15 तक रख लेते है। अधिकांश बैगाजनों की संख्या 6-7 तक देखी जा सकती है। व्यवहारिक दृष्टि से बैगाजन तीन उद्देश्यों के लिए मुर्गी पालते है:-

1. देवी-देवताओं में बलि देने के लिए।
2. स्वयं के खाने के लिए।
3. बेचने के लिए।

साल में दो या तीन बार बैगाजन अपने देवी-देवताओं पर मुर्गे की बलि देते है। कभी-कभार जब इनके परिवार के सदस्यों को भूत-प्रेत सताने लगता है तो गुनिया

इन आत्माओं को शान्त करने के लिए मुर्गे की बलि देता है। चूंकि जंगली इलाकों में शाक-भाजी ज्यादा नहीं होती, इसलिए बैगाजन समय-समय पर अपने मुर्गे-मुर्गियों को ही खाते रहते है। मेहमानों के आने पर और विशिष्ट त्याहारों में तो मुर्गा बनाते ही है। इसके अतिरिक्त बैगाजनों को साल भर मुर्गीपालन से कुछ न कुछ आर्थिक मदद भी मिलती रहती है। इनके आसपास रहने वाली जनजातियां, जातियां, देवताओं को चढ़ाने के लिए और खाने के लिए मुर्गे-मुर्गियां प्रत्येक मौसम में लेते रहते है। वन विभाग के कर्मचारी, स्कूलों के अध्यापक, स्वास्थ्य कर्मचारी और नगर-कस्बे के लोग देशी मुर्गा व अंडे समय-समय पर लेते रहते है। जब कभी इनके यहां शहरों से कोई अधिकारी आता है तो उसके सहायक भी 2-3 मुर्गा अपनी गाडी में डाल लेते है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से भी मुर्गीपालन का इनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। जल्दा, बौना, पिपरिया ओर पचगांव रैयत के बैगाजन अपने मुर्गे-मुर्गियों को जिस मूल्य पर बेंचते है, उसका विवरण निम्नवत् हैः-

तालिका संख्या 4.2.10

मुर्गा-मुर्गी मूल्य संबंधी विवरण

क्र.	मुर्गा-मुर्गी	रुपये
1.	छोटा मुर्गा	60-70 रू0
2.	बड़ा मुर्गा	90-120 रू0
3.	मुर्गी	60-70 रू0
4.	प्रति अंडा	2-3 रू0

4.3 स्थानान्तरित खेती (झूम खेती)

यह मानव की आदिम अवस्था की सूचक कृषि है। इसमें सबसे पहले कुल्हाडी से वन के किसी छोटे खंड को साफ करके वृक्षों तथा झाडियों को जला दिया जाता है। उसके बाद कुछ वर्शो तक कृशि की जाती है। भूमि की उर्वरता समाप्त हो जाने पर उसे छोड़कर किसी दूसरी जगह पर यही क्रिया की जाती है। इसीलिए इसे 'काटना और

जलाना' अथवा 'बुश फेलों' कृषि भी कहा जाता है। इसमें खेतों का आकार काफी छोटा होता है। एक साथ ही कई फसलों की कृषि की जाती है। विश्व के उश्णकटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय जंगली भागों में इस प्रकार की कृशि अनुकूलता से की जाती है।

तालिका संख्या 4.3.1

विश्व के विभिन्न भागों में स्थानान्तरित कृषि के नाम

क्र.	नाम	क्षेत्र
1.	रे	वियतनाम तथा लाओस
2.	टावी	मलागासी
3.	मसोले	कांगो(जेरे नदी घाटी क्षेत्र)
4.	फैंग	भूमध्यरेखीय अफ्रीकी क्षेत्र
5.	लोगन	पश्चिमी अफ्रीका
6.	मिल्पा	यूकाटन एवं ग्वाटेमाला
7.	इचाली	ग्वाडेलूप
8.	मित्या	मैक्सिको एवं मध्य अमेरिकी क्षेत्र
9.	कोनूको	वेनेजुएला
10.	रोका	ब्राजील
11.	चेतेमिनी	यूगाण्डा,जाम्बिया तथा जिम्बांबे
12.	कैंगिन	फिलीपींस
13.	तुंग्या	म्यांमर (बर्मा),
14.	चेन्ना	श्रीलंका
15.	लेदांग	जावा तथा इण्डोनेशिया
16.	तमराई	
17.	हुमा	

तालिका संख्या 4.3.2

भारत के विभिन्न भागों में स्थानान्तरित खेती के नाम

क्र.	नाम	क्षेत्र
1.	झूम	उत्तरी-पूर्वी भारत
2.	बेवर तथा डहियार	बुन्देलखण्ड सम्भाग (मध्य प्रदेश)
3.	दीपा	बस्तर जिला (छत्तीसगढ़)
4.	जारा तथा एस्का	दक्षिण भारतीय राज्य
5.	बत्रा	दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान
6.	पोडू	आन्ध्र-प्रदेश
7.	कुमारी	केरल में प-चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्रों में उड़ीसा
8.	कमान, बिंगा तथा धावी	

4.4 बैगा जनजाति में स्थानान्तरित खेती संबंधी विवरण

पूर्व मे हल से खेती करना बैगाजन पाप समझते थें। सन् 1867 के पहले तक के ये लोग केवल कुल्हाडी और कुदाल से ही खेती करते थें। सन् 1867 के बाद अंग्रेजों ने इन पर फावड़े तथा कुल्हाडी से खेती करने वाले ढ़ंग पर पाबंदी लगा दी। बैगाजनों का ऐसा वि-वास था कि नांगा बैगा ने सृष्टि के प्रारंभ में जंगल काटकर और जलाकर बीज बोने का निर्दे-ा दिया था तथा हम इसी मिट्टी से पैदा हुए है, इसलिए धरती माता के पुत्र हल के नुकीले फलों से हम अपनी माता की छाती नहीं चीर सकते। ऐसा करना महापाप है।

ऐसी खेती को बैगाजन बेवर खेती कहते है। ऐसी खेती करने के लिए किसी भी जंगल की ढलानों पर, नदियों की तराइयों में एक अच्छी सी जगह चुन ली जाती है, फिर कुटकी दाई और अन्न दाई को वचन दिया जाता है कि यदि फसल अच्छी हुई तो उसे काफी चढ़ावा दिया जायेगा। वन देवता को नारियल की भेंट दी जाती थी। फिर भादों में

बैगाजन वृक्षों को नीचे से काटकर गिरा देते थे। सारा क्षेत्र वृक्षों की तनों, डाली और पत्तों से पट जाता था। कटे हुए पेंड कुछ दिन धूप में पडे रहते थे। धीरे-धीरे वे सूख जाते थे। बै-ाख के अन्त और जेठ के प्रारंभ में कटे वृक्षों में आग लगा देते थे। बेवर में राख ही राख दिखाई देती थी। आग लगने से जमीन भी जल जाती थी। आग के ठंडे होने पर जेठ की पहली बरसात में जमीन राख से मिलकर भुरभुरी हो जाती थी, फिर उसे कुदाल द्वारा राख को मिलाते थे। फिर उसमें कोदो, कुटकी, मक्का, बाजरा, रसैनी, साग, झंझरू, बरबटी, झुरगा, दिरा आदि बीजों को एक साथ मिलाकर मुट्ठी से पूरे खेत में छिटक दिया जाता था। बरसात होने पर सभी पौधे बडे हो जाते थें। निराई और पौधों की रखवाली महिलाएं करती थी। पौधों के पक जाने कें बाद उसी जगह गाहनी का काम बैलों के द्वारा नहीं किया जाता था, वरन् पैरों से या मूसल के सहारे अनाज कूट लिया जाता था। इस प्रकार की खेती एक ही स्थान पर अधिक से अधिक तीन वर्शों तक ही कर पाते थें, क्योंकि वर्षा में राख बह जाती थी। तब वे दूसरे जंगल को जलाकर खेती करते थे।

मध्य प्रदेश में 1867 तक स्थानान्तरण कृषि का प्रचलन वहां की जनजातियों में बिना किसी रोक-टोक के था। 1867 में सरकार ने इस प्रकार की कृशि-प्रणाली पर प्रतिबंध लगाया तथा यह आदेश जारी किया कि केवल राज्य सरकार की अनुमति से ही स्थानान्तरण कृषि का प्रयोग हो सकता है। परन्तु सरकारी नियन्त्रण के बावजूद भी सरगुजा, जसपुर, शहडोल, मण्डला, बालाघाट, बस्तर, बिलासपुर, बैतूल, छिंदवाडा, दुर्ग के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानान्तरण कृशि की जाती रही हैं। सरगुजा, जसपुर, बस्तर व राजनाँदगांव के प्रदश-ों में तो हाल ही तक इस प्रणाली को अपनाया गया।[1] 1948 में इन रियासतों के विलय हो जाने के बाद सी0पी0 तथा बरार जंगलात कानूनों को इसमें भी लागू किया गया। जैसे उस समय मण्डला जिले में बैगाचक, बस्तर जिले में अबूझमाड़ तथा कुछ अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में इस प्रथा के लिए जनजातियों को अनुमति दी गईं। इन प्रदेशों की जनजातियों के जीविकोपार्जन के लिए कृषि उपज पर्याप्त नहीं होती थी अतः ये इसके साथ-साथ अन्य व्यवसायों को भी अपनाते थे, जैसे वन्य पदार्थों को संचय टोकरी बनाना तथा चटाइयां बनाना आदि।

बिलासपुर तथा उसके आस-पास के प्रदेश की बैगा जनजाति में भी स्थानान्तरण कृषि का प्रचलन रहा है। बैगा लोग हल से खेती करना पाप समझते थें। धरती को वे माँ समझते थे, अतः नुकीले हल से धरती को चीरने का कार्य मां के सीने में प्रहार करने अथवा एक अपराधी का कार्य समझते थें। जिस प्राकर एक उच्च्व कुलीन ब्राम्हण हल चलाने का अर्थ आज भी उसके जाति भ्रष्ट होने से लगाता है। परन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी सुधार संस्थाओं के निरन्तर प्रयास से अब इन लोगों की धारणा में परिवर्तन आ गया है तथा इन्होंने कृषि की आम प्रणाली को अपना लिया है। बैगा जनजाति में बेवर खेती (स्थानान्तरित खेती) अतीत की खेती बनकर रह गयी है। यह बैगाओं के लिए पूर्णतया अस्तित्वहीन हो गई है। मध्य प्रदेश के किसी भी बैगा गांवों में इस प्रकारकी खेती देखने को नहीं मिलती। यह सत्य है कि किसी समय विशेष में बैगाजनों में इस प्रकार की खेती का प्रचलन अवश्य रहा है जिसके पीछे वहां की भौगोलिक परिस्थितयां व अन्य कारक उत्तरदायी रहे है।

शोधकर्ता ने जिन गांवों का सर्वेक्षण किया उससे ज्ञात होता हैं कि यहां पर प्रांरम्भ में हल-बैलों से खेती नहीं की जा सकती थी। यहां की भूमि में पत्थर व जंगल इतनी मात्रा में थे कि हल चलाना सम्भव नहीं था। दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि यहां कि जमीन समतल न होकर घाटियों व पहाड़ों की ढलानों पर हैं जहां अभी भी हल चलाने में बडी दिक्कत आती है। बैगाजनों के पास जो भी वर्तमान में खेत है, वे बेवर खेती के फलस्वरूप ही है। स्थानान्तरित खेती में बार-बार पेंड-पौधों व झाडियों को काटने पर, वहां की जमीन बिल्कुल साफ हो गई है ओर बाद में यही बैगाजनों की स्थाई खेती बन गई।

आज भी वन-रक्षकों से ही पूछकर लकडी काटनी पड रही है। आज एक हरे-भरे पेंड को बिना वन विभाग की अनुमति से नहीं काटा जा सकता। वर्तमान समय में बेवर खेती की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यदि बैगाजनों को पेंड काटने की अनुमति दे दी जाये, तो देखते ही देखते सारे जंगल उजड़ जाएंगे। आज बैगाजन अपने खेतों को चौंडा करने

के लिए उसके आस-पास लगे हुए पेंड पौधों को धीरे-धीरे, चोरी छिपे काटते जा रहे है और अपने खेत की हद बढ़ाते जा रहे है।

धार्मिक मान्यता भी बैगाजनों में बेवर खेती के लिए काफी हद तक उत्तरदायी रही है। बैगाजन धरती को मां के समान मानने के कारण उस पर हल से खेती करना पाप समझते थे। लेकिन वर्तमान में आर्थिक लालसा के कारण बैगाजनों के लिए यह मान्यता कोई महत्व नहीं रखती। आज सभी गांवों के बैगाजन हल-बैलों से खेती करते है, जिससे यह धार्मिक मान्यता स्वतः ही खत्म हो गई है। इनके क्षेत्र में जाने से पता चलता है कि प्रारम्भ में केवल कुल्हाडी ही खेती के लिए उपयुक्त थी। अतः बैगाजनों को कुल्हाडी कृषि से हलतक आने में कठोर परिश्रम करना पडा है।

तालिका संख्या 4.4.1

बैगा जनजाति में खेती संबंधी विवरण

क्र0	खेती(हेक्टेयर में)	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	एक भी नहीं	36	12.0
2.	1 हेक्टेयर	09	03.0
3.	2 हेक्टेयर	39	13.0
4.	$2^{1}/_{2}$ हेक्टेयर	102	34.0
5.	3 हेक्टेयर	45	15.0
6.	4 हेक्टेयर	36	12.0
7.	5 हेक्टेयर	30	10.0
8.	5 हेक्टेयर से अधिक	03	01.0
	योग	300	100.0

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित गांवों के बैगाजनों के पास कितनी खेती है। कुल 300 उत्तरदाताओं में से 36 (12.00 प्रतिशत) परिवारों के पास बिल्कुल भी भूमि नहीं है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि ये बैगा परिवार शिकार व वनोपज के द्वारा ही अपनी जीविका चलाते है या उन पर निर्भर है वरन् ये परिवार दूसरी जातियों, जनजातियों और अपनी ही जाती के लोगों से खेती बटाई (अधिया) पर लेकर खेती करते है। जिन बैगा परिवारों के पास खेती नहीं है वे अधिकांश पचगांव रैयत, पिपरिया और कुछ जल्दा, बौना गांव के बैगाजन है। इसीलिए ये परिवार खेती न होते हुए भी गाय-बैल आदि जानवर पालते है क्योंकि खेती करने के लिए बैलों की आवश्यकता तो पड़ती ही है और जानवरों के लिए चारा भी इन बटाई (अधिया) वाले खेती से मिल जाती है। पचगांव रैयत के बैगाजन अपने पास के गांव के लोगों गोंड, अहीर, ठाकुर आदि के खेतों को अधिया पर लेते है जबकि पिपरिया, जल्दा और बौना गांव के लोग पनिका और अपने सजातीय लोगों के खेत बटाई पर लेते है।

ऐसे उत्तरदाता जिनके पास एक हेक्टेयर खेती है, उनकी 9 (3.00 प्रतिशत) है। ये सभी उत्तरदाता पचगांव रैयत और पिपरिया के ही है क्योंकि वनग्रामों मे जो भूमि वनविभाग द्वारा बैगाजनों को दी जाती है वह एक हेक्टेयर से ऊपर होती है और पचगांव रैयत व पिपरिया राजस्व ग्राम है ऐसे उत्तरदाता दूसरे की खेती बटाई (अधिया) पर लेते है। कुल उत्तरदाताओं में से ऐसे उत्तरदाता या परिवार जिनके पास दो हेक्टेयर खेती है, वे पचगांव रैयत और पिपरिया गांव के हैं और इनकी संख्या 39 (13.00 प्रतिशत) है। ऐसे बैगाजन भी दूसरे की खेती अधिया पर लेकर अपनी जीविका चलाते है।

कुल उत्तरदाताओं में से ऐसे परिवार जिनके पास $2^1/_2$ हेक्टेयर खेती है, उनकी संख्या 102 (34.00 प्रतिशत) है और ये सभी जल्दा और बौना गांव के है। वनग्राम वन विभाग के नियन्त्रण में रहते है और वन विभाग द्वारा ही इनको भूमि दी जाती है। कहा तो ऐसा जाता है कि जितने भी वनग्राम है वह सब वनविभाग द्वारा ही बसाये गए है क्योंकि लकडी की कुटाई, ढुलाई, तुडाई आदि मे काफी मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता पडती थी और यह

कार्य अंग्रेजी :ासनकाल में ही किया गया था। अंग्रेजी शासनकाल में ही अंग्रेजों ने कई जगह घनघोर जंगलों में रेस्ट हाउस भी बनवाए, जहां वे समय-समय पर रूकते थें। चांडा का रेस्ट हाउस इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसी प्रकार कई वनग्रामों क पास रेस्ट हाऊस बने हुए है। वन विभाग वनग्राम के बैगाजनों को अस्थाई पट्टा ही देते है और वे जब चाहे इनको भूमि से बेदखल कर सकते है। किस बैगाजन के पास कितनी भूमि है, इसकी पूरी लिखित जानकारी वनरक्षक रखता है। वनविभाग वनग्राम के बैगाजनों को कम से कम $2^1/_2$ हेक्टेयर और अधिक से अधिक 5 हेक्टेयर भूमि ही देता है।यह भूमि 5 साल के लिए अस्थाई पट्टे के रू‌प में दी जाती है और 10 या 15 साल् बाद उसका नवीनीकरण किया जाता है। किन बैगाजनों को $2^1/_2$ हेक्टेयर और किन बैगाजनों को 5 हेक्टेयर भूमि देनी है, इसका निर्धारण वनविभाग प्रत्येक परिवार मे स्त्री-पुरूष की संख्या, लडके, लडकियों की संख्या, गाय-बैलों, भैसों की संख्या, घोडा-घोडी की संख्या, सुअरों की संख्या, मुर्गियों की संख्या आदि के आधार पर करता है।

ऐसा नहीं है कि वनग्राम के सभी बैगाजनों के पास भूमि है, वरन् ये भी भूमिहीन होते है। वनविभाग द्वारा पट्टे 10 या 15 साल में ही किए जाते है और वनों की तेजी से घटती हुई संख्या के कारण यह जरूरी नहीं है कि सभी को पट्टे मिल ही जाएं। शोधकर्ता ने दो वनग्रामों में पाया कि यहां ऐसे परिवार ज्यादा हैं जिनके पास भूमि नहीं है, परन्तुं इनके पास भूमि है लेकिन वह भूमि इनके पास लिखित अस्थायी पट्टे के रूप में नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि किसी बैगा परिवार को वनविभाग ने 5 हेक्टेयर भूमि दी है और यह भूमि उस घर के मुखिया के नाम लिखित अस्थाई पट्टे के रूप में होती है। यदि इस घर के मुखिया के 4 लडके हैं और चारों शादी के बाद अलग हो जाते है तो घर का मुखिया सबको एक-एक हेक्टेयर भूमि अपने हिसाब से दे देता है। लेकिन यह भूमि लिखित अस्थायी पट्टे के रूप में नहीं वरन् मौखिक रूप में ही होती है और वन रक्षक या कर्मचारी को इससे कोई लेना-देना नहीं होता। अतः ऐसे नव निर्मित परिवार अपने आपको भूमिहीन ही समझते है क्योंकि इनके पास लिखित अस्थायी पट्टा नहीं है। एकल

परिवार की प्रधानता के कारण ऐसे परिवारों की संख्या गांव में सबसे ज्यादा है और ऐसे परिवार जिनके पास लिखित अस्थायी पट्टा नहीं है 'ठलुआ परिवार' कहलाते है।

ऐसे परिवार जिनके पास 3 हेक्टेयर भूमि है उनकी संख्या 45 (15.00 प्रतिशत) है जबकि ऐसे परिवार जिनके पास 4 हेक्टेयर भूमि है उनकी संख्या 36 (12.00 प्रतिशत) है। ये सभी बैगा परिवार राजस्व ग्राम पचगांव रैयत और पिपरिया के है। ऐसे परिवार जिनके पास 5 हेक्टेयर भूमि है उनकी संख्या 30 (10.00 प्रतिशत) है। ये परिवार जल्दा, बौना और पिपरिया गांव के है जबकि पचगांव रैयत में ऐसा कोई परिवार नहीं मिला जिसक पास पांच हेक्टेयर भूमि हो। ऐसे परिवार जिनके पास पांच हेक्टेयर से अधिक भूमि है, बहुत कम है, अर्थात् उनकी संख्या सिर्फ 3 (1.00 प्रतिशत) है। ये तीनों परिवार पिपरिया गांव के है।

तालिका संख्या 4.4.2

खेती के श्रोत संबंधी विवरण

क्र0	श्रोत	परिवार	प्रतिशत
1.	पूर्वजों से	84	31.82
2.	सरकार द्वारा	150	56.82
3.	जंगलों से काटकर स्वयं बनाया	24	09.09
4.	अन्य जातियों/जनजातियों से खरीदा	6	02.27
	योग	264	100.00

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि कुल 300 उत्तरदाताओं में 264 के पास खेती है, उनको यह खेती कहाँ से प्राप्त हुई है। 84 (31.82 प्रतिशत) परिवारों का कहना है कि उनके पास जो भूमि है वह उनको अपने पूर्वजों से मिली है। 150 (56.82 प्रतिशत) परिवारों का कहना है कि उनके पास जो भूमि है वह सरकार द्वारा दी गई हैं। ऐसे उत्तरदाताओं में वनग्राम और राजस्व ग्राम दोनों के बैगाजन सम्मिलित है। वनग्राम के बैगाजनों को सरकार द्वारा (वन विभाग) जो भूमि मिली है वह अस्थायी पट्टे के

रूप में है जबकि राजस्व ग्राम के बैगाजनों को जो भूमि सरकार द्वारा दी गई है, वह स्थायी पट्टे के रूप में है। 24 (9.09 प्रतिशत) परिवारों या उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने जंगलों को काटकर अपनी भूमि स्वयं बनाई हैं। लेकिन यह कार्य इन्होंने नहीं बल्कि इनके बाप-दादाओं ने किया था और बाद में वन विभाग ने इसी भूमि पर इनको अस्थायी पट्टा कर दिया। ऐसे उत्तरदाता जल्दा और बौना गांव के है। 6 (2.27) उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके पास जो भूमि है वह उन्होंने अन्य जातियों/जनजातियों से खरीदा है और ये उत्तरदाता पचगांव रैयत व पिपरिया के है। इनके गांव के पास गोंड, पनिका, अहीर, ठाकुर, कोल समुदाय के लोग रहते हैं और इन्हीं से बैगाजनों ने जमीन खरीदी है।

तालिका संख्या 4.4.3

अधिया पर खेती संबंधी विवरण

क्र0	गांव का नाम	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	पचगांव रैयत	55	42.31
2.	पिपरिया	28	21.54
3.	बौना	25	19.23
4.	जल्दा	22	16.92
	योग	**130**	**100.00**

उपरोक्त सारणी के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित गांवों के कितने बैगाजन अधिया (बटाई) पर खेती करते है। ऐसे उत्तरदाताओं में उन व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया है जिनके पास एक भी भूमि नहीं है क्योंकि यही उत्तरदाता सबसे ज्यादा अधिया पर खेती लेते है जिसका कारण इनके पास भूमि का न होना है। इसके साथ-साथ ऐसे व्यक्ति भी अधिया पर खेती करते है जिनके पास भूमि बहुत कम है। इस प्रकार कुंल 300 परिवारों या उत्तरदाताओं मे से 130 व्यक्ति अपने जीविकापार्जन के लिए अधिया पर खेती करते है।

पचगांव के 55 (42.31 प्रतिशत) परिवार अधिया पर खेती करते है। अधिया का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति खेती नहीं करता वह व्यक्ति दूसरों को अपनी खेती एक साल के लिए आधे पर दे देता है, और उसमें उत्पन्न होने वाले अनाज को आधा-आधा बाट लेते है। अर्थात् आधी फसल भूमि का मालिक और आधी फसल उसमें खेती करने वाला किसान ले लेता है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते है जिनके पास भूमि अधिक होती है, कुछ भूमि दूसरों को अधिया पर दे देते है। ये जातियां खेती के मामले में बैगाजनों से बहुत आगे है और अपने खेतों में खाने वाली फसलों के अतिरिक्त शेष खेतों में नकदी फसलें जैसे मसूर, चना, सरसों, अरहर आदि बोते है। अतः जब से पचगांव रैयत के बैगाजनों ने इन जातियों की खेती अधिया पर लेना शुरू किया तो इन लोगों ने नकदी फसलें ही बोने को कहा जिससे बैगाजनों को भी लाभ हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बैगाजनों ने भी अपने खेतों में इन फसलों को बोने लगे और अपनी परम्परागत फसलों (कोदो, कुटकी) की खेती कम करने लगें।

पिपरिया गांव के 28 (21.54 प्रतिशत) परिवार अधिया पर खेती लेते है। यहां के बैगाजन गोंड, पनिका और अपने सजातीय लोगों की खेती अधिया पर लेते है। यहां के बैगाजन अभी उतनी मात्रा में नकदी फसलें नहीं बोते जितने की पचगांव रैयत के बैगाजन बोते है। ये लोग नकदी फसल के रूप में अरहर, सरसों की फसलें ही बोते है, जबकि कुछ मात्रा में मक्का भी बेच लेते है।

बौना गांव के 25 (19.23 प्रतिशत) परिवार अधिया पर खेती करते हैं जबकि जल्दा के 22 (16.92 प्रतिशत) परिवार अधिया पर खेती लेते है। यहां के बैगाजन कुछ पनिकाओं से और बाकी अपने सजातियां लोगों की खेती अधिया पर लेते है। अधिया पद्धति को उत्तर प्रदेश में (बटाई) के नाम से जाना जाता है। जल्दा और बौना गांव के लोग भी अभी उतनी मात्रा में नकदी फसलें नहीं बोते जितना कि पचगांव रैयत के बैगाजन बोते है।

अधिया पर खेती देने वाला व्यक्ति खेत में बोने के लिए बीज भी देता है और किस खेत में कौन सी फसल बोनी है, यह उसी पर निर्भर करता है। वैसे जो लोग

अपनी खेती अधिया पर देते है वह नकदी फसल ही बोने की सलाह देते है क्योकि इससे दोनो का फायदा रहता है।

तालिका संख्या 4.4.4

खेती करने के साधन संबंधी विवरण

क्र0	साधन	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1.	परम्परागत साधन	272	90.67
2.	आधुनिक साधन	3	1.00
3.	परम्परागत + आधुनिक साधन	25	8.33
	योग	**300**	**100.00**

उपरोक्त सारणी के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया है कि सर्वेक्षित गांव के बैगाजन खेती किससे करते है। इस सारणी में ऐसे परिवारों को भी शामिल किया गया है जिनके पास एक भी भूमि नहीं है परन्तु यह भूमिहीन परिवार दूसरी जातियों/जनजातियों से खेती अधिया पर लेकर खेती करते है, इसीलिए ऐसे परिवारों को :ामिल करना अनिवार्यता बन जाता है क्योंकि इसके पास भी कृशि उपकरण है। वैसे भूमियुक्त परिवारों की संख्या 264 है जबकि भूमिहीन परिवारों की संख्या 36 है।

ऐसे परिवार जो अपने परम्परागत साधनों अर्थात हल-बैलों से खेती करते है उनकी संख्या 272 (90.67 प्रतिशत) है। इनके कृशि उपकरण अन्य कृषक समाजों की तरह ही है। परम्परागत साधनों से खेती करने वाले परिवार सभी सर्वेक्षित गांव-पचगांव, रैयत, पिपरिया एवं जल्दा, बौना में है। ऐसे परिवार जो अपनी खेती ट्रैक्टर से जोतते-बोते है, उनकी संख्या 3 (1 प्रतिशत) है। यह तीन परिवार जल्दा के है। यह तीनों बैगाजन जिनके पास ट्रैक्टर

है, प्राथमिक पाठशाला में अध्यापक है। ऐसे परिवार जो अपनी खेती परम्परागत एवं आधुनिक दोनों के प्रकार के साधन से करते है उनकी संख्या 25 (8.33 प्रतिशत) है। इन परिवारों के पास ट्रैक्टर नहीं है वरन् यह लोग दूसरे के ट्रैक्टर से पैसा देकर अपनी खेती जुतवाते है। यह परिवार जो कभी-कभी अपनी खेती ट्रैक्टर से जुतवा लेते है, जल्दा एवं बौना गांव के बैगाजन ही है। ट्रैक्टर से जुतवाई 200 रु0 प्रति घण्टे ली जाती है। अतः यह परिवार हमेशा नहीं, वरन् कभी-कभी या कुछ खेती ही ट्रैक्टर से जुतवाते है।

बैगाजनों की कृषि उपकरणों में एक कृषि उपकरण अन्य स्थानीय कृशक जातियों से भिन्नता लिए हुए हैं। इस कृशि उपकरण को ''दतरी'' के नाम से जाना जाता हैं। यह कृषि उपकरण विशेष रूप से ही वनग्रामों में ही देखने को मिलती है। वनग्रामों में लकडी की अधिकता के कारण यहां के बैगाजन अरहर के तनों को नीचे से नहीं काटते वरन् ऊपर की फली-फली भी काटते है और बाकी तना खेत में ही लगा रहता है। बाद में ये लोग तने कजरा के रूप लेते है और दूसरी फसल बोने के लिए इनको साफ करना आव-यक है।

अतः इस कचरे को दतरी के द्वारा आसानी से हटा दिया जाता है। वनग्रामों के खेतों में जंगली पेंड-पौधे, झाडियां भी बहुत जल्दी उगती है और सूखने के बाद खेत कचरे से पट जाता है। अतः उन्हें दतरी के द्वारा ही हटाया जाता है। सरसों को भी ये लोग नीचे से नहीं काटते जिससे इनके तने भी खेत में लगे रहते है, जिसे बाद में दतरी के द्वारा ही हटाया जाता है। दतरी गांव में कुछ लोगों के यहां ही होती है बाकी लोग मांग के ही काम चला लेते है।

दतरी में लोहे का कोई समान नहीं होता। यह पूर्णतः काष्ठ की बनी होती है। इसमें एक मोटा लट्ठा रहता है जिसमें कई नुकीले लकड़ी के डंडे घुसे रहते है।

ग्रामीण अंचल का व्यक्ति अरहर, सरसों आदि के तनों को नीचे से काटता है क्योंकि अरहर के तनों से डलिया भी बनाई जाती है जिसे ग्रामीण लोग अन्य जातियों से बनवाते है। इसके अतिरिक्त ग्रामीणजन अरहर के तनों से फसल की मढ़ाई (गहाई) के लिए ''टेटवा'' या ''टेट्टा'' भी बनाते है जिससे फसल बहुत जल्दी टूटती हैं। इसे बैलों से खींचा

जाता है। इसके साथ-साथ अरहर, सरसों आदि के तनों को ग्रामीण क्षेत्रों में घर बनाने व जलाने के काम में भी लाया जाता है। बैगाजनों को लकडी की अधिकता के कारण घरों के निर्माण में अरहर के तनों की आवश्यकता नहीं पडती। ये अपने घर की छत लकडी से ही बनाते है। लकडी से ही भोजन बनाते है। खेती कम होने के कारण ये लोग फसल की मढ़ाई के लिए ''टेटवा'' भी नहीं बनाते वरन् ''खुरदांय'' के द्वारा ही फसल की मढ़ाई करते है।

बैगाजन सबसे पहले अपने खेती को हल से जोतते है जबकि ग्रामीण अंचल में सबसे पहले खेत को बख्खर से जोता जाता है। इसका कारण यह है कि यहां के खेतों में बरसात के बाद इतना चारा उग जाता है कि उसको बख्खर से नहीं जोता जा सकता। इसके साथ-साथ यहां की अधिकांश भूमि पत्थरयुक्त है जो चारा के साथ जमीन में बैठ जाते है। अतः पहलें हल से जोतकर जमीन को थोडा हल्का कर दिया जाता है फिर उसमें बख्खर चलाया जाता है।

सबसे गंभीर और आश्चर्यजनक बात यह है कि कुछ बैगाजन गायों से खेती करते है। इसका कारण इनमें गाय के प्रति श्रृद्धा भक्ति का अभव व बैल खरीद पाने की असमर्थता हैं। वनग्राम जल्दा और बौना तथा राजस्व ग्राम पिपरिया में मैने कई बैगाजनों को गायों से खेती करते पाया। कुछ लोगों का कहना था कि जो गाय बांझ हैं, उनको हल में जोंतते हैं। मैने कई बैगाजनों को देखा कि कुछ लोग एक गाय व एक बैल को हल में फांदे थे, जबकि कुछ लोग दोनों तरफ गायों को फांदे थे। मैने जब पूछा कि क्या गाय बैलों की अपेक्षा धीमी चलती है, तो उन्होंने बताया कि गाय ज्यादा तेज चलती है। वैसे गायों की खेतों में दशा देखकर, गाय के प्रति श्रृद्धा भाव रखने वाला किसी भी हिन्दू व्यक्ति का हृदय द्रवित हो जाएगा।

सबसे मुख्य बात यह है कि जल्दा-बौना के जिन बैगाजनों के पास सिंचित भूमि है वे लोग भी सिंचाई के साधनों का उपयोग नही करते वरन् पूर्णतः प्रकृति पर ही निर्भर है। धान तो वर्षा के पानी में ही हो जाता है और दूसरी सिंचाई वाली फसल गेंहू की खेती ये लोग करते ही नहीं है। कोदों, कुटकी में सिंचाई की जरूरत ही नहीं पडती। दूसरी बात यह है कि कुछ बैगाजनों के खेत सिंचाई साधनों से इतने ऊंचे है कि बिना पम्प के पानी कि

वहां पहुंच ही नहीं सकता और इन गांवों के बैगाजन अभी खेती के बारे में इतना जागरूक नहीं हुए कि वे पम्प आदि खरीदने की बात सोच सकें। इसके साथ-साथ गरीबी भी इनकी प्रगति में बाधक है।

तालिका संख्या 4.4.5

प्रमुख फसलों का विवरण

क्र0	फसलें	गांवों के नाम			
		पचगांव रैयत	पिपरिया गांव	बौना	जल्दा
1.	धान(चावल)	□	□	□	□
2.	कोदा	□	□	□	□
3.	कुटकी	□	□	□	□
4.	मक्का	□	□	□	□
5.	अरहर(रहर)	□	□	□	□
6.	रमतिला	□	□	□	□
7.	सरसों	□	□	□	□
8.	गेंहूँ	□	X	×	×
9.	चना	□	X	×	×
10.	मसूर	□	x	×	×

उपरोक्त तालिका के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि सर्वेक्षित गांवों के बैगाजन अपने खेतों से कौन-कौन सी प्रमुख फसलें लेते है। सर्वेक्षित गांव के सभी बैगाजन धान की फसल लेते है और यह फसल पूर्णतः पानी पर निर्भर है। अतः ये

बैगाजन जिस वर्ष वर्षा अच्छी होती है उसी वर्ष धान की खेती करते है। हालांकि जिन गावों में थोडी-बहुत सिंचाई की सुविधा है, उन गांवों के बैगाजन भी इसका लाभ नहीं लेते और प्राकृतिक वर्शा पर ही निर्भर रहते है। धान की मढ़ाई (गहाई) के बाद उसके पैरा (पयार) को कुछ बैगाजन सर्दियों में जानवरों को खिलाने के लिए एकत्रित कर लेते है जबकि कुछ बैगाजन उसको खेत में ही जला देते हैं। जो लोग पैरा एक़त्रित करते हैं उनमें कुछ लोग खेत में व कुछ लोग घर के बाहर लकडी का मंडा बनाकर उसमें लाद देते है।

कोदो और कुटकी बैगाजनों की प्रमुख और परम्परागत फसलें है। कुछ समय पहले जब बैगाओं का आर्थिक जीवन इतना कठिन नहीं था तो सम्पूर्ण बैगाजन कोदो और कुटकी की फसल ही बोते थे क्योंकि उस समय की व्यवस्था अर्थ प्रधान न होकर भरण-पोषण की व्यवस्था थी। परन्तु ज्यों-ज्यों ये विकास के पथ पर आगे बढे तो इनका जीवन भी अर्थ प्रधान होता गया और आर्थिक उपार्जन के लिए इन्होंने धीरे-धीरे कोदों कुटकी के साथ-साथ खेत के कुछ भागों में बेंचने वाली नकदी फसलें भी बोना प्रारम्भ कर दिया। इसी का परिणाम है कि आज सभी गांव के बैगाजन नगदी फसलों की ओर ज्यादा ध्यान दे रहे है।

जो बैगाजन अन्य कृषक जातियों के सम्पर्क में आए, उनमें कृषि करने की पद्धति अन्य बैगाजनों की अपेक्षा काफी विकसित है। जैसे पचगांव रैयत के बैगाजनों का सम्पर्क गोंड, अहीर, ठाकुर आदि जातियों से निरन्तर बना रहा है और इसीलिए यहां के बैगाजन अब प्रमुखतः इन्हीं की फसलों को बोने लगे हैं और अपनी परम्परागत फसलों की खेती नाममात्र ही करते है। दूसरी बात यह है कि इस गांव के बैगाजन इन जातियों की खेती अधिया पर लेते है और ये जातियां प्रमुख नकदी फसलें बोने के लिए ही कहती है। अतः इसका प्रभाव भी बैगाजनों पर पडा है जिससे वे भी नकदी फसलें अपने खेतों पर बोने लगे है। पिपरिया, बौना, जल्दा गांव के बैगाजनों का सम्पर्क कृषक जातियों से कम है। अतः यहां के बैगाजन पचगांव रैयत की अपेक्षा अभी भी कोदो, कुटकी कुछ ज्यादा बोते है। कोदो, कुटकी बैगाजन खाने के लिए ही बोते हैं, बेंचने के लिए नही।

मक्का बैगाओं की प्रमुख फसलों में से है और सर्वेक्षित गांव के लगभग सभी बैगाजन मक्का की फसल बोते है। सरकार भी इनको कोदो, कुटकी से छुटकारा दिलाने के लिए मक्का बोने को प्रेरित करती रही है। बैगाजन काफी बडी मात्रा में मक्का की फ़सल बोते है। मक्का की फसल पकने के बाद, उसी खेत में बैगाजन बाद में सरसों की फसल बोते है। मक्का को खाने के साथ-साथ बेंचने के काम भी लाया जाता है। मक्का का बैगाजन पेज भी बनाते है।

अगस्त-सितम्बर के महीने में बैगाजनों का प्रमुख भोजन मक्का ही होता है। ये लोग मक्का क भुट्टे को भूनकर बडे चाव से खाते है। इस मौसम में प्रत्येक बैगाजन के यहां मक्का का ढेर देखा जा सकता है। वास्तव में कच्चा मक्का खाने में बडा स्वादिश्ट होता है। अगले वर्ष की फसल के लिए ये लोग मक्का के भुट्टों को घर के बाहर एक लट्ठे में टांग देते है। ऐसा ये लोग इसलिए करते है क्योंकि नीचे रखने पर चूहा इसे बरबाद कर देता है।

बैगाजन मक्का के तनो को काटकर खेत पर ही लगा देते है। ये लोग कटिया मशीन से काटकर इसे जानवरों को नहीं खिलाते। जानवर खेत पर ही इसे खाते रहते है और बाद में जुताई के समय बैगाजन इसमें आग लगा देते है। मक्का के तनों की कटाई में आस-पड़ोस की औरतें भी सहायता करती है। इनको मजदूरी नहीं दी जाती वरन् मक्का तुड़ाई के समय जो मक्का के भुट्टे छूट जाते है, वही इनकी मजदूरी होती है। इसी के लालच में पड़ोस की स्त्रियां मक्का कटाई में भाग लेती है। जो छूटे हुए मक्का के भुट्टे इन स्त्रियों को मिलते हैं, उसे ये लोग "सीला" कहती है।

अरहर जिसे बैगाजन अपनी भाषा में "रहर" कहते है, इनकी प्रमुख नकदी फसलों में से एक है। सर्वेक्षित गांव के सभी बैगाजन अरहर की फसल बोते है। वास्तव में यहां की खेती अरहर के लिए ही सबसे उपयुक्त है। कई बैगाजनों के खेत ऐसी जगह है जहां हल-बख्खर नहीं चलाया जा सकता। बैगाजन जब बेवर खेती (झूम खेती) करते थे, तो रहर की फसल भी बोते थे। अरहर की खेती उबड़-खाबड, पेडों के ठूठों के बीच जहां

हल-बख्खर चलाने की कल्पना नहीं की जा सकती, वहां भी बैगाजन इसकी खेती आसानी से करते है। अरहर के बीजों को बोने के बजाय बैगाजन अरहर के दानों को खन्ता से खोद-खोद कर गाड देते है। यहां अरहर की फसल बहुत अच्छी होती है। जल्दा-बौना के वनरक्षक ने शोधकर्ता को बताया कि सन् 2000 में यहां अरहर इतनी पैदा हुई कि गाडासरई (एक कस्बा) के व्यापारियों ने यहां गांव में ही महीने भर अपने डेरे डाले रहे और सैकड़ों कुन्तल अरहर की खरीद की।

बैगाजन अरहर की फसल को नीचे से नहीं काटते वरन् ऊपर से ही इसकी फली-फली ही काटते हैं और शेष भाग खेत में ही लगा रहता है जिसे जानवर आदि खाते रहते है। बाद में इनकी डंठलों को साफ करने के लिए दतरी का प्रयोग किया जाता है। फलियों को खलिहान या घर में लाकर कूट लिया जाता है। इसके विपरीत ग्रामीण अंचलों के किसान अरहर की फसल को नीचे से ही काटते है और इसकी फलियों को निकालने के बाद शेष तनों को घर की छत व डलिया बनाने के काम में लाते है। खेती के फसलों के साथ-साथ बैगाजनों के खानपान में भी अन्तर आता जा रहा है। अब बैगाजन कोदो, कुटकी के स्थान पर दाल-भात (चावल) को अधिक महत्व देते है, क्योंकि इनकी पैदावार अच्छी होती है। मेंहमानों व बाहरी व्यक्तियों को दाल-भात ही प्रमुखतः खिलाया जाता है।

सर्वेक्षित गांवों के सभी बैगाजन थोडी-बहुत मात्रा में रमतिला की फसल भी लेते है। रमतिला (जगनी) का पेड़ सरसों की तरह ही होता है और इससे भी तेल निकाला जाता है। रमतिला को आवश्यकतानुसार बैगाजन बेंच भी लेते है। रमतिला का तेल सरसों की ही तरह खाने में लाया जाता है।

सर्वेक्षित गांवों के सभी बैगाजन सरसों की फसल बोते है। यह बैगाओं की नगदी फसलों में से एक है। जल्दा, बौना और पिपरिया गांव के बैगाजन मक्का कटाई के बाद उन्हीं खेतों में सरसों की फसल बोते है और यहां के लोग सरसों के साथ कोई दूसरी फसल नहीं बोते अर्थात ये लोग एक साथ दो फसलें नहीं बोतें। जबकि पचगांव रैयत के बैगाजन सरसों को अन्य फसलों के साथ भी बोते है अर्थात यहां के बैगाजन मिश्रित खेती

(Mixed Farming) करने लगे हैं और यह इनके आस-पास रहने वाली कषक जातियों का इन पर प्रभाव है। पचगांव रैयत के बैगाजन गेहूँ, चना, मसूर आदि के साथ सरसों की फसल बोते है जो कृषक जातियों की विशेषता है।

फसलों वाली तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि जल्दा, बौना और पिपरिया गांव के बैगाजन गेहूँ, चना, मसूर आदि की फसलें नहीं बोते जबकि पचगांव रैयत के बैगाजन ये सभी तीनों फसलें अपने खेतों में बोने लगे है। इसका कारण यह है कि पचगांव रैयत के बैगाजनों के खेत अन्य कृषक जातियों (गोंड, यादव, ठाकुर) से जुडे हुए है और यहां के अधिकांश बैगाजन इन जातियों की खेती अधिया पर लेते है। अतः यहां के बैगाजनों ने इन जातियों के खेती करने के गुणों को पूरी तरह से आत्मसात कर लिया है। इसके विपरीत जल्दा, बौना और पिपरिया गांव के बैगाजनों का संपर्क अन्य जातियों से कम रहा हैं। इसका कारण इन गांवों का दूरी पर बसा होना है। जल्दा बौना और पिपरिया गांव के बैगाजन अपनी सभी फसलों को छीटकर ही बोते है जबकि पचगांव रैयत के बैंगाजन गेंहू मसूर व चना की फसलों को बोने में बऊका (बोने वाला लकडी का उपकरण) का प्रयोग भी करने लगे है। स्पष्ट है कि बैगा जनजांतिके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन को आसानी से देखा जा सकता है।

4.5 बैगाओं के धान्य मापक

बैगाजनों के अपने धान्य मापक होते है जिनके द्वारा ये नापतौल करते है। इन्ही मापको के द्वारा ये विभिन्न जनजातियों और जातियों को अन्न देते और लेते है। ये गांवो में इन्ही के द्वारा अनाज नापते है और तराजू का प्रयोग न के बराबर करते है। बौना के कमलाप्रसाद सेठ (पनिका) ने बैगाजनों में प्रचलित मापकों में कौन-कौन से अन्न कितनी मात्रा में आ सकते है का वर्णन शोधकर्ता को निम्नानुसार दिया है :-

तालिका संख्या 4.5.1

धान्य मापक पात्र

क्र0	अन्न मापक	राई	रमतिला	कोदो	कुटकी	धान	गेंहू	मक्का	अरहर
1	एक बरिहा	1/2 कि. ग्रा.	400 ग्राम	400ग्रा0	1/2 कि. ग्रा.	400 ग्रा0	1/2 कि.ग्रा.	1/2 कि.ग्रा.	1/2 कि.ग्रा.
2	एक कुरइया	2 कि.ग्रा0	1.750 ग्रा0	1 कि.ग्रा.	2 कि.ग्रा.	1.750 ग्रा0	2 1/2 कि.ग्रा.	2 कि. ग्रा.	2 1/2 कि.ग्रा
3	एक कुडो	4 कि.ग्रा.	3500 ग्रा	31/2 किग्रा	4 कि.ग्रा.	5 कि. ग्रा.	5 कि.ग्रा	4 कि. ग्रा.	5 कि. ग्रा.

आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तित प्रतिमान के अन्तर्गत स्थायी खेती बैगाजनो का प्रमुख आधार बन गई है। सर्वेक्षित गांवो के सभी बैगाजन स्थायी खेती करते है। जिन बैगाजनों के पास खेती नाममात्र है, व जो बिल्कुल भूमिहीन हैं, वे अन्य जातियों व सजातीय लोगो से खेती अधिया पर लेकर उस पर खेती करते है।

पंचगांव रैयत एक बैगा बाहुल्य गांव है। यहां के बैगाजन अपनी खेती तो करते ही है, साथ ही साथ अन्य जातियों की खेती भी अधिया पर लेते है। सबसे मुख्य बात यह है कि इस गांव के बैगाजन अपनी परम्परागत फसलों (कोदो, कुटकी) की जगह अरहर, मसूर, चना, सरसों व गेहूं आदि की फसले बोने लगे है जिससे इनकी आर्थिक स्तर में काफी सुधार हुआ है। यहां के बैगाजन अपने-अपने खेत में खलिहान डालने की जगह एक ही स्थान पर खलिहान डालते है, कृषक जातियों की विशेषता को दर्शाता है। यहां के बैगाजन मढाई के बाद विभिन्न फसलों का भूसा भी सालभर के लिए पशुओं को खिलाने के लिए संकलित कर लेते है। यहां के अधिकांश बैगाजन अपने खेतो में नगदी फसलें ही बोते है। यहां के बैगाजनो पर गोड व अन्य जातियों का गहरा प्रभाव पडा है जिसका प्रभाव इनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा सकता है।

जल्दा, बौना एवं पिपरियां गांव के बैगाजन अभी उतनी मात्रा में नगदी फसलें नही बो रहें है। जल्दा, बोना एवं पिपरिया गांव के बैगाजन अपने-अपने खेतों मे ही खलिहान बनाते है और इनके जितने खेत होते है, उतने ही खलिहान बनाते है। कहने का

आशय यह है कि यदि किसी बैगा के खेत थोडी- थोडी दूरी पर है तो वह एक जगह फसल को इकट्ठा करने की अपेक्षा प्रत्येक खेत पर ही खलिहान बना लेता है। इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि यहां की उबड-खाडब व बडे-बडे पत्थरों के कारण बैलगाडी नही चल सकती और फसल को कांवड से ही ढोया जाता है। अतः यहां के बैगाजन एक जगह फसल एकत्र करने की अपेक्षा प्रत्येक खेत पर ही फसल की मडाई करना ज्यादा पंसद करते है। दूसरा कारण इस गांवों के बैगाजन भूसा का संकलन नही करते । जानवरों को चरने के लिए जंगलो में ले जाया जाता है और यह कार्य इस गांवों में निवास करने वाले यादव बिरादरी के लोग करते है। जो यदि वजन जानवरों को चराते है, यह बैगाजन पटेल करते है। चराने के बदले फसल की मढाई के समय इनको एक निश्चित मात्रा में अनाज दिया जाता है। चारों गांवो के कुछ बैगाजन गायों से भी खेती करते है, जिसका कारण गरीबी व बैल खरीद पाने की असमर्थता है। जल्दा, बौना व पिपरिया गांवों का अभी उतनी मात्रा में अन्य आतियों से संपर्क नही हुआ है जितना कि पचगांव रैयत के बैगाजनों का हुआ है। इसी कारण यहां फसलों कृषि करने के साधन कुछ पिछडे हुए है।

अध्याय : पंचम

आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक समस्याएं

5. आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक समस्याएं

पूर्व अध्याय में आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक एवं आर्थिक संलग्नता की विवेचना की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में बैगाओं की व्यावसायिक समस्याओं का तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

आदिवासियों की प्रमुख समस्यायें निम्नवत् दृष्टिगत होती हैं :-

5.1 ऋणग्रस्तता

ऋणग्रस्तता के मूल कारणों में है, निर्धनता, भुखमरी तथा दुर्बल आर्थिक व्यवस्था। नृजातीय अध्ययनों तथा प्रमाणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि ठेकदारों तथा अन्य लोगों के द्वारा इनके क्षेत्रों में हस्तक्षेप के पूर्व ये जनजातियॉ इतनी दुर्बल, निर्धन तथा विवश नहीं थी । ये लोग आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर थे। वन सम्पदा पर इनका अधिकार था। दुर्भाग्यवश जब आर्थिक विकास की योजनाओं के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों में विकास की बयार आयी तथा इनके क्षेत्र सभी प्रकार के लोगों के लिए खोल दिये गए तो विकास का लाभ उठाने के लिए ये जनजातियॉ तैयार नहीं थी । प्रशासन के संगठित प्रयास की अनुपस्थिति में इन बाहरी तथा तथाकथित सभ्य लोगों ने इन जनजातियों की संवेदनशीलता का भरपूर लाभ उठाया । समय के साथ जनजातियॉ कठिन स्थितियों में पहुँच गयीं जिनमें आज रह रही हैं। यद्यपि ऋणगस्तता से सम्बन्धित वैज्ञानिक तरीकों से इकट्ठा किये गए ऑकड़े बहुत कम हैं फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह समस्या गम्भीर है। जनजातियों में ऋणग्रस्तता के आर्थिक पक्ष के साथ सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष भी महत्वपूर्ण हैं। ये लोग समस्त प्रणाली में प्रसन्नता या शांतिपूर्ण जीवन की आशा छोड़ चुके हैं। बहुत से क्षेत्रों में ये जनजातीय लोग ऋणग्रस्तता के कारण ऋणबन्धक होने पर विवश होते हैं तथा यह बन्धन पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। अधिकतर जनजातियों में ऋणबंधक होना इनके जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। सभी जनजातीय समुदायों की ऋणग्रस्तता के कुछ मुख्य कारण हैं:-

1. उपेक्षा तथा जहालत

2. विवाह, मृत्यु, मेलों तथ उत्सवों में अपनी क्षमता से अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति

3. कृषि के पुराने तरीकों के कारण कम उत्पादन

4. भूमि तथा वनों पर जनजातीय अधिकारों का हनन

5- बिरादरी से निष्कासित किये जाने के भय से जुर्मानों के सम्बन्ध में पंचायत के आदेशों का पालन

6- भाग्यवादी प्रवृत्ति व संकुचित विचारधारा

इन स्थितियों के कारण जनजातीय लोगों को सदैव रूपये की आवश्यकता रहती है, जिसके कारण यह लोग आसानी से साहूकारों के शोषण का शिकार हो जाते हैं। समय-समय पर लिये गए ऋण, जिनकी ब्याज दरें बहुत अधिक होती हैं मिलकर ऐसी धनराशि में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे वापस करना इनकी सामर्थ्य से परे होता है, जिसके फलस्वरूप इनकी भूमि साहूकारों द्वारा ले ली जाती है। "आर्थिक विकास के किसी भी कार्यक्रम का जनजातीय व्यवस्था पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । जब तब उन्हें साहूकारों के चंगुल से बचाने की समुचित व्यवस्था न की जाये।"।[1] कुछ क्षेत्रों में धन के अतिरिक्त वस्तुयें उधार लेने का भी प्रचलन है। यह प्रचलन विशेषतया त्रिपुरा तथा महाराष्ट्र में अधिक है। महाराष्ट्र में इस प्रथा को पलेमोड के नाम से जाना जाता है। इस प्रथा के अन्तर्गत ये लोग बुवाई के समय बीज उधार लेते हैं तथा फसल होने पर बीज की मात्रा का तिगुना या चौगुना अनाज वापस करते हैं। खाने के लिए लिया गया अनाज भी इसी प्रकार वापस किया जाता है। इस प्रकार फसल के उपज का मुख्य भाग या पूरी उपज साहूकार को मिल जाती है। इसी से मिलती-जुलती त्रिपुरा में भी प्रचलित है जिसे 'ददान' कहते हैं। लेनदार पहले से ही सारी फसल बहुत कम दरों पर क्रय कर लेता है।

5.1.1. साहूकार की भूमिका

पारम्परिक साहूकारों की कार्य पद्धति जनजातीय लोगों के लिए बहुत आसान तथा सरल है। ये साहूकार, अधिकतर इन्हीं जनजातियों के बीच ही रहते हैं। धन का

---

[1] जनजातीय विकास पर अध्ययन की एक रिपोर्ट, नई दिल्ली ।

आवश्यकता पड़ने पर जनजातीय लोगों को बहुत दूर नहीं जाना पड़ता तथा साहूकारों के द्वारा इनके लिये सदैव खुले रहते हैं। साहूकार इन्हें बिना किसी शर्त के ऋण दे देता है क्योंकि अधिकतर इनके पास गिरवी रखने या सुरक्षा के रूप में देने के लिए कुछ नहीं होता। अपनी आय तथा थोड़ी बहुत भूमि की सहायता से ऋण चुकाने का निश्चय इनके मन में होता है। साहूकार इस निश्चय को एक निधि में रूप में मान्यता देते हैं। परन्तु कहीं-कहीं इन्हें अपनी भूमि गिरवी रखनी पड़ती है। मध्य प्रदेश के कुछ जनजातीय क्षेत्रों में यह प्रथा है। औपचारिकताओं तथा कागजी कार्यवाही के नाम पर इन्हें एक सादे कागज पर या किसी मसौदे पर अंगूठा लगाना होता है, जिसे यह लोग पढ़ नहीं सकते।

राज्य सरकारों द्वारा स्थापित सहकारी ऋण समितियों की तुलना उपरोक्त ऋण प्रणाली से की जाय तो सर्वप्रथम यह बात सामने आती है कि अधिकतर समितियाँ जनजातीय बस्तियों से दूरी पर स्थित है। ऋण लेने वाले को तमाम उबाऊ औपचारिकताओं को पूरा करने के साथ-साथ गारण्टी लेने वाले को भी इन्हीं स्थितियों से गुजरना पड़ता है। ऋण के लिए प्रार्थना पत्र देने तथा ऋण मिलने में अक्सर दो महीने तक लग जाते हैं तथा भ्रष्ट अधिकारी रिश्वत भी मांगते हैं। इन सबके अतिरिक्त ये सहकारी समितियाँ केवल उत्पादक उद्देश्यों के लिए ही ऋण देती हैं जबकि निर्धन व परेशान हाल जनजातीय लोगों का जीवन-यापन के लिए उपयोग के लिए तथा विभिन्न सामाजिक रीतिरिवाजों को पूरा करने के लिए भी ऋण की आवश्यकता होती है। साहूकार किसी प्रकार की शर्त नहीं रखता या सभी उद्देश्यों के लिए ऋण दे देता है।

अधिकांश जनजातीय लोग अशिक्षित है जिसके कारण इन्हें यह पता नहीं रहता कि साहूकार के खातों में क्या प्रविष्टियाँ की गई हैं। साहूकार की इच्छानुसार ये लोग अंगूठा लगा देते हैं जिससे हमेशा के लिए इनके भाग्य का निर्णय हो जाता है, अधिकतर इस ऋण के मामले, मौखिक रूप से तय होते हैं जिनके कारण ये लोग न्यायालय में भी नहीं जा सकते । इन मामलों में भी ऋण लेने वाले ही परेशान होते हैं। जिन मामलों में लिखा-पढ़ी की गई है इन खातों में खूब बढ़ा-चढ़ा कर प्रविष्टियाँ की जाती हैं। ये लोग यदि ग्राम पंचायत का सहारा

लें तब भी कोई लाभ नहीं होता क्योंकि ग्राम पंचायत भी साहूकारों का ही पक्ष लेती हैं। विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों के अध्ययन से यह पता चलता है कि ऋणग्रस्तता के कारण बहुत से बंधुआ मजदूर बन जाते हैं तथा उनकी भूमि भी चली जाती है।

5.2 भूमि हस्तांतरण

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार जनजातीय जनसंख्या का लगभग 88 प्रतिशत भाग कृषक या कृषि मजदूर हैं। जनजातियों का अपनी भूमि से बहुत भावनात्मक लगाव रहता है। जीवन-यापन के लिये कृषि ही एक ऐसा साधन है जिस पर ये लोग सदियों से निर्भर हैं। मैदानों में रहने वालों की भांति जनजातीय लोग भी भूमि के स्वामित्व की तीव्र इच्छा रखते हैं। झूम भूस्वामी होने के और विभिन्न कारण हैं। अस्थायी कृषकों की संख्या लगातार बढ़ रही है तथा झूम का दायरा सिकुड़ रहा है तथा इसके साथ स्थायी कृषकों की भी संख्या में वृद्धि हुई है। बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की मांग में वृद्धि हुई है।

हमारे देश में प्रति व्यक्ति भूमि एक एकड़ से भी कम है। जबकि यह दर अमेरिका में 7.5 एकड़ तथा रूस में 4.5 एकड़ है। कृषि पर निर्भर प्रत्येक व्यक्ति के पास औसत रूप से 1.6 एकड़ भूमि है।[2] यह औसत विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग है।

उत्तरी क्षेत्र	1.01 एकड़
पूर्वी क्षेत्र	1.25 एकड़
दक्षिणी क्षेत्र	1.17 एकड़
पश्चिमी क्षेत्र	2.29 एकड़
मध्य क्षेत्र	2.57 एकड़
उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	2.59 एकड़

जनजातीय क्षेत्रों के भूस्वामित्व में समानता नहीं है। इन जनजातियों की भूमि अधिकतर अनउपजाऊ है। यद्यपि इन लोगों की भूमि का क्षेत्र अजनजातीय कृषकों से अधिक है

[2] जनगणना पुस्तिका (2001), नई दिल्ली ।

। परन्तु इससे इनको कोई लाभ नहीं होता। इसके कारण हैं :- अनउपजाऊ मृदा (स्वाएल) पुरानी तथा घिसी-पिटी तकनीक तथा लगातार बढ़ती ऋणग्रस्तता ।

भूमि हस्तांतरण जैसी समस्या के मूल में पहुँचने से पूर्व सामान्य स्थितियों का विवरण करना अनुचित न होगा। संचार व्यवस्था में विस्तार होने के कारण समस्त जनजातीय क्षेत्र बाहरी लोगों के लिये खुल गया । ये बाहरी लोग इन क्षेत्रों में अपने-अपने उद्देश्यों व स्वार्थो के साथ प्रवेश कर गये। इनमें से भूमि अधिग्रहण करने वाले शक्तिशाली लोगों ने जनजातियों के अधिकारों का सबसे अधिक हनन किया ।

5.2.1 भूमि संरक्षण के कारण

धन की कमी भूमि हस्तान्तरण के मुख्य कारणों में से एक है। जब से ये जनजातियॉ सभ्य समाज तथा वित्त संस्थाओं के सम्पर्क में आयीं, धन की कमी के कारण उनकी भूमि का हस्तान्तरण बढ़ता गया । विवाह, उत्सवों, कपड़ो, मदिरा तथा अन्य आवश्यकताओं के लिये जनजातीय लोगों को सदैव धन की आवश्यकता रहती है। कम उपज तथा दुर्बल कृषि व्यवस्था के कारण इन्हें खाद्य सामग्री भी बाजार से खरीदनी पड़ती है। इस प्रकार भूमि हस्तांतरण से साहूकारों, दादुओं तथा दुकानदारों के ऋण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहूकार इन्हें किसी भी समय किसी भी उद्देश्य के लिये बिना शर्त व जमानत के बगैर ऋण देने को तैयार रहते हैं। इन जनजातीय लोगों को केवल एक सादे कागज या किसी मसौदे पर अंगूठा लगाना होता है । मौखिक बातचीत के द्वारा भी ऋण प्राप्त हो जाता है जो बाद में हानिकारक साबित होता है। इन लोगों की अपनी भूमि गवाने के साथ-साथ दासता का जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

कुछ समय से इन जनजातियों से राज्य की सहकारी ऋण समितियों एवं बैंकों से ऋण लेना प्रारंभ किया परन्तु इन संस्थाओं के साथ उनके अनुभव अच्छे नहीं रहे। अधिकतर सहकारी समितियां कम समय के लिये ऋण देती हैं तथा यह ऋण केवल उत्पादक उद्देश्यों जैसे कृषि आदि के लिये ही दिये जाते हैं। जनजातीय लोगों को अपनी अन्य आवश्यकताओं के लिये भी ऋण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त समिति का ऋण न

चुका पाने की स्थिति में जेल जाने या उनकी सम्पत्ति जब्त कर लिये जाने की घटनाओं से भी ये लोग डरते हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये ये लोग बढ़ी हुई ब्याज की दरों पर भी साहूकारों एवं दादुओं से ही ऋण लेना अधिक सुरक्षित समझते हैं।

अनुसूचित क्षेत्र व अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार अन्य बहुत से तरीके हैं, जिनके द्वारा बाहरी लोग जनजातियों की भूमि हड़प लेते हैं। इनमें सबसे प्रचलित तरीका है न्यायालय, जहॉं पर जनजातीय लोग बिल्कुल शक्तिहीन होते हैं। उनकी कोई पहुॅंच नहीं होती । अपने ही विरूद्ध गवाही देने का तरीका भी प्रचलित है। इसमें साहूकार ऋण लेने वाले को प्रलोभन देकर उसी के विरूद्ध उसी से गवाही दिलवाता है।

जनजातियॉं अधिकतर साहूकारों पर निर्भर रहती हैं। ऐसे साहूकार जो बाहर से आते हैं तथा जिन्हें जनजातियों के सामाजिक ढॉंचे को बनाये रखने या उनकी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने में कोई रूचि नहीं है। कारण पेचीदा न्याय, कानून व्यवस्था, पहले सारे मामले पंचायतों में तय हो जाते थे जिसके कारण इन लोगों को न्यायालय के चक्कर नहीं लगाने पड़ते थे । इन न्यायालयों में अधिक धन व समय दोनों ही की आवश्यकता होती है जोकि जनजातीय लोगों के लिये एक समस्या बन जाती है। इन सबके ऊपर ऋण मिलने के अन्य क्षेत्रों की कमी, जिसके कारण ये लोग सदैव साहूकारों के ऋणों तथा एहसानों से दबे रहते हैं।

5.3 निर्धनता की समस्या

निःसन्देह दीर्घकालीन व्यापक गरीबी भारत के औपनिवेशिक इतिहास में शुरू से ही चली आ रही है। अपनी आर्थिक समस्यायें हल करने और सर्वतोमुखी विकास करने के हमारे प्रयास हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के साथ शुरू हुए। उन्होंने कई मामलों में देश का कायाकल्प भी किया, जैसे ठोस औद्योगिकरण, हरित क्रान्ति जिससे देश में आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न पैदा होने लगा, औसत जीवनावधि में वृद्धि हुई, मध्य वर्ग की समृद्धि में तेजी से वृद्धि हुई । हमारे नियोजन का विरोधाभास यह है कि वह भारत के गरीबों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने में असफल रहा। गरीबी नीचे स्तर की प्रति व्यक्ति आय में स्पष्ट रूप से निरन्तर दृष्टिगोचर होती रही है और देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे

ही गुजर-बसर कर रहा है। गरीबी की यह रेखा पहले 3500 रूपये के उपभोग-स्तर पर था और बाद में वह अपने संशोधित रूप में 6400 रूपये के उपयोग स्तर पर पहुँच गई ।

योजना आयोग ने ग़रीबी की घटना का अनुमान 1983-84 में 374 प्रतिशत और 1987-88 में 29.9 प्रतिशत लगाया । यह प्रतिशत कुल आबादी का है। ग्रामीण आबादी और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के मामलें में तो यह प्रतिशत इससे काफी अधिक है। योजना आयोग द्वारा संयोजित विशेषज्ञ समिति ने गरीबी की घटना को 1983-84 में 44.8 प्रतिशत और 1987-88 में 39.3 प्रतिशत आंका है। 1993-94 के एन.एस.एस. के आंकड़े अभी जारी नहीं किये गये हैं। अतः देश के 49 करोड़ 30 लाख लोगों के लिए जो गरीबी की रेखा के नीचे रह रहे हैं विकास एक दूर का सपना है।[3]

गरीबी की इस स्थिति के लिए बहुत से पहलू जिम्मेदार हैं और वे सभी हमारे नियोजन के प्रतिमान और देश की सामाजिक-राजनीतिक संरचना में मौजूद है। हमारी योजनाओं ने औद्योगिक उन्नति, विशेष रूप से विनिर्माण और कृषि पर आवश्यकता से अधिक बल दिया । कृषि के क्षेत्र में बड़े पैमाने की सिंचाई योजनाओं और रासायनिक उर्वरकों आदि को प्रोत्साहित किया गया है जो वास्तविक रूप से बड़े और सम्पन्न किसानों के लिए लाभप्रद है, लेकिन छोटे और गरीब किसानों के लिए नहीं। आमतौर पर मान यह लिया गया है कि औद्योगिक विस्तार कृषि उत्पादन और रोजगार के अवसरों की वृद्धि से जो लाभ होंगे वे समाज के नीचे से नीचे तबके तक पहुँचेंगे। सर्वथा असमान और पुरोहित राजवाद से ग्रसित समाज में आय के वितरण जैसी छोटी चीज के आधार पर पूरे समाज में व्याप्त अंतरों को कम करने से सभी प्रयास पूर्णतः अनुपयुक्त सिद्ध हुए। विश्लेषकों ने यह भी कहा कि राज्य सरकार ने हस्तक्षेप करने की जितनी भी कार्यवाहियां की जैसे भूमि सुधार, कृषिगत आय और आधिक्य का पुनः वितरण और रोजगार बढ़ाने की दृष्टि से शिक्षा सम्बन्धी बाह्रय संरचनाओं का निर्माण आदि, वे सभी पूरे मन या उत्साह के साथ नहीं की गयीं, उन सब पर उद्यमी और पूंजीवादी

[3] यू.एन.डी.पी. (1993), नई दिल्ली ।

वर्ग हो आदि से अंत तक छाया रहा और उन्होंने धीरे-धीरे राजनीतिक और आर्थिक मामलों पर अपना पूरा कब्जा जमा लिया।

इन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप चौथी योजना अवधि में और उसके बाद भी ग्रामीण इलाकों की गरीबी हटाने के लिए किसी समूह विशेष को हटा देने का लक्ष्य ही निर्धारित किया जाता रहा । इसके अतिरिक्त भूमि सुधार की जो सबसे जरूरी कार्यवाही थी उसकी 'गरीबी हटाओं' कार्यक्रम के अंतर्गत एक आय विशेष और रोजगार पैदा करने की योजनाओं पर बल दिया गया। इनमें दो और योजनाएं शामिल की गयी थी वे : रोजगार के अवसर पैदा करने वाली योजनाएं, आई.आर.डी.पी. जिन्हें ऋणों और 'मार्जिन मनी' देकर खेती और अतिरिक्त आय के जरिए पैदा करने में मदद करनी थी, रोजगार के लिए वैयक्तिक क्षमताएं पैदा और प्रशिक्षित करने के लिए टी.आर.वाई.एस.ई.एम. के साथ ही ऐसे अनेक कार्यक्रम जिनसे ग्रामीण महिलाओं के अतिरिक्त आय बढ़ सके। 1980 के प्रारम्भिक वर्षो में आई.आर. डी.पी. का विस्तार और सर्वथा लाभहीनों तक पहुँचाने के लिए उस कार्यक्रम को ज्यादा से ज्यादा पैना करने के बाद वह स्थिति पर थोड़ा बहुत प्रभाव डालने में सफल हो सका।

दूसरों की तुलना में अनुसूचित जनजातियों में गरीबी का स्तर बहुत अधिक शोचनीय है। 1983-84 ग्रामीण जनजाति समुदाय में 58.4 प्रतिशत व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे थे । स्मरण रहे लगभग 94 प्रतिशत जनजाति के लोग ग्रामीण इलाकों में ही रहते हैं। शहरी आबादी में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले 39.9 प्रतिशत थे। आठवीं योजना के दौरान जनजातियों पर काम करने वाले कार्यकारी समूह ने अनुमान के अनुसार 1991 में 99. 24 लाख जनजाति परिवार गरीबी की रेखा के नीचे थे। आई.आर.डी.पी. की एक योजना ने आठवीं योजना अवधि में लगभग 42 प्रतिशत परिवारों की सहायता की । फिर भी ऐसा कोई अनुमान उपलब्ध नहीं है जिससे सही रूप में यह जाना जा सके कि जनजातियों के कितने परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर आ सके हैं। आई.आर.डी.पी. के मूल्यांकन के अनुसार गरीबी की रेखा पार करने वाले परिवारों का प्रतिशत बहुत ही कम है। यह भी अनुभव किया गया है कि जनजाति समुदाय के ज्यादातर हिस्सों को दरिद्र बनाने और होशियार बनाने की

जिम्मेदारी राष्ट्रीय विकास के बड़े पैमाने के लक्ष्यों को पूरा करने की कार्यवाइयों पर रही हैं। जनजातीय समुदाय धीरे-धीरे एक ऐसी प्रक्रिया का शिकार होता गया जिसमें एक ओर तो उनके साधनों के आधार और उत्पादन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से अस्त व्यस्त हुआ और दूसरी ओर उनके परम्परागत सामुदायिक अधिकारों और आर्थिक मूलाधारों का अपहरण राज्य सरकार और व्यापारी हितों द्वारा किया गया। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के भूतपूर्व कमिश्नर डा. बी.डी. शर्मा के कथनानुसार मौजूदा परिस्थितियों की गहरी जाँच से स्पष्ट है कि इस जनसमाज को पांच स्तरों पर वचित किया गया जैसे (1) साधनों पर जो उनके परम्परागत अधिकार थे उनको मान्यता नहीं दी गयी और उनके लिए उन साधनों के इस्तेमाल पर पाबन्दी लगाई गयी । (2) काम करने वालों को उत्पादन के साधनों से अलग किया गया (3) मजदूरों को उनकी उचित मजदूरी नहीं दी गई (4) उनकी स्वाधीनता का सौदा किया गया (5) मनोवैज्ञानिक रूप से उन्हें अपने को हीन और वंचित समझने के लिए विवश होना पड़ा जिसके फलस्वरूप उनमें अपनी इज्जत और अपने आत्मसम्मान की भावना समाप्त हो गयी । दूसरे शब्दों में वन-उत्पादन जंगलों से सम्बन्धित उनके परम्परागत अधिकारी पूरी तरह छिन गये । जनजातियों की अच्छी उपजाऊ जमीनें उन लोगों के हाथों में चली गयीं जो उनके समाज के नहीं हैं। जनजाति के लोग दिन-प्रतिदिन गरीब होते जा रहे हैं। यही नहीं वे बड़ी संख्या में मजदूरी करने लगे हैं और इन मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती। स्वयं सरकारी विभाग भी इन्हें उतनी मजदूरी नहीं देते जो सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी है। औद्योगिक विकास और सिंचाई की बड़ी-बड़ी परियोजनाओं से जहाँ बड़े और सम्पन्न काश्तकारों को लाभ पहुँचा है वहीं जनजाति के परिवारों को अपने बड़े-बड़े मूल स्थान छोड़ने और विस्थापित होने के लिए मजबूर होना पड़ा है।

हमारी कानून व्यवस्था इतनी लचर है कि न उन्हें पर्याप्त मुआवजा मिला और न उनके साथ इंसाफ हो सका है। इन विस्थापितों के पुनःस्थापन का कार्य भी जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हो सका है। आन्ध्र प्रदेश की 22 जिलों के अध्ययन (1990) से स्पष्ट है कि सरकारी कार्यक्रमों से अनुसूचित जातियों और पिछड़ी हुई जातियों ने तो लाभ उठाया है किन्तु

जनजाति के लोग उनकी तुलना में भी घाटे में रहे हैं। गरीबी की रेखा के मामले में भी अनुसूचित जातियों और पिछड़ी हुई जातियों को लाभ हुआ है उनका एक बड़ा हिस्सा उस रेखा से ऊपर आया है किन्तु अनूसूचित जनजातियों पर 'गरीबी हटाओं' कार्यक्रम का कुछ ज्यादा प्रभाव नहीं डाल सका है। अतः अनुसूचित जनजातियों की गरीबी दूर करने के लिए एकदम नई कल्पनाशील और प्रभावपूर्ण पद्धतियाँ अपनानी होंगी। विकास के लिए विश्वभर में जो प्रगति हो रही है उससे सम्पत्ति पर अधिकार ज्यादातर बड़े और शक्ति सम्पन्न लोगों का ही हो रहा है जबकि प्रकृति और उस पर आश्रित रहने वाली मनुज संतान उत्तरोत्तर गरीब होती जा रही है। इस प्रकार आदिवासी समाज सदा से दमनकारी बाहरी लोगों से एक ऐसा संघर्ष या युद्ध करते हैं जिससे दोनों पक्ष समान नहीं है और आदिवासियों को ही पराजित होना पड़ता है।

जनजातियों को वंचित करने और दरिद्र बनाने के इस व्यापक प्रयास के संदर्भ में गरीबी हटाओं और ग्रामीण लोगों को रोजगार दिलाने के कार्यक्रमों के अलावा जनजाति क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण पद्धति में संशोधन या सुधार, सहकारी योजनाएँ तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में सरकार द्वारा की जा रही इसी प्रकार की समस्त कार्यवाइयाँ अभी तक विस्तृत रूप से प्रभावशाली या परिणामकारी सिद्ध नहीं हो सकी हैं।

5.4 बेरोजगारी एक समस्या

जनजातियों का एक बहुत बड़ा भाग (लगभग 85 प्रतिशत) कृषि क्षेत्र में काम करता है। उसमें कुछ किसान हैं कुछ सीमांतक खेती करते हैं और शेष खेतिहर मजदूर हैं। उनका एक छोटा हिस्सा औद्योगिक क्षेत्र में है। वे कारखानों में मजदूरी करते हैं। कुछ समूह जिनमें नीलगिरि पर्वत के टोड़ा, उ.प्र. में हिमालयी उपक्षेत्र के भोटिया, जम्मू-कश्मीर क्षेत्र के बकरेवाले आदि आते हैं, पशुपालक हैं। कुछ दस्तकार हैं जैसे पश्चिम बंगाल के मछली, बिहार और मध्य प्रदेश के असुर और अगेरिया लोहारी का काम करते हैं। लगभग 70 जनजातियां शिकार करती हैं और जंगलों से वस्तुएं एकत्र करके अपनी उदर पूर्ति करती हैं । इनमें से ज्यादातर दक्षिणी भारत में हैं। अभी हाल में जनजातियों के काफी लोगों ने या तो प्रवासी खेतिहर मजदूरों का व्यवसाय अपना लिया है या फिर वे ईट के भट्ठों पर और इमारत बनाने

के काम में अदक्ष मजदूरों का काम करने लगे हैं। जनजातियों की कुल आबादी के बीच कुछ बहुत कम ऐसे व्यक्ति भी हैं जो पढ़े लिखे हैं। गरीबी और दरिद्रता जनजातियों की किस्मत में है। केवल उत्तर-पूर्व भारत की जनजातियाँ खुशनसीब हैं क्योंकि उन क्षेत्रों में उनके विकास का आदर्श "शिक्षा-पहले" के सिद्धान्त पर आधारित रहा है।

वर्तमान परिद्रश्य में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा निश्चित रोजगार गारण्टी योजना पर (एन.आर.ई.पी.) जिसमें केन्द्र और राज्य की सरकारों ने बराबर की पूँजी लगाई है, से काम हो रहा है। ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) को 1983 से अमल में लाया जा रहा है। इन दोनों कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीण भूमिहीन को न्यूनतम सुनिश्चित स्तर का रोजगार दिलाना है। इन भूमिहीनों में ज्यादातर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लोग हैं। इन्हें वर्ष के उन महीनों में रोजगार दिलाना आवश्यक है जब इनके पास कोई काम नहीं होता।

1989 में एन.आर.ई.पी. और आर.एल.ई.जी.पी. दोनों को एक राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों में जिसे जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) कहते हैं, आत्मसात कर दिया गया। इस कार्यक्रम में 80 प्रतिशत धन केन्द्र सरकार और 20 प्रतिशत धन राज्य सरकार लगा रही है। जवाहर रोजगार योजना के उद्देश्य हैं : अतिरिक्त लाभकर योजना की व्यवस्था, उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन और ग्रामीण क्षेत्रों में कुल मिलाकर जीवन शैली को उन्नत करना। जवाहर रोजगार योजना में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने की विशेष व्यवस्था है, जनजातियों के लोगों के लिए समन्वित परियोजनाएं चलाने तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की वैयक्तिक सहायताओं के लिए जिला और गांव पंचायत स्तर के साधनों का 15 प्रतिशत तक सुरक्षित कर दिया गया है। यही नहीं, अनुसूचित जनजाति के लाभार्थ काम की जांच और उन्हें रोजगार के अवसर सुनिश्चित करने के निर्देश भी दिये गये हैं। इन सबके अलावा, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वित्त और विकास निगम भी इस दिशा में प्रयासरत है। उसकी स्थापना 1989 में विशेष रूप से इन दोनों अनुसूचित जातियों के व्यापार, व्यवसाय,

पेशे और अन्य आर्थिक क्रियाकलाप की पहचान और उनका पता लगाकर उपलब्ध कराने के लिये की गयी थी । साथ ही उसका कार्यक्रम सहायता देने वाली ऐसी परियोजनाएं चलाने का भी है जिनसे इन जातियों को रोजगार मिल सके। जनजातीय विकास कार्यक्रमों और विविध प्रकार के सरकारी और गैर-सरकारी दस्तावेजों व अध्ययनों से यह जाहिर है कि जनजातीय क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति शोषण, साधनों की चोरी, प्रतिक्रिया के अभाव, नीचे स्तर के सरकारी कर्मचारियों के निर्दय और निर्मम रूख तथा अन्य अनेक विरोधी तत्वों से अब भी भरी हुई है।

5.5 स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं

जनजातीय लोगों का सामान्य स्वास्थ्य बहुत बुरा नहीं है परन्तु लगातार संक्रमण से उनको अक्सर बीमारियों का सामना करना पड़ता है। जन स्वास्थ्य की आधुनिक सुविधाओं का कितना भाग इन जनजातियों तक पहुँचता है ? इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व हमें जनजातियों की स्वास्थ्य समस्याओं का परीक्षण करना चाहिये। वैसे तो जनजातियाँ बहुत सी बीमारियों से ग्रस्त रहती हैं परन्तु सबसे अधिक मात्रा में जल संक्रामक रोग पाये जाते हैं जिनसे बहुत लोगों की मृत्यु हो जाती है। पीने के पानी की उपलब्धता में कमी इन रोगों का मुख्य कारण है। जिन स्थानों पर प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध है वहाँ पर भी जल गंदा व दूषित होता है। फलस्वरूप अधिकतर लोग पेट-आँत तथा चर्मरोगों तथा टी.बी. के शिकार हो जाते हैं। कालरा, पेचिश, अतिसार, नहरूआ आदि बीमारियाँ इसी दूषित जल के प्रयोग के कारण हो जाती हैं।

खनिजों तथा अन्य तत्वों की कमी भी बीमारियों का कारण है। क्षेत्र में घेघा जैसी गले की बीमारी अधिक है। इसका कारण है आयोडीन की कमी। पोषण तत्वों की कमी के कारण बहुत सी जनजातियों में क्षय रोग का आधिक्य है। अधिकतर जनजाति के लोगों के शरीर में सभी प्रकार के प्रतिरक्षक का विकास नहीं हुआ है। ये लोग आसानी से किसी भी नयी बीमारी का शिकार हो जाते हैं। घेबर आयोग के अनुसार एक ऐसी बीमारी है जिससे जनजातीय लोग सदा भयभीत रहते हैं। यह रोग आन्ध्र प्रदेश के एजेन्सी क्षेत्र के उत्तरी भागों, दक्षिणी

उड़ीसा, महाराष्ट्र के चन्दा जिले तथा मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में अधिक पाया जाता है। कुष्ठ रोग सम्पूर्ण भारत में व्याप्त है। अतः जनजातियाँ भी इससे अछूती नहीं रही। आन्ध्र प्रदेश, असम की मिकिर पहाड़ियों, पश्चिम बंगाल के बांकुरा तथा पुरूलिया जिलों, बिहार के संथाल परगना तथा उड़ीसा में मयूरभंज से पुरी तक के क्षेत्रों में इस रोग का बाहुल्य है। जनजातियों में खुजली, चर्मरोग, चेचक तथा इनेमिया जैसे रोग भी आम है।

यह बात सही है कि सरकार स्वास्थ्य तथा चिकित्सा की दिशा में अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान करने की इच्छुक हैं, फिर भी इस प्रकार की योजनाओं की असफलता के निम्नकारण हैं :-

(1) सही दृष्टिकोण की आवश्यकता

(2) कार्यकर्ताओं तथा कर्मचारियों की समस्या

(3) अपर्याप्त संचार व्यवस्था

(4) दवाओं के वितरण से सम्बन्धित नियम

प्रायः जनजातीय लोग सरकारी चिकित्सालयों में कम ही आते हैं। इसका कारण है कि इनकी अपनी चिकित्सा पद्धतियाँ सुदूरवर्ती तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों में यह विश्वास व्याप्त है कि बीमारियाँ दैवी शक्तियां, भूत प्रेतों के प्रकोप या किसी परपंरा या नियम के उल्लंघन के कारण होती हैं। ये लोग मानते हैं कि दैवी शक्तियों के कारण आयी बीमारियों या दुर्भाग्य का उपचार भी उसी प्रकार होना चाहिये । इसीलिये सुदूरवर्ती तथा दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों के अपने ओझा, जादूगर तथा शामन होते हैं। सभी उपचारों से निराश होने के बाद ही यह लोग स्वास्थ्य कर्मचारियों से सम्पर्क करते हैं। डाक्टरों द्वारा ओझाओं को अपना प्रतिद्वन्दी समझने के कारण स्थितियाँ और भी गम्भीर हो जाती है। घेबर कमीशन की टिप्पणी के अनुसार "एक सरल प्रकृति का मनुष्य पुजारी तथा डाक्टर दोनों के पास जायेगा । पुजारी उसके लिए प्रार्थना करेगा, डाक्टर उसे दवा देगा। मान्यता यह है कि ईश्वर पुजारी की प्रार्थना सुनता है जिससे दवा का प्रभाव बड़ जायेगा। डाक्टर एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से दैवी शक्तियां काम करती हैं।" आधुनिक चिकित्सा पद्धति को इन

जनजातियों तक पहुँचाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिये स्थानीय विश्वासों, आस्थाओं, तथा संवेदनाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। घेबर कमीशन ने उत्तर-पूर्वी जनजातियों का दिलचस्प उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन क्षेत्रों में डाक्टरों तथा स्वास्थ्य कर्मचारियों से, वहाँ के स्थानीय एवं पारंपरिक चिकित्सकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का आग्रह किया जाता है। डाक्टरों को यह निर्देश है कि वह लोग क्षेत्रीय उपचार पद्धति का न तो विरोध करें और न ही उसे अन्ध-विश्वास कहे। इसके स्थान पर इस प्रकार की पद्धति को उन्हें विश्व की अन्य मनौवैज्ञानिक तथा आस्था उपचार पद्धतियों की भांति सम्मान देना चाहिए। एक बुद्धिमान डाक्टर स्थानीय ओझाओं व पुजारियों से मित्रता करके उन्हें अपने चिकित्सालयों में आमंत्रित करेगा। उन्हें प्रार्थना तथा बलि करने से नहीं रोकेगा तथा उन्हें यह समझायेगा कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति उनकी प्रणाली की पूरक है। मनोवैज्ञानिक रूप से स्थानीय पुजारियों की भूमिका अत्याधिक महत्वपूर्ण है। यदि किसी रोगी को यह विश्वास है कि इस पर किसी भूत-प्रेत का साया है तो ऐसी स्थिति में यह पुजारी ही इसके मन में बैठे डर को दूर कर इसका उपचार कर सकते हैं। चिकित्सा कर्मचारियों के लिये आवश्यक है कि यह लोग जनजातीय ओझाओं तथा हवाओं के प्रति सही दृष्टिकोण तथा व्यवहार रखें। अनुसूचित क्षेत्र व अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार ''सफल चिकित्सक वह है जो स्वास्थ्य सम्बन्धी सामाजिक मान्यताओं में रूचि रखता हो। जनजातियों की स्वप्नों का स्वास्थ्य पर प्रभाव, ''जैसी मान्यताओं तथा जनजातीय चिकित्सा पद्धति को सम्मान देता हो।''

स्वास्थ्य कर्मचारियों तथा प्रशिक्षित नर्सो की कमी भी भारतीय जनजातीय स्वास्थ्य की समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अधिकतर स्वास्थ्य कर्मचारी (पुरूष और महिलायें) गाँवों तथा जनजातीय क्षेत्रों में जाने के इच्छुक नहीं हैं। इसका कारण है समुचित आवास, शिक्षा एवं अन्य व्यवस्थाओं की कमी के साथ-साथ मनोरंजन के साधनों की भी कमी होना। घेबर कमीशन के अनुसार बीस वर्षो के लिये एक विशेष स्वास्थ्य सेवा का गठन करके इस समस्या को हल किया जा सकता है। स्थानीय लोगों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाय जिससे कि बीस वर्षो के बाद यही लोग अपने चिकित्सालयों को सुचारू रूप से चला सकें। इसके

साथ-साथ आयुर्वेदिक दवाओं, जड़ी-बूटियों के प्रयोग को प्रोत्साहित करना चाहिये। ये लोग इन जड़ी-बूटियों का प्रयोग पहले से ही करते आ रहे हैं अतः इन्हें इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

जनजातीय क्षेत्रों की भौगोलिक स्थितियों तथा दुर्गमता को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि सचल दवाखाने स्थिर चिकित्सालयों से अधिक लाभप्रद सिद्ध होंगे। यह सचल दवाखानें भी छोटी-छोटी गाड़ियों में होने चाहिए जिससे कि ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर भी आसानी से पहुँच सके। इस प्रकार के सचल दवाखानों के लिये एक जीप अधिक उपयोगी होगी जिसमें एक डाक्टर, कर्मचारी तथा दवायें आसानी से जा सकती हैं। कभी-कभी अच्छी किस्म की बैलगाड़ियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में इन स्वास्थ्य इकाइयों को दुर्गम स्थानों पर पैदल चलना पड़ता है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिविर लगाकर आपरेशन किये जाते हैं। इन स्थितियों में सद्भाव व समर्पण के बिना कार्य करना असम्भव है।

सुदूरवर्ती क्षेत्रों में दवाओं की माँग व पूर्ति के नियम बहुत जटिल हैं। दवाओं की मात्रा की जांच मैदानों के मापदण्ड से की जाती है। इस प्रकार के नियम बनाते समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है कि जनजातीय क्षेत्रों में डाक्टरों को उपचार करने के साथ-साथ जलवायु की विविधता का भी सामना करना पड़ता है तथा कभी-कभी आकस्मिक आवश्यकताओं तथा चिकित्सा के लिये विशेष प्रकार की दवाओं को भंडार में रखना पड़ता है।

जनजातीय लोगों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं में पेय पदार्थो का सेवन भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। महुआ, बाजरा, चावल, जौ तथा अन्य अनाज के दानों को सड़ा कर मदिरा बनायी जाती है। यह पारंपरिक मदिरा घरों में बनायी जाती है तथा समस्त परिवार इसका सेवन करता है। सीधे-सीधे जनजातीय लोगों को घर में मंदिरा बनाने से रोका जाता है तथा बाहरी लोगों द्वारा बनायी गयी मदिरा क्रय करने को बाध्य किया जाता है। इस मदिरा के आदी जो जाने के बाद यह निर्धन जनजातीय लोग अपनी सम्पत्ति बेचते हैं या ऐसे समझौते करते हैं जिनमें इनका शोषण निश्चित होता है। इस समस्या का एक ही व्यावहारिक हल है। बाहरी ठेकेदारों तथा मदिरा को इन क्षेत्रों से बाहर निकाल दिया जाय जिससे यह जनजातीय

लोग अपने घरों में मदिरा बनाकर अपनी परंपराओं तथा संस्कृति का स्वतंत्रतापूर्वक निर्वाह कर सकें।

जनजातीय लोगों में अफीम तथा अन्य औषधियों की लत भी एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। अरूणाचल प्रदेश की सिंहफो जनजाति इसका ज्वलंत उदाहरण है। लगभग 150 वर्ष पूर्व इन लोगों की संख्या 40 हजार थी जो अब लगभग एक हजार रह गयी है। यद्यपि कई युद्धों, बीमारियों तथा कुपोषण ने भी अपनी भूमिका निभायी परन्तु अफीम के दुर्व्यसन ने इन्हें सबसे अधिक हानि पहुँचाई है। ऐसा विश्वास है कि अफीम के कारण इनकी जनन क्षमता भी कम हो गई, मृत्यु दर तथा भुखमरी बढ़ गई । यह सिंहफो लोग दिन भर अफीम व तम्बाकू पीते देखे जा सकते हैं। अफीम सिंहफों जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है। अपने पशुओं तथा भूमि का ध्यान यह लोग नहीं रखते परन्तु अफीम अवश्य खरीदते हैं। यह लोग बुरी तरह से अफीम के आदि हो चुके हैं तथा इनके पूर्वजों को इसका सेवन करना अंग्रेजों ने सिखाया । कुछ गम्भीर सिंहफों को सुधारकों तथा अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं ने अफीम के दासों को इससे दूर रखने का प्रयास प्रारम्भ किया है।

जनजातियों को स्वास्थ्य शिक्षा देना अतिआवश्यक है। अधिकतर जनजातियाँ अशिक्षित हैं, परन्तु चलचित्रों तथा बीडियों कैसेटों की सहायता से इन्हें स्वास्थ्य तथा सफाई के मूल सिद्धान्तों से अवगत कराना चाहिये। जनजातियों के स्वास्थ्य स्तर को बेहतर बनाने के लिए राज्य सरकारों, केन्द्र सरकार, गैर-सरकारी संस्थाओं तथा स्वास्थ्य कर्मचारियों को मिलजुल कर प्रयास करने चाहिए।

5.6 मदिरापान की प्रवृत्ति

जनजातियों में मदिरापान का अत्याधिक चलन है। अधिकतर जनजातियाँ मदिरापान के सम्बन्ध में बहुत संवेदनशील हैं तथा महुँए के पेड़ को पवित्र मानती हैं। मदिरापान सादियों से उनकी सामाजिक परम्पराओं का एक भाग है। इस प्रकार के अव्यावसायिक समाज में मदिरा को भी भूमि के अन्य उत्पादों के स्तर पर ही रखा जाता है। ये जनजातियाँ अपने घरों में मदिरा बनाती हैं तथा इस प्रकार के अधिकतर पेयों में कोई विशेष नशा नहीं होता। मदिरा

अधिकतर शक्तिबर्द्धक का कार्य करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि मदिरापान इन जनजातियों के रीतिरिवाजों का एक अभिन्न अंग है तथा इनकी सामाजिक परंपराओं में घुल-मिल गयी है।

बाजरे तथा चावल द्वारा अपने घरों में बनायी गयी मदिरा जनजातियों में बहुत लोकप्रिय है। अलग-अलग क्षेत्रों में इसके विभिन्न नाम हैं। यह मध्य प्रदेश में ''हँडिया'', असम में ''पोंग'' , उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में ''जू'' पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश में ''तुदगी'', आन्ध्र प्रदेश में ''काल्ही'' बिहार में ''पछावे'' तथा देश के विभिन्न जनजातीय क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जानी जाती है। उत्सवों, विवाहों, मृत्यु, दाह संस्कार तथा अन्य समारोहों के समय जनजातियाँ मदिरा बनाती हैं तथा उनका सेवन करती हैं। कभी-कभी इच्छा होने पर भी जंगलों या घरों में इस प्रकार की मदिरा बनाकर मित्रों के साथ इसका सेवन किया जाता है।

अंग्रेजी प्रशासन के आगमन से इनकी स्वतंत्रता तथा मानसिक शांति भंग हो गयी । अंग्रेजी प्रशासन ने एक ऐसी आबकारी प्रणाली प्रारम्भ की जो जनजातीय लोगों के लिये विदेशी थी । सरकार तथा मदिरा बनाने वाले व्यवसायियों ने जनजातियों की मदिरापान परम्परा में अभिरूचि ली तथा उन्हें अधिक से अधिक मदिरा का उपभोग करने के लिए विवश किया जिससे कि राजस्व तथा बिक्री दोनों में वृद्धि हो । बस्तर में इस नयी विदेशी प्रणाली से जो कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी, ठेकेदारों का चलन प्रारम्भ हो गया जिनका उद्देश्य केवल अधिक से अधिक लाभ कमाना था। जनजातियों की पुरानी व पारम्परिक प्रणाली पर रोक लग गयी । इन स्थितियों में मदिरापान अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जिसके कारण इन जनजातीय लोगों की बहुत दुर्गति हुई ।[4] बम्बई प्रेसीडेन्सी में 1938 के दौरान डी. सिंनिंग्टन के सर्वेक्षण के अनुसार ''अंग्रेजी सरकार द्वारा मदिरा विक्रय को बढ़ाकर राजस्व कमाने की नीति ने जनजातीय लोगों पर बुरा तथा हानिकारक प्रभाव डाला है।''

संविधान के अनुच्छेद 46 में अन्तर्गत राज्यों को यह निर्देश दिये गये है कि अनुसूचित जनजातियों को सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय तथा शोषण से बचाया जाय तथा

---

[4] ग्रिक्सन, डब्लू, बी. - पाँचवी योजना में जनजातीय विकास कुछ मूलभूत नीतियाँ

सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाय। अनुच्छेद 47 ने राज्य सरकारों को उनके कर्तव्यों से अवगत कराते हुए स्पष्ट किया कि राज्य सरकार अपने प्राथमिक कर्तव्यों के अन्तर्गत अपने क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर, पोषण तथा जन-स्वास्थ्य के विकास में योगदान दें तथा चिकित्सा के उद्देश्यों के अतिरिक्त सभी स्थितियों में मदिरा पान तथा अन्य नशीली दवाओं के प्रयोग पर, जोकि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं, निषेधाज्ञा जारी करेगी। विभिन्न योजनाओं में भुखमरी उन्मूलन के कार्य को प्रारम्भ करने के लिये सर्वप्रथम शोषण समाप्त करना आवश्यक है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जनजाति विकास की सभी योजनाओं में शोषण समाप्त करने को प्राथमिकता दी गई है। दुर्भाग्यवश मदिरा विक्रय जनजातियों के शोषण का एक प्रबल माध्यम है। धेबर कमीशन द्वारा जनजातियों में मदिरापान तथा इसके प्रभाव की समस्या का अध्ययन तथा विश्लेषण करते समय आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि कुछ स्थानों पर बाहरी मदिरा का चलन स्वतंत्रता के पश्चात प्रारम्भ हुआ । कमीशन के अनुसार "हम इस प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के औचित्य को समाप्त नहीं कर सके। विशेषतया तब जबकि जनजातियों के पास अपनी बनायी मदिरा पर्याप्त मात्रा में है तथा इसे यह लोग सामाजिक रूप से मान्यता व सम्मान भी देते हैं ।" अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के भूतपूर्व आयुक्त प्रो.एस. के.बोस (1970-71) ने इन मदिरा विक्रेताओं को जनजातीय क्षेत्रों में "शोषण का माध्यम" बताया है। धेबर कमीशन ने इस प्रकार की मदिरा के विक्रय पर रोक लगाने का सुझाव दिया है।

मदिरा विक्रय की वर्तमान प्रणाली जनजातीय आर्थिक व्यवस्था के लिए अत्याधिक हानिकारक है। सरकार द्वारा लाइसेंस प्राप्त ठेकेदारों द्वारा बाहरी मदिरा के विक्रय ने जनजातियों को बहुत सी समस्याओं से उलझा दिया है। मदिरा विक्रय एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से तमाम बाहरी असामाजिक तत्व इनके पिछड़े समुदायों के बीच पहुँचकर अवांछनीय तथा आपत्तिजनक कार्य करते हैं। इस प्रकार के ठेकेदार स्थानीय लोगों के बीच भय उत्पन्न करने के उद्देश्य से लठेत तथा गुण्डों को संरक्षण देते हैं। यह लोग बलपूर्वक अनाधिकृत रूप से आदिवासियों की झोपड़ियों में प्रवेश कर इन्हें मदिरा बनाने से रोकते हैं।

लाइसेंस प्राप्त दुकानदार फेरीवालों को गाँव-गाँव में भेजते हैं जिससे कि मदिरा के विक्रय में वृद्धि हो। जनजातीय समुदायों के समक्ष इन गैर-कानूनी गतिविधियों से बचने का कोई उपाय नहीं है। प्रत्येक गाँव में इस प्रकार की गैर कानूनी दुकानें जनजातीय युवकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं। इस प्रकार जनजातीय लोग ऋणग्रस्त होते हैं तथा उनकी भूमि के हस्तांतरण तथा अधिग्रहण तक की नौबत आ जाती है। नियमों का उल्लघंन होता है परन्तु अधिकतर सरकारी अधिकारी तो इन ठेकेदारों से मिले होते हैं जिसके कारण किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं होती । ठेकेदार इन क्षेत्रों में अपनी मनमानी करते हैं। कुछ क्षेत्रों में तो इन ठेकेदारों के प्रति विवाह, प्रति फसल या प्रति परिवार मदिरा की एक निश्चित मात्रा, क्रय तथा उपभोग करना आवश्यक कर दिया है। ऐसा न किये जाने पर इन जनजातीय लोगों को गैर-कानूनी ढंग से मदिरा बनाने जैसे सही या गलत मामलों में फँसाने या जेल भिजवा देने जैसी बातों से भयभीत किया जाता है। प्रभावशाली व्यवसायी आबकारी, पुलिस, राजस्व, वन तथा अन्य सम्बन्धित विभागों के अधिकारियों का प्रश्रय प्राप्त करने में सक्षम हैं। जनजातीय लोग इन बाहरी लोगों के समक्ष अपने को अकेला पाते हैं। कुछ नये अध्ययनों से पता चला है आबकारी विभाग द्वारा प्राप्त अधिक राजस्व का सीधा सम्बन्ध अधिक ऋणग्रस्तता तथा भूमि हस्तांतरण से हैं। उपरोक्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बाहरी मदिरा की लत जनजातियों की विभिन्न समस्याओं तथा दुर्दशा का एक मूलभूत कारण है। अपनी इन समस्याओं से छुटकारा पाने तथा साहूकारों के चंगुल से बाहर आने के लिये इन जनजातियों को मदिरा से दूर रखना आवश्यक है। बाहरी मदिरा के विक्रय तथा उपभोग की बुराइयों से इन जनजातियों द्वारा स्वयं बनायी गयी मदिरा को कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने घरों में बनायी गयी मदिरा सदियों से इनके जीवन का एक अभिन्न अंग रही है तथा इस मदिरा के उपभोग से इनके सामाजिक व आर्थिक ताने-बाने पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव नहीं पड़ा है।

प्रशासन में बाहरी मदिरा के विक्रय के पक्षधर एक दल का तर्क है कि ठेकेदारी प्रथा समाप्त करने से मदिरा के उपभोग में वृद्धि होने का डर है। दूसरी और जनजातीय कल्याण में रूचि रखने वाले लोगों का मानना है कि कोई भी सामाजिक परम्परा सदैव नियंत्रित

रहती है। ऐसी स्थितियों में स्थानीय समुदाय मदिरा बनाने के अवसरों को सुनिश्चित करते हैं। किसी भी व्यक्ति को मनमाने की अधिकतम सीमा निर्धारित करेगी। जनजाति विकास व कल्याण का समर्थक एक दल सम्पूर्ण मद्य निषेध की विचारधारा पर बल देता है तथा इनके मूल्यों तथा परम्पराओं को कोई महत्व नहीं देता।

ऐसे तत्व इस बात पर विचार नहीं करते कि घरेलू मदिरा इन जनजातियों के जीवन का एक अभिन्न अंग है। इनकी धार्मिक व पारम्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ इस मदिरा से इन्हें स्वास्थ्य लाभ भी होता है तथा उनके कठिन व परिश्रमी जीवन में कुछ आनन्द की अनुभूति भी होती है। पारम्परिक मदिरा सेवन की प्रथा को त्यागना उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है। बहुत सी जनजातियाँ मदिरा पान की हानियों को भलीभाँति समझती हैं जिसके कारण अनेक जनजातीय क्षेत्रों में बाहरी मदिरा के सेवन के विरोध में आन्दोलन भी हुए हैं। बिहार का भगत आन्दोलन इसी प्रकृति का था। मदिरा पान के विरोध में कार्यरत सामाजिक संगठनों की सहायता के लिये विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों को प्रारम्भ करना चाहिये। जब तक इस प्रकार के आन्दोलनों का नेतृत्व जनजातियों द्वारा स्वयं न किया जाय, उनके घरेलू मदिरा सेवन में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। इन्हें चावल व अन्य अनाजों के विभिन्न प्रयोगों के प्रति स्वयं जागरूक होना चाहिये ऐसा होने पर वे स्वयं ही इस परम्परा को त्यागने की दिशा में क्रियाशील हो जायेगें। जनजातियों की परिस्थितियों के प्रति अपने उत्तरदायित्व के अन्तर्गत सर्वप्रथम प्रशासन को जनजातीय क्षेत्रों से अजनजातीय ठेकेदारों को निष्कासित करके इनका कड़ा विरोध करना चाहिये।

5.7 अशिक्षा एक अहम समस्या

जनजातीय समूहों पर औपचारिक शिक्षा का प्रभाव बहुत कम पड़ा है। भूतपूर्व प्रयासों के फलों को अधिक विस्मय से नहीं देखना चाहिये क्योंकि 1950 से पहले जनजातीय लोगों को शिक्षित करने के लिये भारत सरकार की कोई भी प्रत्यक्ष योजना नहीं थी। संविधान के प्रभावी होने के पश्चात् अनुसूचित जनजाति के लोगों के शिक्षा स्तर में वृद्धि करना केन्द्र तथा राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व हो गया है। जनजातीय जनसंख्या में औपचारिक शिक्षा के

विस्तार का अनुमान जनगणना के आँकड़ों से लगाया जा सकता है। 1931 की जनगणना के अनुसार केवल 0.7 प्रतिशत जनजातीय लोग ही शिक्षित थे । 1991 में यह संख्या बढ़कर 29.60 प्रतिशत हो गयी ज़बकि पूरे देश में लगभग 50 प्रतिशत शिक्षित लोग थे। उत्तर प्रदेश में 2001 की जनगणना के अनुसार 29536 व्यक्ति साक्षर हैं जिनमें 21184 पुरूष तथा 8352 महिलाएं साक्षर हैं। जनजातीय महिलाओं में शिक्षा की दर बहुत कम है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों की खासी तथा गारों आदि जनजातियों को छोडकर जिन्होंने ईसाई मिशनरियों से खूब लाभ उठाया, पूरे जनजातीय समाज में शिक्षा का स्तर अच्छा नहीं है। शिक्षा समान स्तर पर रहने तथा समान अवसरों को प्राप्त करने का प्रभावी मापदण्ड नहीं है। ऐसी स्थिति में जनजातीय लोग देश के अन्य लोगों से बहुत पीछे रह जाते हैं।

5.7.1 सामाजिक तथ्य

सरकार द्वारा अधिक से अधिक स्कूल खोलने तथा शिक्षा पर अधिक व्यय करने से जनजातीय लोगों की शिक्षा पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। इस प्रकार की शैक्षिक नीतियों के निर्धारण में सामाजिक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण होता है। जनजातियों के लिये केवल औपचारिक शिक्षा की अधिक आवश्यकता नहीं है। इनके लिये ऐसी शिक्षा नीति लाभदायक होगी जिसके अन्तर्गत उन्हें शिक्षित करने के साथ-साथ उनके अंधविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों को भी दूर किया जा सकें।

उत्तरपूर्व की कुछ जनजातियों के अतिरिक्त अधिकतर जनजातियों में यह भावना तथा विश्वास व्याप्त है कि शिक्षा से बच्चे उनसे अलग हो जाते हैं। इस प्रकार की कुछ घटनाओं ने इन्हें बाहरी शिक्षा से दूर रहने को प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त बहुत सी जनजातियों का मानना है कि बच्चों को बाहरी लोगों द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों में भेजने से उनके देवता क्रुद्ध हो जायेंगे।

5.7.2 आर्थिक पक्ष

जनजातियों द्वारा शिक्षा की ओर कम ध्यान देने के आर्थिक कारण भी हैं। अधिकतर जनजातीय परिवार इतने निर्धन हैं कि वे लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते हैं। एल्विन (1963) के अनुसार "एक जनजातीय परिवार के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेजना आवश्यक रूप से आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। इससे इनके जीवन-यापन के संघर्ष तथा पारम्परिक श्रम विभाजन की योजना गड़बड़ा जाती है- बहुत से माँ-बाप ऐसी स्थिति में नहीं होते हैं कि अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें"। एल.आर.एल. श्रीवास्तव (1968) द्वार जनजातीयों की शैक्षिक स्थिति पर किये गये सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा के प्रति उदासीनता का महत्वपूर्ण कारक है, इन जनजातियों की आर्थिक स्थिति । अधिकतर जनजातियों को खाने के लिये पर्याप्त मात्रा में भोजन तक नहीं मिलता । ऐसी स्थिति में ये लोग शिक्षा की बात सोच भी नहीं सकते । बच्चों को स्कूल भेजने से एक ओर तो एक कमाने वाला कम हो जाता है तथा दूसरी ओर उसकी शिक्षा पर व्यय भी होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत कोई भी बच्चा कम से कम दस साल बाद ही परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने में सहायक हो सकता है। इन परिवारों की विवशता है कि ये लोग इतने धैर्य का परिचय नहीं दे सकते । ऐसी शिक्षा प्रणाली इन्हें संतुष्ट कर सकती है। जिससे इन्हें तत्काल लाभ होना प्रारम्भ हो जाय।

आदिवासी बैगाओं की व्यावसायिक समस्याएं

चयनित अध्ययन क्षेत्रों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर आदिवासी बैगाओं की निम्नांकित व्यावसायिक समस्याएं परिलक्षित हुई हैं :-

तालिका संख्या - 5.8

व्यावसायिक सन्तुष्टि की स्थिति

क्रं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	सन्तुष्ट	28	9.3
2	असन्तुष्ट	253	84.3
3	कुछ नहीं कह सकते	19	6.4
	योग -	300	100.0

तालिका संख्या 5.8 में बैगा आदिवासियों की व्यावसायिक सन्तुष्टि की स्थिति को दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 84.3 (253) प्रतिशत बैगाजन अपनी व्यावसायिक गतिविधियों से असन्तुष्ट हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। 6.4 प्रतिशत बैगा इस सम्बन्ध में कुछ भी न कहने की स्थिति में हैं मात्र 9.3 प्रतिशत बैगा ही अपनी व्यावसायिक गतिविधियों में सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं । ये वे बैगाजन हैं जो स्वरोजगार से सम्बन्धित हैं अर्थात् अपनी दुकानदारी जैसी गतिविधियों से जुड़े हैं।

तालिका संख्या 5.9

व्यावसायिक असन्तुष्टि के कारण

क्रं.	कारण	संख्या	प्रतिशत
1	पर्याप्त आय नहीं	192	70.5
2	श्रम की तुलना में कम आय	50	18.3
3	काम की अनुपलब्धता	15	5.6
4	शोषण	15	5.6
	योग -	272	100.00

अध्ययन क्षेत्र के जो बैगाजन अपनी व्यावसायिक गतिविधियों से सन्तुष्ट नहीं हैं उनकी असन्तुष्टि के कारणों को शोधार्थी द्वारा जानने का प्रयास किया गया है जिसे तालिका संख्या 5.9 में स्पष्ट किया गया है। 70.5 प्रतिशत बैगा पर्याप्त आय न होने को असतुष्टि का कारण मानते हैं उनकी मान्यता है उन्हें अपने व्यवसाय से पर्याप्त आय नहीं होती है। 18.3 प्रतिशत बैगाजनों का कहना है जितना श्रम वे करते हैं उसकी तुलना में उनकी आय कम होती है। 5.6 प्रतिशत बैगाजन इस कारण से असन्तुष्ट है कि उन्हें नियमित कार्य उपलब्ध नहीं हो पाता है इतने ही प्रतिशत बैगाजन व्यावसायिक क्षेत्र में हो रहे शोषण (शारीरिक एवं मानसिक) के कारण असतुष्ट हैं।

तालिका संख्या 5.10

वनोत्पाद संकलन में कठिनाई

क्रं.	कठिनाई की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	153	52.9
2	नहीं	36	12.4
3	कभी-कभी	100	34.7
	योग -	289	100.00

तालिका संख्या 5.10 में वनोत्पाद संकलन के दौरान उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 289 बैगा वनोत्पादों को संकलित कर उनके विक्रय के माध्यम से अपनी जीविका को चलाते हैं उन्हें अपनी जीविका को चलाने के लिए जंगलात से वनोत्पादों को संकलित करना होता है जिसमें उन्हें अनेकानेक कठिनाईयों को सामना करना पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र के 52.9 प्रतिशत बैगाओं की मान्यता है कि उन्हें वह विभाग के कर्मचारियों द्वारा परेशान किया जाता है यह प्रतिशत सर्वाधिक है। 34.7 (100) प्रतिशत बैगा मानते हैं कि उन्हें कभी-कभी कठिनाई का सामना करना बड़ता है। 12.4 प्रतिशत बैगा वनोत्पाद संकलन के दौरान किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करते हैं ।

तालिका संख्या 5.11

वन विभाग कर्मचारियों से बचने के तरीके

क्रं.	बचने के तरीके	संख्या	प्रतिशत
1	सेवा करके	100	39.5
2	प्रार्थना करके	101	39.9
3	चकमा देकर	52	20.6
	योग -	253	100.00

तालिका संख्या 5.11 में बैगा आदिवासियों के वन विभाग के कर्मचारियों द्वारा परेशान किये जाने पर उनसे बचने के तरीकों को दर्शाया गया है। वनोत्पादों को संकलित करने के दौरान बैगाजनों द्वारा जिन तरीकों को अपनाया जाता है उनमें 39.9 प्रतिशत बैगा वनाधिकारियों से प्रार्थना एवं अनुनय विनय के द्वारा बचने का प्रयास करते हैं। 39.5 (100) प्रतिशत बैगा वन कर्मचारियों की उनकी वांछित सेवा करके वनोत्पाद संकलित करते हैं जबकि 20.6 प्रतिशत बैगा वन विभाग के कर्मचारियों को धोखा या चकमा देकर बचने का प्रयास करते हैं। वनोत्पादों को संकलित करने के दौरान बैगा आदिवासियों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है कभी वनों पर आधिपत्य रखने वाले वे गिरिजन अपनी जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का हर क्षण सामना करते रहते हैं।

तालिका संख्या 5.12

उत्पादों के विक्रय की स्थिति

क्रं.	विक्रय केन्द्र	संख्या	प्रतिशत
1	ठेकेदार को	78	26.0
2	संस्थान में	52	17.3
3	बाजार में	67	22.3
4	वन विभाग के क्रय केन्द्रों में	103	34.4
	योग -	**300**	**100.00**

तालिका संख्या 5.12 में बैगा आदिवासियों के उनके उत्पादों के विक्रय स्थलों की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन क्षेत्र बैगा अपने उत्पादों (वनोत्पाद अथवा अन्य) को बिक्री के लिए टेकेदार, संस्थान, बाजार तथा वन विभाग के क्रय केन्द्रों में ले जाते हैं जो बैगा वन विभाग के क्रय केन्द्रों में अपने उत्पादों को बिक्री हेतु ले जाते हैं उनका प्रतिशत 34.4 है यह प्रतिशत सर्वाधिक है। 26.0 प्रतिशत बैगा अपने उत्पादों को ठेकेदारों के यहाँ तथा 22.3 प्रतिशत बैगा बाजार में अपने उत्पादों को बिक्री हेतु ले जाते हैं। 17.3 प्रतिशत बैगा संस्थानों के यहाँ अपने उत्पादों को बेचते हैं।

तालिका संख्या 5.13

उत्पादों के नाप तौल की स्थिति

क्रं.	नाप तौल की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	178	59.3
2	नहीं	122	40.7
	योग -	**300**	**100.00**

बैगाजनों के अपने उत्पादों को बेचने के लिए जिन क्रय केन्द्रों में ले जाया जाता है उनमें उत्पादों की माप तौल ठीक ढंग से की जाती है अथवा नहीं, इस स्थिति का आंकलन करने के लिए शोधार्थी द्वारा जो तथ्य एकत्रित किए गये उनके विश्लेषण को तालिका संख्या 5.13 में प्रस्तुत किया गया है। क्षेत्र के 59.3 प्रतिशत बैगा मानते हैं कि उनके उत्पादों की माप तौल क्रय केन्द्रों में ठीक से नहीं की जाती है। क्रय केन्द्रों के संचालकों द्वारा अवैधानिक तरीकों से उनके उत्पादों की माप तौल की जाती है। 40.7 प्रतिशत बैगा बताते हैं कि उनके उत्पादों का मापन सही ढंग से किया जाता है इनमें उन बैगाओं की संख्या अधिक है जो अपने उत्पादों को स्वयं बाजार ले जाकर अपने हाथों से तौलते हैं। जिन बैगाओं के उत्पादों की माप तौल ठीक से नहीं की जाती है उनका आरोप है मापन सम्बन्धी विभाग द्वारा प्रभावी कार्यवाही न किये जाने से ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

तालिका संख्या 5.14

भुगतान प्राप्त होने की स्थिति

क्रं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	102	34.0
2	नहीं	198	66.0
	योग -	**300**	**100.00**

तालिका संख्या 5.14 में बैगा आदिवासियों के उनके उत्पादों के बिक्री के पश्चात अथवा श्रम करने के पश्चात भुगतान प्राप्त होने की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 66.0 प्रतिशत आदिवासी बैगाओं को उनके श्रम या उनके द्वारा बेचे गये उत्पादों का समय से भुगतान प्राप्त नहीं होता है जो भुगतान प्राप्त होता है वह विलम्ब से प्राप्त होता है या फिर कम भुगतान प्राप्त होता है। 34.0 प्रतिशत बैगा मानते हैं कि उन्हें भुगतान समय से तथा उचित रूप में प्राप्त होता है। प्रायः बैगाओं को उनके श्रम का समय से तथा वास्तविक मूल्य प्राप्त नहीं होता है और वे प्रायः आर्थिक रूप से शोषण के शिकार होते रहते हैं।

तालिका संख्या 5.15

संवैधानिक ज्ञान की स्थिति

क्रं.	स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	21	7.0
2	नहीं	279	93.0
	योग -	300	100.00

तालिका संख्या 5.15 में बैगा आदिवासियों को उनसे सम्बन्धित तथा सामान्य संवैधानिक ज्ञान की स्थिति जानने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है । तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के 93.0 प्रतिशत बैगाजनों को किसी प्रकार की संवैधानिक जानकारी नहीं है। मात्र 7.0 प्रतिशत बैगाओं को ही किंचित मात्र संवैधानिक अधिकारों तथा सामान्य नियमों/ कानूनों का ज्ञान है ये वे बैगा हैं जो क्षेत्रीय प्रभुत्य वाले लोगों की सेवा आदि से जुड़े होते हैं तथा सामान्य वार्ता के दौरान वे कानूनों/ नियमों आदि के बारे में सुन लेते हैं। ये बैगा कुछ पढ़े-लिखे होते हैं। जिन बैगाओं को संवैधानिक ज्ञान नहीं हैं उनके कारणों में अशिक्षा एक अहम कारण है।

अध्याय : नलकम्

आदिवासी बैगाओं की रोजगारोन्मुख योजनाएं

6. आदिवासी बैगाओं की रोजगारोन्मुख योजनाएं

पूर्व अध्याय में आदिवासी बैगाजनों की व्यावसायिक समस्याओं की विवेचना की गयी है।

प्रस्तुत अध्याय में जनजातियों के लिए चलायी जा रही योजनाओं और बैगा जनजाति को सरकार द्वारा मिलने वाली सुविधाओं की चर्चा की गई है।

मध्य प्रदेश की जनजातियों के विकास हेतु विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत सात विकास अभिकरणों (छत्तीसगढ़ सहित) का गठन किया गया है ताकि इन अभिकरणों के माध्यम से आदिम जनजाति समूहों का समुचित रूप से विकास किया जा सकें। अभिकरणों के नाम, मुख्यालय एवं उनसे संबंधित आदिम जनजाति समूहों का विवरण निम्नवत है :-

तालिका संख्या 6.1

जनजातियों के विकास हेतु गठित अभिकरण

क्र.	अभिकरण का नाम	स्थापना वर्ष	मुख्यालय/ कार्यक्षेत्र
1	अबुझमाड़िया विकास अभिकरण	1978-79	नारायणपुर, जिला बस्तर
2	बैगा विकास अभिकरण	1978-79	डिंडौरी, मंडला,शहडोल, विलासपुर, राजनांदगाँव एवं बालाघाट
3	सहरिया विकास अभिकरण	1978-79	ग्वालियर,मुरैना,भिण्ड, दतिया, शिवपुरी गुना
4	पहाड़ी कोरवा विकास अभिकरण	1978-79	जशपुर तहसील (रायगढ़), अम्बिकापुर सरगुजा, कोरबा
5	भारिया विकास अभिकरण	1978-79	पातालकोट, तामिया तहसील जिला छिंदवाड़ा

6	कमार विकास अभिकरण	1981-82	मैनपुर, छुरा एवं धमतरी तहसील के नगरी सिहावा जिला रायपुर
7	बिरहोर विकास अभिकरण	1989-90	जशपुर सर्वतोमुखी अभिकरण जशपुर

(स्रोत : सिन्हा, अनिल किशोर, मध्य प्रदेश की जनजातियाँ,)

भारत सरकार द्वारा इन अभिकरणों को विशेष पिछड़े जनजाति समूहों के सर्वांगीण विकास के लिए अनुदान दिया जाता है। जिन अभिकरणों का कार्यक्षेत्र एक से अधिक जिलों के अन्तर्गत है, उस अभिकरण की जिला इकाइयां स्थापित की गई है। यह जिला इकाइयां सम्बन्धित अभिकरण के माध्यम से उस क्षेत्र की आदिम जनजाति के लिए योजनाएं संचालित करती हैं। यह योजनाएं प्रत्येक जनजाति विकास के लिए उनकी आर्थिक-सामाजिक एवं शैक्षणिक (साक्षरता), स्वास्थ्य, वृक्षारोपण, निर्माण कार्य से सम्बन्धित होती है।

आर्थिक विकास कार्यक्रम योजना के अन्तर्गत विशेष पिछड़े जनजाति समूह कार्यक्रम में इन जनजाति समूह को एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले अनुदान के अलावा उन्हें अभिकरण मद से भी अतिरिक्त अनुदान स्वीकृत किया जाता है। इस प्रकार उक्त अनुदान की राशि 80 प्रतिशत हो जाती है और ऋण का भार 20 प्रतिशत तक रहता है। योजना के तहत परिवार मूलक आर्थिक कार्यक्रम को प्राथमिकता प्रदान की जाती है ताकि लोगों को आमदनी में वृद्धि हो सकें तथा वे गरीबी रेखा से ऊपर उठ सकें।

साक्षरता का प्रतिशत इन समूहों में कम होने के कारण इस जनजाति समूह के बच्चों को प्राथमिक स्तर से ही पढ़ाई के प्रति आकर्षित किए जाने के लिए बच्चों को दो जोड़ी पोशाक और पढ़ने की सामग्री निःशुल्क दी जाती है।

आदिम जनजाति समूह क्षेत्र में पीने का साफ पानी उपलब्ध कराए जाने के लिए नलकूप/ पेयजल कूप अभिकरण के मद से निर्मित किये जाते हैं। इसके अलावा आवश्यक स्वास्थ्य सुविधा की दृष्टि से निःशुल्क दवाइयां और आयोडीन युक्त नमक भी दिया जाता है।

उन जनजाति समूह क्षेत्र में जहाँ पर वनों का क्षरण हुआ है अथवा अतिरिक्त वनरोपण या बाँस रोपण की आवश्यकता है, पशु आहार अथवा रेशम पालन के लिए विशेष प्रकार का वृक्षारोपण भी अभिकरण के द्वारा किया जाता है।

आदिम जनजाति समूह क्षेत्र में निस्तारी तालाब का निर्माण एवं पुराने तालाब का मरम्मत कार्य, बच्चों की पढ़ाई के लिए पाठशाला भवन एवं आश्रम शाखा का निर्माण, पहुँच मार्ग, सड़क, पुलिस एवं रपटा निर्माण कार्य अभिकरण के मद से किया जाता है।

इस प्रकार अभिकरण के मद से उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है जिसके माध्यम से आदिम जनजाति समूह का शैक्षणिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास हो सके। अभिकरणों को अनुदान कृषि, शिक्षा, पशुपालन आदि योजनाओं के लिए दिया जाता है।

6.2 म.प्र. शासन आदिम जाति कल्याण, जिला-डिण्डौरी द्वारा संचालित योजनायें -

1. उत्कृष्ट शिक्षा संस्थान योजना :-

उत्कृष्ट शिक्षा संस्थान अनुसूचित जाति व जनजाति के प्रतिभावान छात्र/छात्राओं को उत्कृष्ट स्तर की शिक्षा देने तथा उनके प्रावीण्य को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया है। इसकी स्थापना से विद्यार्थियों में शिक्षा द्वारा स्वयं पर पूर्ण विश्वास तथा उसमें निहित क्षमता जागृत हो सकेगी। उत्कृष्ट शिक्षा संस्थान में जिले के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाता है। इसके लिये जिला स्तर में अलग-अलग बालक एवं कन्या शिक्षा केन्द्र स्थापित किये गये हैं। वर्तमान में इसे विकास खण्ड स्तर पर भी संचालित किया जा रहा है। इन छात्रावासों में प्रवेश हेतु कक्षा 9वीं से 12वीं तक छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाता है। इन छात्रावासों में वे समस्त सुविधायें उपलब्ध करायी जायेंगी, जो सामान्य छात्रावास में उपलब्ध करायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त लायब्रेरी, कम्प्यूटर, विशेष कोचिंग, पौष्टिक आहार व मनोरंजन एवं खेलकू की व्यवस्था इत्यादि सुविधायें

भी छात्रावास में उपलब्ध होंगी। छात्र-छात्राओं को 200 रूपये स्टेशनरी हेतु 500 रूपये प्रतिमाह भोजन हेतु 1000 रूपये पौष्टिक आहार हेतु छात्र-छात्राओें को दिया जाता है। वर्तमान में जिले में 3 कन्या एवं 3 बालक उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र संचालित हैं। योजना के अनुसार सम्पूर्ण सुविधा उपलब्ध कराई गई है।

2. आश्रम शालायें

जिले के वनांचल एवं दूरवर्ती क्षेत्रों में जहाँ शैक्षणिक सुविधा उपलब्ध नहीं है वहाँ आश्रम शाला की व्यवस्था की जाती है। इन आश्रमों में कक्षा पहली से कक्षा आठवीं तक की कक्षायें संचालित की जाती हैं। सभी छात्र-छात्राओं एवं शिक्षकों के लिये आवास की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाती है। इन शालाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाता है। आश्रम में प्रवेश हेतु एक समिति गठित की जाती है तथा इस समिति की अनुशंसा के आधार पर छात्र-छात्रायें प्रवेशित होते हैं। जिला कलेक्टर द्वारा प्रवेश समिति की अनुशंसा पर स्वीकृति आदेश जारी किया जाता है। आश्रम शालाओं में अध्ययनरत छात्रों को 350 रूपयें एवं छात्राओं को 360 रूपये प्रतिमाह शिष्यवृत्ति दी जाती है। जिले में संचालित आश्रम शालाओं का समय-समय पर सहायक आयुक्त एवं अन्य सक्षम अधिकारियों द्वारा निरीक्षण किया जाता है। जिले में 33 आश्रम संचालित हैं जिनमें योजना के अनुरूप सुविधायें दी जा रही हैं।

3. आदिवासी विद्यार्थियों के लिए क्रीडा परिसर

इस योजना के अंतर्गत आदिवासी छात्र-छात्राओं की शारीरिक क्षमता में वृद्धि कर उनकी खेल प्रतिभा को विकसित करना है जिससे वे राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिये सक्षम हो सकें। परिसर में प्रवेश लेने के लिये उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिये अधिकतम आयु 18 वर्ष निर्धारित है। क्रीडा परिसर में प्रवेशित छात्रों को 350 रूपये एवं छात्राओं को 360 रूपये मासिक दर से 10 माह की शिष्यवृत्ति प्रदान की जाती है। गणवेश हेतु प्रत्येक छात्र-छात्राओं को 305 रूपये वार्षिक दिये जाते हैं। डिण्डौरी जिले में विकासखण्ड शहपुरा में एक कन्या क्रीडा परिसर संचालित है जिसमें

7 विधायें कबड्डी, हैण्डबाल, एथलेटिक्स, खो-खो, बालीबाल, हॉकी एवं फुटबाल संचालित हैं। वर्ष 2004-2005 में परिसर की 41 छात्रायें राज्य स्तरीय क्रीडा स्पर्धा एवं 4 छात्रायें हैण्डबाल तथा 2 छात्रायें खो-खो स्पर्धा में सम्मिलित हुई हैं। जिला स्तर की 3 छात्राओं तथा 21 बालक राज्य स्तर की प्रतियोगिताओं में सम्मिलित हुये।

4. अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये छात्रावास योजना

इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्र-छात्राओं को पढ़ाई के साथ-साथ रहने की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए प्री-मेट्रिक तथा पोस्ट-मेट्रिक स्तर के छात्रावास संचालित हैं। इनमें कक्षा 6 से 10 प्री-मेट्रिक छात्रावास में तथा उससे उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को पोस्ट-मेट्रिक छात्रावास में प्रवेश दिया जाता है। शिष्यवृत्ति की स्वीकृति सहायक आयुक्त/ शाला के प्राचार्य/ जिला संयोजक तथा विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी द्वारा दी जाती है। छात्रावास में प्रवेश हेतु इच्छुक छात्र/ छात्राओं से आवेदन पत्र प्राप्त किये जाते हैं एवं चयन समिति की अनुशंसा के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। शिष्यवृत्ति के अतिरिक्त प्रत्येक छात्र-छात्राओं को राज्य छात्रवृत्ति कक्षा 9वीं एवं 10वीं के लिये क्रमशः 30 रूपये एवं 40 रूपये तथा कक्षा 6वीं से 8वीं के लिये छात्रों के लिए 20 रूपये तथा 30 रूपये प्रतिमाह दी जाती है। इस योजना के तहत जिले में पोस्ट मैट्रिक छात्रावास वर्ष 03-04 से संचालित है।

5. छात्रगृह योजना

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्र-छात्राओं को छात्रावास में प्रवेश नहीं मिल पाने के कारण इन्हें छात्रगृह योजना का लाभ दिया जाता है क्योंकि ग्रामीण अंचलों से आने वाले इन वर्गो के विद्यार्थियों को आवास की तुरन्त आवश्यकता होती है। इसकी स्थापना एवं संचालन व्यय तथा सुविधाओं की स्वीकृति तभी संभव है जब कम से कम 5 छात्र, छात्रगृह में रहने को तैयार हों तथा उनके द्वारा लिखित आवेदन पत्र प्रस्तुत किया गया हो। इस योजनांन्तर्गत छात्रो को बिजली तथा पानी के लिए 25 रूपये प्रतिमाह प्रति छात्र की दर से खर्च

शासन की ओर से वहन किया जाता है। इस योजना का संचालन किराया का मकान लेकर किया जाता है।

6. अनुसूचित जनजाति अनुसूचित जाति के छात्र/ छात्राओं के कल्याणार्थ छात्रवृत्ति योजना की जानकारी

डिण्डौरी जिले में आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र के अंतर्गत अनुसूचित जाति/ जनजाति के छात्र-छात्राओं के शैक्षणिक विकास हेतु म.प्र. शासन के द्वारा विभिन्न प्रकार के छात्रवृत्ति योजना एवं अन्य योजना का क्रियान्वयन किया जाता है जिससे अनुसूचित जाति/ जनजाति के छात्र-छात्राओं को अधिक लाभ प्राप्त हो सके।

(अ) प्रावीण्य छात्रवृत्ति

इस योजना के अंतर्गत कक्षा 5वीं एवं 8वीं में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं को पुरूस्कार स्वरूप प्रावीण्य छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है जो उस छात्र-छात्रा को तीन वर्ष तक नियमित उत्तीर्ण होने पर प्रदान की जाती है। छात्र-छात्रा को प्रत्येक वर्ष उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। वर्ष 2003-04 में 22 छात्राओं को 9600 रूपये का वितरण किया गया है। कक्षा 5वीं उत्तीर्ण कर 6वीं में प्रवेश लेने पर 400 रू0 प्रतिवर्ष, तीन वर्ष तक संस्था में नियमित अध्ययन करने पर। कक्षा 8वीं उत्तीर्ण कर 9वीं में प्रवेश लेने पर 500 रूपये प्रतिवर्ष, तीन वर्ष तक संस्था में नियमित अध्ययन करने पर एवं प्रत्येक वर्ष उत्तीर्ण होने पर।

(ब) राज्य छात्रवृत्ति

वर्ष 2004-05 में अनुसूचित जनजाति वर्ग के अंतर्गत कक्षा 6 से 10 तक छात्रों को 950000 रूपये कक्षा 1 से 5 के छात्रों को 30500 रूपये वितरित किये गये।

तालिका संख्या 6.2.1

छात्रवृत्ति का विवरण

क्रं.	योजना का नाम	दर	अवधि	वितरण अवधि	भुगतान	पात्रता
1	2	3	4	5	6	7
1	राज्य छात्रवृत्ति कक्षा 1 से 5	15 रूपये प्रतिमाह	10 माह	प्रथम किश्त जनवरी से सितम्बर, द्वितीय किस्त अक्टूबर से मार्च	बैंक के माध्यम	अनुविभागीय अधिकारी राजस्व द्वारा जारी स्थाई जाति प्रमाण पत्र
2	राज्य छात्रवृत्ति कक्षा 6 से 8 राज्य छात्रवृत्ति कक्षा 9 से 10	20 रूपये प्रति माह प्रति छात्र 30 रूपये प्रति छात्र	10 माह	प्रथम किश्त जन से सितम्बर द्वितीय किश्त अक्टूबर से मार्च	बैंक के माध्यम	शैक्षणिक नियमित संस्था में नियमित अध्ययनरत होना अनिवार्य है

(स) पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति :-

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/ महाविद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं को कक्षा 11वीं एवं 12वीं एवं स्नातक/ स्नातकोत्तर/ तकनीकी प्रशिक्षण हेतु यह छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। वर्ष 2004-05 में अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए 1873475 रूपये वितरित किये गये।

तालिका संख्या 6.2.2

पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति का विवरण

क्र.	योजना का नाम	दर		अवधि	वितरण अवधि	भुगतान	पात्रता
		छात्र	छात्रा				
1	2	3	4	5	6	7	8
1	पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति कक्षा 11 से 12 वीं	140 रूपये प्रतिमाह	140 रूपये प्रतिमाह	10 माह	प्रथम किश्त जनवरी से द्वितीय किस्त अक्टूबर से मार्च	बैंक के माध्यम से	अनुविभागीय अधिकारी राजस्व द्वारा जारी स्थायी जाति प्रमाण पत्र
2	स्नातक	185 रू0 प्रतिमाह	185 रू0 प्रतिमाह	10 माह	प्रथम किस्त जनवरी से सितम्बर, द्वितीय किस्त अक्टूबर से मार्च	बैंक के माध्यम से	आय प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना।
3	स्नातकोत्तर	330 रू0 प्रतिमाह	330 रू0 प्रतिमाह	10 माह	प्रथम किस्त जनवरी से सितम्बर, द्वितीय किस्त अक्टूबर से मार्च	बैंक के माध्यम से	संस्था में नियमित अध्ययनरत होना अनिवार्य है।

(द) मेधावी छात्र छात्रवृत्ति :-

इस योजना के अंतर्गत माध्यमिक शिक्षा मण्डल भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा 10वी एवं 12वीं की बोर्ड परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को मेरिट लिस्ट के आधार पर प्रत्येक छात्र-छात्राओं को 1000 रूपये नेहरू पुरूस्कार स्वरूप प्रदान की जाती है। पुरूस्कार के साथ ही प्रशस्त पत्र भी प्रदान किया जाता है। वर्ष 2003-04 में 19 छात्रों को 19000 रूपये का पुरूस्कार वितरित किया गया है।

(य) विशेष अभियान छात्रवृत्ति योजना

इस योजना के अंतर्गत चयनित अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थी को विदेशों में विशिष्ट क्षेत्रों में स्नातकोत्तर, पाठ्यक्रमों/ शोध उपाधि (पी.एच.डी.) एवं शोध उपाधि उपरान्त शोध कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये अनुसूचित जाति के पांच एवं अनुसूचित जनजाति के पांच छात्रों को प्रतिवर्ष वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

(व) कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना

इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति की छात्राओं को शैक्षणिक संस्थाओं में अध्ययन करने पर प्रोत्साहन स्वरूप निम्नलिखित दर से राशि प्रदान की जाती है :-

1. कक्षा 5वीं उत्तीर्ण कर 6वीं में प्रवेश करने वाली कन्याओं को 500 रूपये ।
2. कक्षा 8वीं उत्तीर्ण कर 9वीं में प्रवेश लेने वाली कन्याओं को 1000 रूपये।
3. कक्षा 10वीं उत्तीर्ण कर 11वीं में प्रवेश लेने वाली कन्याओं को 2000 रूपये।

अनुविभागीय अधिकारी राजस्व द्वारा जारी स्थाई जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना। प्रोत्साहन राशि की पात्रता केवल उन्हीं छात्राओं को होगी जिन के अभिभावक/ पालक आयकरदाता नहीं है। शैक्षणिक संस्था में छात्रों को नियमित अध्ययनरत होना आवश्यक है।

(7) साइकिल प्रदाय योजना

कक्षा 9वीं में प्रवेशित छात्राओं को साइकिल प्रदाय प्रोत्साहन योजना का प्रारंभ किया गया है। अनुसूवित जाति/ अनुसूचित जनजाति/ पिछड़ा वर्ग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार की छात्राओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

(8) परीक्षा शुल्क की प्रतिपूर्ति

माध्यमिक शिक्षा मण्डल मध्य प्रदेश द्वारा आयोजित बोर्ड परीक्षाओं में बैठने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को परीक्षा शुल्क में माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा छूट प्रदान की जाती है जिसकी प्रतिपूर्ति विभाग द्वारा की जाती है।

(9) व्यावसायिक परीक्षा मण्डल द्वारा आयोजित पी.पी.टी., पी.ई.टी. एवं अन्य व्यावसायिक परीक्षाओं में बैठने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को परीक्षा शुल्क में छूट प्रदान की जाती है जिसकी प्रतिपूर्ति विभाग द्वारा की जाती है।

(10) सिविल सेवा परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने पर प्रोत्साहन राशि

संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली सिविल सेवा परीक्षा तथा मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली राज्य सिविल सेवा परीक्षा में विभिन्न स्तरों में सफल होने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति वर्ग के अभ्यर्थियों को प्रोत्साहन राशि देने की योजना लागू की गई है।

प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 40000 रूपये, मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण होने पर 60000 रूपये, चयन होने पर 50000 रूपये की राशि प्रदान की जाती है। प्रोत्साहन राशि प्राप्त करने की पात्रता के लिये आय सीमा बंधन नहीं है। मध्य प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सिविल सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के सफल प्रतियोगी को जिनके माता-पिता की वार्षिक आय 1.20 लाख से अधिक न हो को प्रोत्साहन राशि देय है। इस हेतु प्रारंभिक परीक्षा में 20000 रूपये, मुख्य परीक्षा में 30000 रूपये एवं चयन होने पर 25000 रूपये की राशि प्रदान की जाती है। इस योजना का लाभ लेने हेतु जिले के सहायक आयुक्त जिला संयोजक से संपर्क किया जा सकता है।

(11) निःशुल्क पाठ्य पुस्तकों का प्रदाय

अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजातियों का साक्षरता प्रतिशत बढ़ाने हेतु कक्षा 1 से कक्षा 5 तक अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को निःशुल्क पाठ्यु पुस्तकें तथा 6 से 8 तक अध्ययनरत सभी वर्ग की बालिकाओं को निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराई जाती हैं।

(12) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए बुक बैंक योजना

इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के व्यावसायिक पाठयक्रम में अध्ययनरत विद्यार्थी को पुस्तकों के सेट्स एवं पुस्तकों के रख-रखाव की आलमारी प्रदान की जाती है। प्रत्येक दो विद्यार्थियों पर पुस्तकों का एक सेट दिया जाता है।

(13) गणवेश प्रदाय योजना

इस योजनांतर्गत अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति की ऐसी कन्याओं को जो प्रायः प्राइमरी पाठशाला छोड़ देती हैं जिसके कारण प्रदेश में अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति का महिला साक्षरता प्रतिशत अत्यन्त कम है। अतः विकासखण्ड स्तर पर कक्ष 1 से 4 तक अध्ययनरत कन्याओं को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन करने हेतु राज्य शासन द्वारा गणवेश प्रदाय की जाती है।

(14) मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम

इस योजना के अंतर्गत स्कूलों में छात्रों की दर्ज संख्या बढ़ाने के उददे्श्य से विभागीय प्राथमिक शालाओं में अध्ययनरत छात्र/ छात्राओं को भरपेट भोजन (रोटी अथवा चावल और दाल सब्जी) कराया जाता है। इस योजना का क्रियान्वयन फरवरी 2004 से किया गया है । इसमें कक्षा 1 से कक्षा 5 तक नियमित उपस्थित रहने वाले विद्यार्थियों को दोपहर में गर्म भोजन दिया जाता है। योजना को क्रियान्वयन की जिम्मेदारी शाला स्तर पर गठित समिति की होती है। जिला कलेक्टर द्वारा खाद्य विभाग के माध्यम से प्रति स्कूल दिवस के मान से खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है।

(15) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान

इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति वर्ग के अभ्यर्थियों को रोजगार समस्या के निदान हेतु तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने हेतु सहायता प्रदान

की जाती है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेशित छात्रों को 250.00 रूपये प्रतिमाह की दर से शिष्यवृत्ति प्रदान की जाती है। इस योजनांतर्गत जिले के शहपुरा विकास खण्ड में मिनी आई.टी.आई. संचालित की जा रही है।

(16)मान्यता प्राप्त अशासकीय संस्थाओं को अनुदान

अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक विकास हेतु यह योजना संचालित है। इसके अंतर्गत विभागीय अनुदान नियम 1985 के अनुसार पात्रता रखने वाली ऐसी पंजीकृत अशासकीय संस्थाओं-को जो अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के कल्याण के कार्यक्रम से जुडी हैं, उन्हें अनुदान प्राप्त करने की पात्रता है। जिले में विभाग द्वारा 2 संस्थाओं को अनुदान प्रदान किया जाता है जिनमें मध्य प्रदेश वनवासी सेवा मण्डल द्वारा 13 प्राथमिक शाला, 01 माध्यमिक शाला, 03 छात्रावास, 02 औषधालय एवं 01 क्षेत्रीय कार्यालय संचालित है।

(17)स्थाई जाति प्रमाण पत्रों का लेमनेशन

अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के छात्रों को जाति प्रमाण पत्र प्राप्त करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अतः यह व्यवस्था की गई है कि छात्रों से विद्यालय में आवेदन पत्र प्राप्त कर एक माह की समयावधि में जाति-प्रमाण पत्र का लेमनेशन करवाकर शाला में निःशुल्क वितरित कराये जायें ताकि प्रमाण पत्र अधिक समय तक सुरक्षित रह सकें।

(18)आदिवासी संस्कृति का परिरक्षण और विकास

आदिवासियों की मौलिक संस्कृति से जुड़ी हुई लोक कलावृत्तियों तथा लोकनृत्य, गीत और संगीत की मौलिक गुणवत्ता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से यह योजना लागू की गई है। इसमें निम्नांकित दरों से पुरूस्कार के रूप में अनुदान राशि दी जाती है :-

गैर शालेय नर्तक दल

प्रथम पुरूस्कार 500 रूपये, द्वितीय पुरूस्कार 350 रूपये, तृतीय पुरूस्कार 250 रूपये परियोजना प्रशासक एकीकृत आदिवासी विकास परिषद द्वारा दी जाती है।

शालेय /छात्रवासी नर्तक दल

प्रथम पुरूस्कार 400 रूपये, द्वितीय पुरूस्कार 300 रूपये, तृतीय पुरूस्कार 200 रूपये की राशि प्रदान की जाती है।

(19) युवाओं को सेना में भर्ती के पूर्व प्रशिक्षण योजना

अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति वर्ग के युवाओं को सेना में भर्ती के पूर्व बौद्धिक एवं शारीरिक विकास हेतु इस योजना के अंतर्गत इच्छुक पात्र उम्मीदवारों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण विभागीय क्रीडा परिसरों के माध्यम से दिया जाता है जिस पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय विभाग द्वारा वहन किया जाता है।

(20)विधि स्नातको को आर्थिक सहायता

इस योजना के अधीन अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के विधि स्नातकों को विधि व्यवसाय में सुप्रशिक्षित एवं स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने के लिये बार एसोसियेशन की अनुशंसा पर आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इस हेतु विभाग द्वारा परीक्षण पश्चात विधि स्नातकों को 200 रूपये प्रतिमाह की सहायता एक वर्ष के लिये स्वीकृत की जाती है।

(21)प्रशिक्षण सह उत्पादन कार्यक्रम योजना

इस योजना के अंतर्गत कम पढ़े लिखे अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के युवक/ युवतियों को तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रशिक्षण सह उत्पादन केन्द्रों के माध्यम से 1 वर्षीय व्यवसायी/ तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाता है। इस योजना का लाभ लेने हेतु कक्षा 5वीं उत्तीर्ण होना आवश्यक है। चयनित बालक/ बालिकाओं को प्रशिक्षण के दौरान क्रमशः 250 रूपये प्रतिमाह एवं 260 रूपये प्रतिमाह की राशि विभाग द्वारा दी जाती है। एक प्रशिक्षण केन्द्र जिला मुख्यालय में संचालित है जिसमें दो ड्रेस क्रमशः सिलाई एवं काष्ट कला में 12-12 सीट शासन द्वारा स्वीकृत की गई हैं।

(22)दाई प्रोत्साहन योजना

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसूति कार्य कराने वाले अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति के परिवार की महिलाओं को जो दाई का कार्य करती हैं को समुचित पारिश्रमिक प्राप्त न होने के कारण राज्य शासन द्वारा इस कार्य हेतु 25 रूपये की दर से प्रोत्साहन स्वरूप पारिश्रमिक राशि प्रदाय की जाती है।

(23) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति में शिक्षा प्रोत्साहन हेतु ग्राम पंचायतों को पुरूस्कार

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के बालक/ बालिकायें जो स्कूल जाने योग्य हैं, इनका शालाओं में शत-प्रतिशत प्रवेश किये जाने में पंचायतों की सहभागिता सुनिश्चित करने तथा इस दिशा में भूमिका निर्वहन तथा प्रशंसनीय कार्य करने वाली ग्राम पंचायतों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से यह योजना लागू की गई है। पुरूस्कार के लिये अर्हता पूर्ण करने वाली जिले की एक ग्राम पंचायत को 25000 रूपये की राशि पुरूस्कार स्वरूप प्रदान की जायेगी, जिनमें विशिष्ट सहयोग करने वाले कोई कार्यकर्ता एवं अन्य बिन्दुओं की जानकारी हेतु सहायक आयुक्त आदिवासी विकास डिण्डौरी से संपर्क स्थापित किया जा सकता है।

(24) मध्य प्रदेश अनुसूचित जाति और जनजाति (आकस्मिकता योजना) नियम 1995

अनुसूचित जाति और जनजाति (आकस्मिकता योजना) नियम 1995 का उद्देश्य ऐसे जरूरतमंद अनुसूचित जनजाति अथवा अनुसूचित जाति परिवारों को तुरंत सहायता व राहत पहुँचाना है जो सवर्ण वर्ग के किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा उत्पीडित हैं। ऐसे पीड़ित परिवारों को तत्काल राहत सहायता प्रदान की जाती है। राहत एवं सहायता जिला दण्डाधिकारी

द्वारा विस्तृत प्रतिवेदन प्राप्त होते ही तत्काल विभिन्न अत्याचारों के लिये पीड़ित व्यक्तियों, उनके परिवार या आवश्यकतानुसार धनराशि उपलब्ध कराई जाती है।

तालिका संख्या 6.2.3

अनुसूचित जाति और जनजाति आकस्मिकता योजना

क्र	अपराध का नाम	राहत की न्यूनतम राशि
1	2	3
1	अखाद्य या घृणात्मक पदार्थ पीना या खाना	प्रत्येक पीडित व्यक्ति को अपराध के स्वरूप और गंभीरता को देखते हुए रूपये 25000 या उससे अधिक
2	किसी महिला की लज्जा भंग करना	प्रत्येक पीड़िता को रूपये 50000 चिकित्सा जांच के पश्चात 50 प्रतिशत का भुगतान व शेष 50 प्रतिशत का भुगतान विचारणा की समाप्ति पर।
3	किसी को निवास स्थान छोड़ने पर मजबूर करना	स्थल बहाल करना, प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति को 25000 रूपये का प्रतिकार तथा सरकार के खर्चे पर मकान का पुनः निर्माण । यदि नष्ट किया गया हो तो पूरी लागत का भुगतान
4	किसी लोक सेवक के हाथों उत्पीड़न	उठाये गये नुकसान या हानि का पूरा प्रतिकार। 50 प्रतिशत का भुगतान जब आरोप पत्र न्यायालय को भेजा जाए और 50 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्ध होने पर।
5	हत्या/ मृत्यु (क) परिवार का न कमाने वाला सदस्य (ख) परिवार का कमाने वाला सदस्य	 प्रत्येक मामलें में कम से कम 100000 रूपये। 75 प्रतिशत पोस्टमार्टम के पश्चात और 25 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्ध होने पर। प्रत्येक मामलें में कम से कम 200000 रूपये। 75 प्रतिशत पोस्टमार्टम के पश्चात और 25 प्रतिशत निचले न्यायालय में दोष सिद्ध होने पर।
6	रोजगार से संबंध साधन/ औजार /मशीन /इंजन तथा बैलगाड़ी आदि नष्ट किया जाना	शासकीय व्यय पर नई मशीनरी/ औजार/ समान उपलब्ध कराया जायेगा। यदि टूट-फूट हुई हो तो मरम्मत कराई जाएगी।

उपरोक्त सभी योजनाओं के अतिरिक्त प्रधानमंत्री ग्रामोदय ग्रामीण योजना, राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना, इंदिरा आवास योजना, आवास उन्यन योजना, सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना व राजीव गांधी खाद्यान्न सुरक्षा मिशन आदि के द्वारा भी आदिवासियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जा रही है।

महिला एवं बाल विकास विभाग भी विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों के कल्याण हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन शासन द्वारा किया जा रहा है। इनमें कुछ प्रमुख योजनाएँ निम्नवत हैं :-

1. आयुष्मति योजना

यह योजना 1 नवम्बर 1991 से प्रदेश के सभी जिला अस्पतालों में लागू है। यह योजना विकासखण्ड स्तरीय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों/ सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में भी है। इसका उद्देश्य गरीब वर्ग की ग्रामीण भूमिहीन महिलाओं के इलाज की विशेष सुविधा व देखभाल करना है ताकि वे जल्दी स्वस्थ्य हो सकें। इसमें पात्रता किसी भी आयु की ग्रामीण भूमिहीन परिवार की बालिका/ महिला है। जिला अस्पतालों, विकासखण्ड स्तरीय अस्पतालों में ऐसी महिला के एक सप्ताह भरती होने पर चौर सौ रूपये तक व एक सप्ताह से ज्यादा भरती रहने पर एक हजार रूपये की विशेष दवा, टानिक, पौष्टिक खुराक मुहैया कराई जाती है। साथ आए एक परिचायक को दो समय मुफ्त भोजन व आवास सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

2. दत्तक पुत्री शिक्षा योजना

ग्रामीण एंव शहरी क्षेत्रों में जो बालिका आर्थिक समस्या के कारण अपनी शिक्षा जारी करने में असमर्थ हैं को अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए पांचवी कक्षा तक 30 रूपये प्रतिमाह और उसके बाद आठवीं तक 40 रूपये प्रतिमाह की सहायता दी जाती है। इसके अंतर्गत कोई भी व्यक्ति या संस्था एक या दो या दो से अधिक ऐसी बालिकाओं को दत्तक ले सकती हैं, जिन्होंने गरीबी के कारण स्कूल छोड़ दिया है या जो स्कूल में पढ़ रही हों, गरीबी के कारण जिनके स्कूल छोड़ देने की संभावना हो या ऐसी बालिकाएँ जो कभी स्कूल गई ही नहीं।

इसके लिए उन्हें प्राथमिक शाला की बालिका को 30 रूपये प्रतिमाह एवं माध्यमिक शाला की बालिका को 40 रूपये प्रतिमाह देना होगा।

3. बालिका समृद्धि योजना

इस योजना का उद्देश्य बालिकाओं के जन्म होने पर प्रोत्साहन देना है। 15 अगस्त, 1997 को या उसके पश्चात गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार में जन्मी प्रथम दो बालिकाओं को 500 रूपये की सहायता राशि उनके नाम से 18 वर्ष की उम्र तक के लिए बैंक में फिक्स कर जमा कर दी जाती है। 18 वर्ष की उम्र पूरी होने पर उन्हें नियमानुसार राशि प्रदान की जाती है।

4. राष्ट्रीय मातृत्व सहायता योजना

इस योजना का उद्देश्य गरीब परिवार की महिलाओं को प्रसव के समय चिकित्सीय एवं आर्थिक सहायता प्रदान करना है। इसके अंतर्गत पात्र हितग्राही महिला की आयु 19 वर्ष से अधिक होनी चाहिए। गर्भवती महिला गरीबी रेखा के परिवार परिवार की होनी चाहिए। सह सहायता राशि दो जीवित बच्चों के जन्म तक ही देय होगी। 15 अगस्त 1995 से लागू इस योजना से गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को गर्भावस्था के समय चिकित्सीय एव आर्थिक सहायता 500 रूपया होगी। जो प्रसव के 8-12 सत्ताह पूर्व एकमुश्त दी जाती है।

5. राष्ट्रीय किशोरी शक्ति योजना

किशारी बालिकाओं के स्वास्थ्य की देखभाल, संतुलित भोजन, आर्थिक स्वावलंबन हेतु प्रशिक्षण देने के लिए प्रदेश में अक्टूबर 2001 से ''राष्ट्रीय किशोरी शक्ति योजना'' आरंभ की है। किशोर बालिकाएँ भविष्य की माँ होती है। इसलिए उनकी दी जाने वाली

सेवाओ को विस्तारित एवं सुदृढ करने की आवश्यकता है, जिससे उनका उचित शारीरिक विकास एवं सामाजिक स्तर सुधारा जा सके।

पहुँचविहीन दुर्गम व पहाडी क्षेत्र वाले हरिजन एवं बैगा बाहुल्य बजाग विकास खंड ने जिले में महत्पूर्ण वृद्धि चिकित्सा के क्षेत्र मे दर्ज की है। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा क्षेत्र की स्वास्थ्य समस्याओं का बेहतर निराकरण जारी है।

राष्ट्रीय कार्यक्रम पल्स पोलियो टीकाकरण अभियान मे लक्षित समूह के बच्वो को पोलियो की दवा पिलाई गई। अधत्व निवारण के अन्तर्गत मोतियाबिंद के सफल आपरेशन कर प्रकाश ज्योति का पुन; संचार करने मे सफलता प्राप्त हुई। स्वास्थ्य जागरूकता अभियान कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम के तहत सफलतापूर्वक शिवरों का अयोजन कर आम जनता को राहत पहुँचाने का कार्य किया गया।

मध्य प्रदेश शासन द्वारा कृषि को आधुनिक जीविकोपार्जन उन्नत एवं बहुआयामी बनाने के उद्देश्य से कल्याणकारी योजनाओ के सफल क्रियान्वयन कृषि विभाग के कुशल मार्गदर्शन से कृषको को लाभ पहुँचाने हेतु किया जाता है। इस कार्य के लिए विस्तार कार्यकर्ता विकासखंड के गाँव-गाँव जाकर आदिवासी कृषको को योजनाओं की विस्तृत जानकारी दे रहे हैं, जिससे कृषक योजनाओ का समुचित लाभ उठा रहे है। म.प्र.शासन कृषि विभाग की कुछ जनकल्याणकारी योजनाएँ निम्नवत है:-

6. एकीकृत अनाज विकास कार्यक्रम (चावल)

यह कार्यक्रम केंन्द्र प्रवर्तित है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य म.प्र.मे चावल का उत्पादन उत्पादकता तथा क्षेत्र में वृद्धि करना है। कार्यक्रम के तहत विभिन्न कार्य योजना

जैसे प्रमाणित बीज वितरण, कृषक प्रशिक्षण, मिनिकिट बीज वितरण उन्नत कृषि यन्त्र, पौध संरक्षण यन्त्र आदि के द्वारा कृषको को विभिन्न स्तर पर अनुदान दिया जाता है।

7. तिलहन उत्पादन कार्यक्रम

इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रदेश मे तिलहन फसलो के उत्पादन एवं क्षेत्राच्छादन मे वृद्धि करना हैं। योजना मे खरीफ में मूँगफली, सोयाबीन, रमतिला एवं रबी में राई, सरसों और अलसी की फसलें शामिल है।

8. अन्नपूर्णा योजना

इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति एव अनुसूचित जनजाति के लघु एवं सीमांत कृषकों को जो विपुल उत्पादन देने वाली खाद्यान्न फसलों किस्मो के क्रय करने मे असमर्थ होते है, उन्हे उन्नत बीज उपलब्ध कराने हेतु अनुदान प्रदाय कर उत्पादकता एवं उत्पादन बढाकर उनकी आर्थिक स्थिति सुधारना हैं। योजना के अर्न्तगत बीज अदला-बदली एवं प्रमाणि बीजों पर 75 प्रतिशत अनुदान देय है।

8. राशन कार्ड

अन्त्योदय अन्न योजना के तहत बैगाजनो को राशनकार्ड या परिवार कार्ड के द्वारा अति न्यनतम दामों अन्न देने की सुविधा की गई हैं। बैगा जनजाति को मध्य प्रदेश की पिछडी जनजातियों की श्रेणी मे रखा गया है। बैगाजनो को दो प्रकार के कार्ड वितरित किए गये है।- गरीबी रेखा से नीचे वाले राशन कार्ड व अति गरीबी परिवार वाले राशन कार्ड। अति गरीब परिवारों को राशन कार्ड के द्वारा बिल्कुल कम दामों मे अन्न प्रदान किया जाता है। अति गरीब परिवारों के राशन कार्ड पीले रंग के व गरीबी रेखा से नीचे वालों के राशन कार्ड थोंडा हल्के हरे रंग के होते है।

तालिका संख्या 6.2.4

अति गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार को सुविधाए

सुविधा कार्ड	अन्न	मात्रा	मूल्य
पीला	चावल	20कि.ग्रा.	3रू.प्रति किलो
परिवार	गेहूँ	15कि.ग्रा.	2रू.प्रति किलो
कार्ड	चीनाी	5कि.ग्रा.	14रू.प्रति किलो
	मिट्टी का तेल	5लीटर	10रू.प्रति किलो

तालिका संख्या 6.2.5

गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार को सुविधाएँ

सुविधा कार्ड	अन्न	मात्रा	मूल्य
हरा	चावल	20कि.ग्रा.	6.50रू.प्रति किलो
परिवार	गेहूँ	15कि.ग्रा.	5.00रू.प्रति किलो
कार्ड	चीनी	5कि.ग्रा.	14.00रू.प्रति किलो
	मिट्टी का तेल	5लीटर	10.00रू.प्रति किलो

बैगाजनो का गेहूँ की अपेक्षा चावल इसीलिए ज्यादा दिए जाते है, क्योकि वे चावल ज्यादा पसंद करते है। गेहूँ ये लोग अन्य जातियो की अपेक्षा कम खाते है। चीनी व मिट्टी का तेल गरीबी व अति गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवारो को लगभग एक समान मूल्य मे दिया जाता है।

राशन कार्ड से मिलने वाली सुविधाओं को प्रत्येक ग्राम पंचायत के मध्य मे स्थापित सोसाइटी भवन के द्वारा वितरित किया जाता है। सोसाइटी भवन मे जिले या ब्लाक से अन्न लाकर उसमे डम्प कर दिया जाता है। ग्राम पंचायत पिपरिया का सांसाइटी भवन बौना गाँव मे है जहाँ से पिपरिया, जल्दा व बौना गाँव के बैगाजनो राशन ले जाते है। यह सोसाइटी भवन महीने में सोमवार व मंगलवार को खुलता है।

9. तेंदूपत्ता कार्ड

शासन ने बैगाजनो को ठेकेदारों के शोषण सें मुक्ति दिलाने के लिए तेंदूपत्ता तुडाई के समय काड की ब्यावस्था की है। तेंदूपत्ता तुडाई के पहले पड मुंशी यह कार्ड

बैगाजनो को वितरित कर देता है इस कार्ड पर वह प्रतिदिन के पैसा चढाते जाता है। बैगाजनो को हर वर्ष नया कार्ड दिया जाता है। तुडाई के एक या दो महीने बाद पैसा डिप्पी रेंजर या पालक अधिकारी या ठेकेदार द्वारा दिया जाता है। तेंदूपत्ता की तुडाई मई-जून के महीने में होती हैं। इसमे सभी बैगा स्त्री-पुरूष व बच्चे भाग लेते है बैगाजनो को तेंदूपत्ता गड्डी के रूप मे जमा करना पडता हैं एक गड्डी मे52 पत्ते होते हैं।100गड्डी की मजदूरी 45 रूपये होती है। प्रत्येक गाँव के बैंगाजन अपनी अपनी फड मे ही तेंदूपत्ता जमा करते है, वे फड के अलावा अन्य किसी दुकान मे तेंदूपत्ता नही बेच सकते ।

10. बचत खाता पास बुक

बैगाओं को साहूकारों, दुकानदारो के कर्जो से बचाने के लिए डिंडौरी जिले के प्रत्येक विकासखंड में सेंट्रल बैंक की शाखाएँ स्थापित है। इन शाखाओं से बैगाजनों की विभिन्न जरूरतो के लिए ऋिण दिया जाता है। अब बैगाजन साहूकारों व दुकानदारों की अपेक्षा बैंक से ऋण लेना ज्यादा उचित समझते है। सर्वेक्षण के लिए चयनित गाँव पचगांव रैयत, पिपरिया जल्दा एवं बौना के अनेकों बैगाजनों ने विकासखंड बजाग में स्थिति सेंट्रल बैंक की शाखा से ऋण लिया है। शोधकार्य के दौरान बजाग विकासखंड मे स्थिति सेंट्रल बैंक के मैनेजर ने बताया कि जिन बैगाओं को ऋण लेना होता है। वे सीधे हमारे पास आते है। उन्होने कहा कि ये लोग अधिकतर कृषि कार्य हेतु बैंलो, गायों, बकरी व लडका-लडकी की शादी आदि हेतु ऋण लेते है। सर्वेक्षित गांवो के कुछा बैगाजनो के उन्होने बैंक से ऋण लिया है,
उनका विवरण निम्नवत है-

तालिका संख्या 6.2.6

बैंक से प्रदत्त ऋण का विवरण

क्र.	हितग्राही का नाम	पिता का नाम	मूलधन
1.	समारू	मसकू	922.00
2.	यकलू	दौलू	520.00
3.	मानू	दौलू	410.00
4.	दसरू	मिठ्ठू	1720.00
5.	मंगली	कुकची	2005.00
6.	सुकलू	कोपी	1038.00
7.	सवनू	चमरू	1299.00
8.	समारू	लोहा	391.00
9.	जशोदी	मुढिया	254.00
10.	फलमवती	गुहरू	881.00
11.	वितरा	शेरसिंह	940.00
12.	करिमा	बिगरू	1230.00
13.	डुग्गुल	बंडरू	1710.00
14	दहू	मरदू	1536.00
15.	दलरू	फागू	1530.00
16.	कालूराम	महासिंग	1536.00
17.	रमलू	घनसिंह	166.00
18.	माहू	मंगल	127.00
19.	हारू	बोखा	449.00
20.	लौफलाल	परसाही	5014.00
21.	मानिक	नटरू	8764.00

11. आंगनवाडी केन्द्र

बजाग ब्लाक के सभी बैगा बाहुल्य गांवो मे आंगनवाडी केन्द्र स्थापित है जहाँ से आंगनवाडी महिलाओं को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ दी जाती है। प्रमुख आँगनवाडी क साथ एक आँगनवाडी सहायिका भी होती है जो बच्चो को आँगनवाडी केन्द्र मे खाने-पीने की व्यवस्था

करती है।आँगनवाडी सहायिका उसी गाँव की रहती है। बौना गाँव मे आँगनवाडी सहायिका यादव जाति की, जल्दा गाँव में आँगनवाडी सहायिका बैगा जाति की पिपरिया गाँव की आँगनवाडी सहायिका यादव जाति की व पचगांव रैयत की आँगनवाडी सहायिका बैगा जाति की है। आँगनवाडी केन्द्र मे बच्चों की नाप व टीकाकरण भी किया जाता है। बौना गाँव की आँगनवाडी अधीक्षिका ने आँगनवाडी केन्द्र से मिलने वाली कुछ सुविधाओं का विवरण दिया जो निम्नवत है-

(1) धाती माता (छःमाह के बच्चे बाली माँ) - 960 ग्राम दलिया प्रति सत्ताह दिया जाता है।

(2) 7 माह से 6 माह के बच्चे को - आँगनवाडी केन्द्र पर दलिया बना के खिलाया जाता है जिसकी ब्यावस्था आँगनवाडी सहायिका करती

(3) गर्भवर्ती महिलाओं को - 960 ग्राम दलिया प्रति सत्ताह+ दलिया के साथ दिया जाता है।

(4) गरीबी व अति गरीबी से नीचे वाले परिवार की गर्भवती महिलाओं को 500रूपये की सहायता प्रसव के पूर्व दी जाती है। इसका फार्म आँगनवाडी केन्द्र से ही भरा जाता है। फिर जिला या विकासखंड से मेटरनिटी बेनीफिट योजना के तहत महिला एवं बाल विकास अधिकारी चेक प्रदान करता है। इस चेक को सेंट्रल बैंक बजाग से भुनाया जाता है। और गर्भवती महिला को उक्त राशि प्राप्त होती है।

(5) गरीबी व अति गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार में जन्मी लडकियों के लिए 500 रूपये की राशि 18 साल तक के लिए बैंक में जमा कर दी जाती है, जो उनके शादी के काम आती है। इन लडकियो का फार्म आंगनवाडी केन्द्र से ही भरा जाता है और ग्राम पंचायत के सरपंच से पुष्टि कराई जाती है।

उपरोक्त सुविधाओं के अतिरिक्त आँगनवाडी केन्द्र से महिलाओं व बच्चो के लिए कुछ दवाइयां भी दी जाती है, जिनका विवरण निम्नवत है:-

तालिका संख्या 6.2.7

आँगनवाडी केन्द्र से दी जाने वाली दवाइयों का विवरण

क्र.	दवाइयाँ	रोग
1.	पैरासिटामाल टेबलेट	सर्दी, खांसी,बुखार आदि के लिए
2.	पैरासिटामाल सीरप	बच्चो के लिए
3.	मेबेन्डाजोल टेबलेट	बच्चो के लिए
4.	बैंजाइल बैंजोएट	खुजली के लिए
5.	पोविडोन	घाव के लिए मलहम
6.	सल्फासिटामाइड	आंख के लिए
7.	जेनेशियन वायलेट	चोंट के लिए
8.	टिंचर	चोंट के लिए
9.	पुदीना	गैस आदि के लिए
10.	एबजारवेंट काटन	रूई
11.	पट्टी	पांव मे बांधने के लिए

घने जंगलो, पहाडी व दुर्गम स्थानों में बसे बैगाजन विभिन्न सरकारी योजनाओ और सुविधाओं के कारण लगातार सभ्य समाज के सम्पर्क में आते जा रहे हैं। सभी बैगा गाँव में विजली की मुफ्त ब्यावस्था की गई है जिसके परिणाम स्वारूप अब कुछ लोग टीवी व टेपरिकार्ड भी चलाने लगे है। प्रत्येक गांवो मे सरकारी हैंडपम्प व कुएँ की ब्यावस्था की गई है, जिसके इनके परम्परागत जल श्रोतों पर निर्भरता घटी है। स्त्रियाँ अब अपने आप स्वास्थ्य केन्द्रो व आँगनवाडी केन्द्रो मे जाने लगी हैं बैंको में ऋण आसानी से मिलने के कारण बैगाजन अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए पशुओ को ज्यादा महत्व देने लगे है।

अधिकतर बैगाजन वनग्रामो मे बसे है जहाँ इनको खेती करने के लिए अस्थाय पट्टा दियाज जाता है। परन्तु पूर्व प्रधानमंत्री अटल विहारी बाजपेयी ने बन भूमि मे रहने वाले आदिवासियो के पारस्परिक अधिकारों को मान्यता देने का फैसला किया था। इस फैसले के

अनुसार 31 दिसम्बर 1993 के पहले से वन भूमि पर रहते आये करोडो आदिवासी परिवारों को उस वनभूमि पर रहने का कानूनी अधिकार मिल सकेगा। इससे बैगाजनों को काफी राहत महसूस है।

कई सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों का कहना है कि सरकार ने इन बैगाजनो को लालची बना दिया है। सरकार इनके लिए तमाम प्रकार की अल्पकालिकव दीर्घकालक योजनाएँ चलाकर इनकी जीवन शैली को छिन्न भिन्न कर दिया है। पहले सभी बैगाजन अत्मनिर्भर थे, परन्तु सरकार ने इनको विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ देकर इनकी आत्मनिर्भरता प्रकृति को पर निर्भर बना दिया है।

6.3 आदिवासी और नक्सलवाद

नक्सलवादी विचारधारा का उदय मूलतः पश्चिम बंगाल से हुआ है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विभिन्न विघटनों को अंतिम रूप नक्सलवाद है। 1967 मे माओवादी कम्युनिस्ट विचारधारा के कार्यकर्ताओं द्वारा पश्चिम बगाल के उत्तरी हिस्से नक्सलवाडी क्षेत्र (दार्जिलिंग जिला) मे प्रारम्भ किया गया आंदोलन नक्सलवाद के नाम से जाना जाता है। 1964 मे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का पहला विभाजन हुआ इसका था कम्युनिस्ट नेतृत्व का चीन के प्रति दृटिकोण। चीनी आक्रमण के समय कम्युनिस्ट पार्टी के दो गुटों के बीच वैचारिक मतभेद उभर आए। एक गुट चीन को आक्रामता नही मानकर उसके सभी दावो को सही मान रहा था। दूसरा गुट चीनी आक्रमण का विरोधी था। लिहाजा कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हो गया। चीनी आक्रमण के समर्थक परम्परावादी गुट 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' में बने रहे। परिवर्तन गुट ने स्वंय की पार्टी का नाम दिया 'भारत की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी' (सी.पी.आई.एम.)

1967 में कम्युनिस्ट पार्टी का दुसरा विभाजन हुआ। सी. पी. आई.(एम.) के अतिवादी गुट ने चारू मजूमदार, कानू सन्याल, सरोज दत्त आदि नेताओ के नेताओ में पूर्णतया माओवादी लाइन पर एक संघर्ष चलाकर जनवादी क्रान्ति के लिए छोडने को निर्णय लिया। तब कम्युनिरटों का एक दल आस्तित्व मे आया। इस गुट के नेताओं ने ग्रमीण क्षेत्रों में

जनवादी क्रान्ति का नारा देकर एक भूमिगत हिंसात्मक आन्दोलन चलाने का प्रयास किया। इन नेताओ व इनके संगठन को नक्सलवादी कहा गया। भूमि सुधार तथा राजतन्त्र में बदलाव के नारे देकर इन कम्युनिस्ट उग्रवादियों ने 1967 मे मार्च के महीने से पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले में नक्सलबाडी इलाके के किसानों को संगठित तथा हथियारबंद करना शुरू किया था गाँव-गाँव किसान समितियों व सशस्त्र दस्तों का गठन किया गया, जिन्होने जोतदारों के रिकार्ड जला दिए, जमीन व फसल पर कब्जा किया तथा गाँव के प्रशासन पर सशस्त्र अधिकार करने का प्रयास किया। 22 मई 1967 को नक्सलबाडी मे पुलिस व नक्सली आंतकियों की पहली मुठभंड हुई।

1967 मे शुरू हुआ यह नक्सली आन्दोलन वर्तमान समय में भारत के कई राज्यों में अपने पैर पसार चुका है। देश नौ राज्यों के 53 नक्सली हिंसा से खास प्रभावित माने जा रहे है। नक्सल गतिविधियाँ वाले राज्यों मे आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र,केरल मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ,बिहार, उडीसा, झारखंड व पश्चिमबंगाल है। उत्तर प्रदेश सहित कुछ राज्ये ऐसे है, जिनके कुछ जिले इस समस्या से प्रभावित है। केन्द्रीय गृहमंत्रालय से नक्सल प्रभावित इलाके में देशव्यापी साधन अभियान चलाने की योजना पर काम शुरू किया हैं। मंत्रालय ने नक्सल प्रभावित वाले सघन इलाके मे नक्सल विरोधी अभियानो के लिए पिछले वर्षो अन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश,बिहार व छत्तीसगढ जैसे राज्यों को करीब पाँच करोंड रूपये की मदद दी है। इससे राज्यों ने अपने अपने सुरक्षा बलों को आधुनिक हथियारों से लैस किया है। इस अभियान के बावजूद नक्सल संगठनों के पैर उसी तरह जगे हुए है।

योजना अयोग के सदस्य व पूर्व केन्दीय मंत्री सोमपाल कहते है। 'देश के अविकसित व मुख्य धारा से अलग छलग पडे पिछले जिलों के विकास के लिए और गंभीर प्रयास करने होगे। नक्सल समस्या से निपटने के लिए केवल बंदूक के मुकाबले बंदूक की रणनीति कारगर नही हो सकती। ''

वरिष्ठ मार्क्सवादी नेता हरकिशन सिंह सुरजित का मानना है कि सर्वहारा के कल्याण के नाम पर हिंसा की कोई राजनीतिक विचारधारा कारगर नही हो सकती। नक्सलवाद के नाम पर कई राज्यों में जातिवादीव लूटवादी तत्व भी सक्रिय है। इस तरह यह आन्दोलन लम्बे समय से दिशाहीनता का शिकार है।

नक्सलबाडी मे चारू मजूदार, कानू सन्याल व जंगल संस्थाल के नेतृत्व से शुरू हुआ यह आन्दोलन लगातार गुटो में बँटता रहा हैं यहाँ तक कि इनमें जानलेवा प्रतिस्पर्धा तक होती रही है। यह अन्त संघर्ष सबसे ज्यादा मुखरित बिहार में हुआ। इस दौर में करीब एक दर्जन गुट नक्सलवादी आन्दोलन से जुडे हैं मुख्यतौर पर पी. डब्लूजी. माओवादी कोआर्डीनेशन सेंटर (एससीसी) व सी.पी.आई. एम.एल. (लिबरेशन) नक्सली संगठनो में पीपुल्स वार को सबसे ज्यादा खरतनाक माना जाता है। इसकी सबसे ज्यादा पकड आन्ध्र प्रदेश में है।

आन्ध्र प्रदेश के 23 जिलों मे 20 में नक्सलवाद की समस्या फैल गई है। चन्द्रबाबू नायडू जिन्होने 'विकास पुरूष' भी कहा जाता है व जिन्हे जेड प्लस सुरक्षा भी मिली हुई, पर 'पीपुल्स वार' ने हमला करके यह जता दिया है कि उनके हाथ काफी लंबे है।

छत्तीसगढ के पूर्व मुख्यमंत्री अजित जोगी का कहना था कि नक्सली संगठन भोले-भाले गरीबो की मुसीबतों को और बढा रहे हैं। छत्तीसगढ जैसे गरीब राज्य का तमाम पैसा नक्सलवाद की समस्या से निपटने लग रहा है।

यद्यपि नक्सली गुटों के बीच आपसी लडाई भी तेज गई है। फिर भी मुख्यधारा के राजनीति दलो से आम जनता की बढती निराशा से नक्सल जैसे अतिवादी संगठनों को आक्सीजन मिल जाती हैं। केंन्द्रीय ग्रह मंत्रालय की सबसे बडी चिंता मध्य प्रदेश व

आन्ध्र प्रदेश के नक्सल प्रभाव वाले इलाको में हथियार वंद महिला कामरेडों की बढती तादाद भी है।

"सत्ता बंदूक की नली से निकलता है।" इस सूत्र वाक्य के सहारे आगे बढने वाला यह आन्दोलन एक तरह से अराजकता का शिकार है। दशको से चल रहा सशस्त्र संघर्ष थक- हार सा चुका है। लेकिन इसका प्रभाव क्षेत्र बढना भारत जैसे एक लोकतांत्रिक देश के लिए गम्भीर चिंता का विषय तो है ही।

मध्य प्रदेश के तीन आदिवासी जिलो मे आज नक्लसवाद सरकार के लिए चुनौती बन कर उभरा है। जिसमें आंतकवाद के नाम से नई ब्यावस्था को जन्म देने का संकल्प है यह नक्सली सरकार की दृष्टि से आंतकवादी हैं। ता आदिवासियों के लिए मसीहा बनकर अवतरित हुआ है । आज ये प्रजातांत्रिक प्रशासन की किरकरी बने हुए है।

तालिका संख्या 6.3.1

नक्सलवाद से प्रभावित राज्य

क्र.	राज्य	प्रभावित जिले	प्रमुख संगठन
1.	महाराष्ट्र	गढचिरौली, चन्द्रपुर	पिपुल्स वार ग्रुप
2.	छत्तीसगढ	बस्तर, कांकेर, दंत्तेवाडा, राजनांदगांव ,कवर्धा सरगुजा , और जशपुर	पिपुल्स वार ग्रुप
3.	आन्ध्र प्रदेश	खम्मम, वारगंल, करीमनगर, निजामाबाद, आदिलाबाद, महबूबनगर, नालगोंडा, मेडक, अनंतपूर, कुरनूल, ईस्ट, गोदावरी, विशाखापटनम, विजयनगरम, श्रीकाकुलम, और गुंटूर	पिपुल्स वार ग्रुप
4.	उडीसा	मलकानगिरी,रायगडा, कोरापुट, गजपति, नौरंगपुर, और मयूरभंज	पिपुल्स वार ग्रुप
5.	मध्य प्रदेश	बालाघाट, मंडला और डिंडौरी	पिपुल्स वार ग्रुप
6.	झांरखंड	पलामू, छतरा, गढवाा, हजारीबाग,	एमसीसी सबसे

		धनबाद बोकारो, दुमका, लोहारदग्गा और रांची	खतरनाक सीपी.एल .एम.रेड फ्लैग, सीपाआई एल एल लिबरेशन
7.	पश्चिम बंगाल	मिदनापुर, पुरूलिया, बांकुडा	पीपुल्स वार ग्रुप. एमसीसी
8.	बिहार	पटना,औरंगाबाद, गया, जहानाबाद, रोहतास, बक्सर,सहरसा, खगडिया, बाँका और जमुई	एमसीसी, सीपीआई (एम.एल.) पीपुल्स वार ग्रुप, सीपीआई (एम.एल.) जनशक्ति
9.	उत्तर प्रदेश	गाजीपुर, मऊ, वाराणसी, देवरिया और मिर्जापुर	सीपीआई एम.एल.

जगतप्रसिद्ध " कान्हा राष्ट्रीय उद्यान" के एक बडे भाग पर जून 1990 मे नक्सलियों ने जब आग लगा दी, तो पता चला कि नक्सली मंडला तक पहँच चुके है। मंडला मे ज्यादातर छह दलम सक्रिय है. जिनमे अनेक महिलाएँ भी है। बंदी बनाए गए नक्सलियों में ज्यादातर आदिवासी है। इससे अभास होता है कि "शोषण के विरूद्ध शस्त्र" का सिद्धान्त कुछ स्थानीय युवकों के मन को लुभा रहा है। मंडला में नक्सलियों ने अपनी गतिविधियाँ मुख्यतः उन्ही क्षेत्रों मे सीमित रखी जिन, क्षेत्रो में सुगमता से आवागमन संभव नही है।

मंडला का विश्व प्रसिद्ध कान्हा राष्ट्रीय उद्यान 1995 में गर्मियों में दो महीनो तक लगातार जलता रहा। प्रदेश का बन विभाग नक्सलियो के सामने समर्पित मुद्रा मे था। यह आग कोंडापल्ली सीतारमैया के नेतृत्व मे लगाई गयी थी। इस नक्सलवादी धडे ने मार्च-अप्रैल मे ही वन अधिकारियो को चेतावनी दी थी कि कान्हा की सीमा मे आने वाले वनग्रामो के लोगो का जंगल में मवेशी चराने की अनुमति दी जाए, शिकार करने दिया जाए तथा लकडी काटने की मंजूरी भी मिले। वन विभाग के अधिकारियों ने इस चेतावनी की सूचना विभाग को भेजी थी, लेकिन विभाग नही चेता। इसी धडे के बस्तर के कांकेर क्षेत्र में आदिवासी को उकसाकर एक लाख पेड कटवाए थे। मंडला जिले के आदिवासीी नक्लसवादियों का "दादा" या "वाचमेन" कहते है। यहाँ भी पहले आदिवासी युवको को प्रशिक्षण दिया गया। उनसे कहा

गया "जंगल मे जो खाली जगह है, वह तुम्हारी है। जो लकडी है, वह भी काटो, क्योकि वह भी तुम्हारी है। वनोपज पर तुम्हारा पुश्तैनी अधिकार है। उसका भरपूर इस्तेमाल करों और कोई भी प्रतिबंध नही मानो। यदि जंगल वाले तंग करे, तो हमें बताओं।"

डिंडौरी जिला भी पहले मंडला का ही भाग था। अतः यह भी नक्सल प्रभावित जिला माना जाता है। वर्ष 1998-99 मे यह मंडला से काटकार अलग जिला बना। म. प्र. सरकार ने भी डिंडौरी को नक्सल प्रभावित जिला माना है। जब से डिडौरी जिला बना है, नक्सलियो ने भी अभी तक कोई हिंसात्मक कार्य नही किया है। और न ही किसी का मारा-पीटा है। यद्यपि दूर -दराज के हाट- बाजारो से लौटते हुए व्यापरियों को लूटने की कुछ एक घटनाएँ अवश्य होती रही है। परन्तु बहुत से लोग इन घटनाओं के पीछे अनुसुचित जाति के लोगो को हाथ बताया। कुछ लोग भी है जो इन्हे नक्सलियों की गतिविधयाँ मानते है। डिडौरी बैगा बाहुल्य जिला है और बैगा दूर-दराज, दुर्गम, पहाडी व घने जंगलों के बीच हुए है, जहाँ नक्सली अपनी गतिबिधियाँ चला सकते है। चूँकि अभी इस जिले के बैगा व अन्य आदिवासी समूह नक्सली व उनके प्रवेश के तरीक से अपरचित है। अतः शासन का यह भरकस प्रयास है कि नक्सली गतिविधियों उनके कार्यो से बैगाजनों का परिचित कराये जाए। इसके लिए सरकार की तरफ से दिए गए धन के माध्यम से पुलिस अधीक्षक के निर्देशन मे प्रत्येक विकास खंड के थाना प्रभारियों के द्वारा गाँव-गाँव नें नुक्कड नाटक समय-समय कराये जाते है।और यह बताया जाता है। नक्सली कैसे प्रवेश करते है, कैसे लोगों को फँसाते है और उनके कार्य करने के तरीके कैसे है।

अप्रैल 2005 मे यह नुक्कड नाटक डिडौरी जिले के तीन विकासखंडो समनापुर, करंजियाय व बजाग के दूर-दराज के बैगा बाहुल्य गाँवों मे आयोजित किए गए। नुक्कड नाटक मे साधारणतया गांवो की भाषा विशेषकर गोंडा, बैगाओ की ही भाषा प्रयोग की जाती है जिससे कि आदिवासी भलीभाँति समझ सके। नुक्कड नाटक में विशेषतया ढुलिया जाति के लडका-लडकी होते है, क्योकि नाच-गाना उनका परम्परागत पेशा है। शासन का भरपूर

प्रयास है कि इन बैगा बाहुल्य गांवो में नक्सली प्रवेश न कर सके। इसके लिए वह बैगाओं के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ चल रही है, जिससे उनका विकास हो सके, उनकी गरीबी दूर हा सके। गरीब परिवारो के अति सस्ते दामों मे चावल, गेहूँ आदि उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके आतिरिक्त प्रशासन बैगा आदिवासियों के गरीब परिवारों की कन्याओ के विवाह हेतु''आदिवासी सामूहिक विवाह योजना'' का भी प्रारंभ किया है। समय-समय शासन जन चेतना अभियान के तहत नक्सलियों के भ्रामक प्रचार से बचने के लिए पोस्टरो व पर्चो द्वारा भी आदिवासियो को जाग्रत कर रही है।

अध्याय : सप्तम्

निष्कर्ष

7. निष्कर्ष

पूर्व अध्याय में आदिवासी बैगाओं की रोजगारोन्मुख योजनाओं का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में शोध के निष्कर्षो का उल्लेख किया गया है।

प्रस्तावना खंड में जनजाति की अवधारणा, जनजातीय जनसंख्या का वितरण, जनजातियों का वर्गीकरण, मध्यप्रदेश के आदिवासी बैगा जनजाति का परिचय और निवास स्थान, मध्य प्रदेश के विभिन्न जिलों में बैगा जनजाति का वितरण, बैगा जनजाति की उत्पत्ति संबंधी मिथक, गोत्र आदि की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

भारत के प्रायः सभी आदिवासी वृहत भारतीय समाज के ही अंग रहे हैं। शेष आबादी से पृथक वन्यांचल में रहने के कारण उन्हें भारतीय समाज में पंचम वर्ण की स्थिति प्रदान की गई है। इस तथ्य के साक्षी हमारे विविध शास्त्रीय ग्रंथ हैं। आदिवासी और शेष भारतीय मूलतः एक ही व्यवस्था के अंग होने के बावजूद उनमें जो अंतर दिखाई देते हैं वे मुख्यतः आवास सम्बन्धी पृथकता और उससे उत्पन्न सम्पर्कहीतना का परिणाम है। आदिवासी हमारे अतीत के प्रतिनिधि है। हम परिवर्तित और विकसित इसलिए हुए कि हम परम्पर सम्पर्क में रहे तथा हमें विकास के अवसर मिले। आदिवासी इसलिए पिछड़ गए क्योंकि आन्तरिक वन्य व पर्वतीय, दुर्गम अंचलों में रहने के कारण वे शेष आबादी से कट गए, उनके साथ सम्पर्क में निरंतरता नहीं रह पाई तथा विकास के अवसर उन्हें नहीं मिले।

किसी मानव समूह को एक जनजाति मानने के लिए यथार्थ रूप में कौन-कौन सी कसौटियाँ होनी चाहिए, इस संबंध में सभी विद्वानों की एक राय नहीं है। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि आदिवासी समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था, पुराकथा तथा प्रजाति होती है। आमतौर पर प्रत्येक जनजाति का एक निश्चित भू-भाग भी होता है, जिसमें वे निवास करती हैं। जनजातियों की अर्थव्यवस्था अविकसित होती है। प्रायः वे उत्पादन के आदिम साधनों का प्रयोग करते हैं। उनमें नातेदारी व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होती

है। किन्तु ये सब लक्षण इतने बदल गए हैं कि जनजातियों को अवशिष्ट समाज से पृथक करने के लिए प्रायः एक या कुछ लक्षणों को ही ज्यादा महत्व दिया जाता है।

वैरियर इ्ल्विन ने कहा है कि आदिवासी भारतवर्ष के वास्तविक स्वदेशी उपज हैं, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक आधार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए। उन पर सबसे पहले विचार होना चाहिए। डॉ0 जी.एस.धूरे ने आदिवासियों को पिछड़े हिन्दू माना है। उनका कहना है कि "आदिवासी हिन्दू हैं, लेकिन पिछड़े हुए हैं।" वैरियर इल्विन ने डॉ. जी.एस.धुरिये के इस विचार का विरोध किया और कहा कि आदिवासी वस्तुतः प्रकृति प्रेमी हैं और हिन्दू जातियों से उनका कोई सारोकार नहीं है। पंडित नेहरू जी ने वैरियल इल्विन की सलाह पर ही पंचशील सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार आदिवासी जंगलों और पहाड़ों में रहने वाले हैं और हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और जीवन पद्धति को हमें इन पर लागू नहीं करना चाहिए। इनका विकास तो इनकी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।

डॉ0 निर्मल कुमार बोस का कहना है कि जनजातियाँ वास्तव में इस देश के मूल निवासी हैं। परिवर्तन के दौर में ये मूल निवासी हिन्दू जातियों में एकीकृत हो रहे हैं। उनका कहना है कि हिन्दू जातियाँ बड़ी उदार हैं और उनकी एक विधि है जिसके द्वारा वे आदिवासियों को अपने अंदर समेट लेती हैं। इतिहासकार निहार रंजन रे का कहना है कि जनजातियाँ इस देश की उपज हैं। वे देशी हैं और आर्यो के आने से पहले ये लोग देश के विभिन्न भागों और नदी घाटियों में बस गए थे। आर्य भाषा बोलने वाले लोग तो बाद में आये। रे का कहना है कि जनजातियों की अर्थव्यवस्था पिछड़ी होती है। वे कृषि और पशुपालन करती हैं।

समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से जनजातियों को परिभाषित किया है। विभिन्नता होते हुए भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि ये समूह कृषि क्षेत्र में नए हैं। इन्हें खेती करते हुए 100 वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं। जो कुछ खेती वे जानते हैं, हिन्दू जातियों से सीखी हैं। उनका उत्पादन बाजार के लिए नहीं होता। वे तो केवल

जीविकोपार्जन करते हैं। इनमें गरीबी हैं, अशिक्षा है और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जंगलों और पहाड़ों में रहकर उन्होंने पृथक्करण को अपनी जीवन पद्धति समझ लिया है। जनजातियों की इन सभी विशेषताओं में आज बड़ा अंतर आ गया है। परिवर्तन होते हुए भी इन्हें सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से आरक्षण देने की आवश्यकता है। इसी कारण संविधान ने इन जनजातियों की विविधताओं को समेट कर इन्हें ऐस परिभाषा में बांधा है जिसके अनुसार इनका विधिवत विकास हो सकें।

देखा जाए तो हमारे देश में आदिवासी या जनजाति पद की कोई पृथक अवधारणा विकसित नहीं हुई है और इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 342 ने जनजातियों को परिभाषित किया है। 1952 में प्रकाशित अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग ने जनजातियों को परिभाषित करने के लिए जो कसौटियों को प्रस्तुत किया उनमें पृथक्करण, प्रजातीय लक्षण, भाषा और बोली, खाने की आदतें, मांसाहारी भोजन, पोशाक, नग्न एवं अर्द्धनग्न, घुमक्कड़पन, मद्यपान तथा नृत्य प्रमुख हैं। जनजाति आयोग ने जिन कसौटियों को रखा है वे आज वास्तविक धरातल पर सही प्रतीत नहीं होती। डॉ0 ए.आर.देसाई ने कहा कि यदि इस वर्गीकरण को मात्र एक मिथक माना है। जगन्नाथ पासी का कहना है कि संविधान का यह वर्गीकरण जनजातियों को केवल राजनीतिक दृष्टि से देखता है उनके इतिहास की पड़ताल नहीं करता। सुसना दीवाले ने लिखा है कि भारतीय जनजातियों को उनके एथनिक संदर्भ में देखना चाहिए। सुरजीत सिन्हा और डॉ0 एस.सी. दुबे का भी कहना है कि जनजातियों को उनके एथनिक धरातल पर ही परिभाषित करना चाहिए। बी.के.राय वर्मन का तो कहना है कि जनजातियों को हमें उनकी राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्रीय समाज के संदर्भ में ही समझना चाहिए।

विकास और प्रशासन की दृष्टि से संविधान द्वारा प्रदत्त परिभाषा ही आज व्यवहारिक समझी जाती है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत लिखा है कि राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिघोषणा द्वारा जनजातियों या जजजातीय समुदायों या उनके अंगो या समूहों को अनुसूचित जनजातियाँ घोषित कर सकता है। इस घोषणा में सम्मिलित किए जाने वाले समूहों को आर्थिक सुविधाएँ मिलती हैं। शिक्षा तथा व्यवसाय में अनुसूचित जातियों के

समान आरक्षण का लाभ मिलता है। ऐसी अवस्था में यह अत्यन्त आवश्यक है कि जनजाति की अवधारणा के बारे में स्पष्टता हो ताकि राज्य की ओर से लाभ उन्हीं समूहों को मिल सके जिन्हें वास्तव में इन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ मिलना चाहिए।

भारतीय संविधान में 550 जनजातियों को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। जनजातीय जनसंख्या का अधिकांश भाग देश के पूर्वी क्षेत्र में निवास करता है। इसके बाद क्रमशः मध्य भाग, पश्चिमी भाग, दक्षिण और उत्तर पश्चिमी भागों में काफी संख्या में जनजाति के लोग निवास करते हैं। सबसे कम जनजातीय जनसंख्या उत्तरी भाग में है।

औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के परिणामस्वरूप संचार तथा आवागमन के साधनों में तीव्र विकास होने के साथ-साथ जनजातियों का अन्य लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ने लगा है। इस सम्पर्क का प्रभाव जनजातियों की आर्थिक गतिविधियों तथा व्यवसायों पर पड़ा है। जनजातियाँ अपने परम्परागत उन व्यवसायों को जो आर्थिक रूप से ज्यादा फलदायी नहीं थे, के स्थान पर नए व्यवसाय अपनाने लगी है। आरक्षण के परिणामस्वरूप जनजातियों में शिक्षा का प्रसार हुआ है तथा वे विभिन्न व्यवसायों जैसे अध्यापक, डॉक्टर, इंजीनियर व अन्य राजकीय व व्यावसायिक पदों पर जाने लगे हैं। अतः अब जनजातियों का वर्गीकरण कठोर रूप से परम्परागत व्यवसाय के आधार पर करना कठिन होता जा रहा है क्योंकि परम्परागत व्यवसायों के साथ उन्होंने आधुनिक व्यावसायों को भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया है।

इस प्रकार जनजातियों के स्वरूप व विकास को समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण तथा कारणों के आधार पर उनको समझने की आवश्यकता है। कतिपय जनजातियों को समझने के लिए उनका भौगोलिक संदर्भ पर्याप्त महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि भौगोलिक परिस्थितियाँ उनकी आर्थिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का निर्धारण करती हैं। भारतीय जनजातियों के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जनजातीय समाज भी भौगोलिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विविधताओं से परिपूर्ण हैं। उनमें सांस्कृतिक भिन्नताएँ हैं तथा उनके विकास की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके लिए सर्वकल्याणकारी विकास की नीतियाँ बनाते

समय यह भी ध्यान रखना है कि उनकी सांस्कृतिक विविधताओं पर अनावश्यक रूप से प्रहार न हो तथा वृहत्तर संस्कृति के संदर्भ में वे अपनी पहचान व विविधता बनाए रख सकें।

मध्य प्रदेश भारत का हृदय प्रदेश है। मध्य प्रदेश के आदिवासी आमतौर पर पहाड़ी तथा वनाच्छादित अंचलों में निवास करते हैं। मध्य प्रदेश के आदिवासी समूह भाषा तथा रहन-सहन की दृष्टि से भिन्न हैं। ये तीन परिवारों में विभाजित हैं - मुंडा भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार तथा आर्य भाषी परिवार। मध्य प्रदेश में अगरिया, असुर, भैना, भारिया, भतरा, भील, भूमिया, भुँजिया, बिसार, बिंझवार, बिरहोड़, बिरजिया, दामोर, धनवार, धुरवा, गदबा, गोंड, हलबा, कमार, कवंर, खैरवार, खड़िया, कीर, कोडकू, कोल, मीणा, मझवार, मुंडा, ओरांव, पनिका, परधान, पारधी, परजा, सहरिया, भिम्मा, धोबा, बैगा आदि जनजातियों के लोग निवास करते हैं।

मध्य प्रदेश के आदिवासियों का दृष्टिकोण वस्तुतः बहुत ही साफ-सुथरा, प्रत्यक्ष तथा स्वस्थ है। वह नगरवासियों के अस्वाभाविक जीवन में व्याप्त विकृत मनोग्रन्थियों से मुक्त होकर संतुष्ट जीवन बिता रहा है। नगरवासियों की दैनंदिन क्रिया मशीनों से जुड़ी हुई है। ईश्वर की सृष्टि, प्रकृति का सौन्दर्य, ताजी हवा और रोशन तथा मुक्त अट्टाहस से मरहूम नगरवासी इन वनचरों को क्या सीख देगें ? आदिवासियों का उद्योग निश्चित रूप से एक गृह उद्योग है, क्योंकि सम्प्रेषण के अभाव में अपने उत्पादों के लिए वे बाहरी बाजारों से जुड़ नहीं पाए। यदि हम आदिवासियों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें दिखाना होगा कि इन आदिवासियों और इनके संस्थाओं के प्रति हमारे मन में सम्मान है। उनकी भाषाओं और गीतों के प्रति हमारे मन में आदर भाव है। ऐसा सम्मान प्रदर्शित करते हुए ही इन अंचलों में हमें किसी काम का बीड़ा उठाना होगा। इससे हम उनका विश्वास अर्जित कर सकेंगे। इसीलिए प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए निर्देश होना चाहिए कि वह अपने कार्यक्षेत्र की आदिवासी भाषा से परिचित हो। अंचल के लोगों के रीति रिवाज व परम्पराओं को समझता हो और उनमें उसकी समझदारी हो। एक परदेशी के रूप में नहीं, अपितु उन्हीं के बीच में से एक व्यक्ति के रूप में।

प्रस्तुत अध्ययन बैगा जनजाति पर आधारित है। बैगा मंडला, डिंडौरी, विलासपुर, कवर्धा, शहडोल, बालाघाट, सिवनी व छिंदवाड़ा जिलों के हिस्से में बसे हुए हैं। डिंडौरी जिले और विलासपुर जिले के बीच का भाग ही बैगाचक कहलाता है। बैगाओं से लगी हुई हर जगह गोंड जनजाति की बस्तियाँ हैं, पर गोंड़ इनकी तुलना में बहुत विकसित हैं। सन् 1932 में वैरियल इल्विन ने अपने मित्र श्याम राव हिवाले के साथ बैगाचक के ग्राम पाटन एवं सड़वा छापर में रहकर करीब 6 वर्षो तक बैगा जनजाति पर कार्य किया और " दि बैगा" नामक पुस्तक लिखी । वैरियर इल्विन इस दौरान दो-तीन बार बैहर तहसील भी गए जहाँ भरौतिया एवं नरौतिया नाम बैगाओं के सम्पर्क में रहे। वैरियल इल्विन का अधिकतर कार्य डिंडौरी एवं कवर्धा जिले की सीमा पंडरिया ग्राम के भूमिया बैगाओं के बीच हुआ। वैरियर इल्विन ने कहा कि बैगा वास्तव में भूमिया जाति की ही एक शाखा है। भूडंगा अथवा भूमिया का अर्थ "भूमि राजा" या "भूमिजन" होता है।

सर आर.वी. रसेल और हीरालाल ने बैगा का अर्थ भूमिया जाति के उन विशेष व्यक्तियों से लगाया है जो गुनियाई और भुताई का कार्य करते हैं। संभवतः भूमिया जाति का जो वर्ग दवा दारू और गुनियाई-भुताई का कार्य करने लगा, उसे बैगा कहने लगे।

मध्य प्रदेश में बैगा जनजाति का वितरण अत्यन्त असमान है। 1971 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश की कुल बैगा जनजाति का सबसे बड़ा भाग शहडोल में 40.87 प्रतिशत था। इसके बाद क्रमशः मंडला (डिंडोरी सहित) में 28.25 प्रतिशत, सीधी में 14.73 प्रतिशत, बालाघाट में 7.17 प्रतिशत, सरगुजा में 5.67 प्रतिशत, विलासपुर में 1.70 प्रतिशत, टीकमगढ़ में 0.70 प्रतिशत तथा 1.21 प्रतिशत अन्य जिलों में वितरित थी ।

बैगाचक क्षेत्र जिला मुख्यालय डिंडौरी से करीब 65 कि.मी. जबलपुर-अमरकंटक मार्ग पर गाड़ासराई नामक कस्बे से 35 किमी. दूरी पर स्थित है। सम्पूर्ण बैगाचक क्षेत्र के अन्तर्गत विकासखण्ड बजाग, करंजिया एवं समनापुर आते हैं। बैगाचक क्षेत्र में बैगाओं के विकास के लिए बैगा विकास अभिकरण की स्थापना 1967 में की गई थी। बैगाचक का केन्द्र बिन्दू वनग्राम चांड़ा है। इस क्षेत्र में 52 बैगा बाहुल्य ग्राम हैं। प्रारम्भ में बैगाचक के अन्तर्गत 7

वनग्रामों का चयन किया गया जिसमें 1551 बैगा जनजाति के लोग निवास करते थे। ये वनग्राम धुरकुटा, सिलपिड़ी, ढाबा, अजगर, झीलंग, लमोटा एवं रजनी सरई थे। इसके बाद क्रमशः समय-समय पर बैगाचक के अन्तर्गत अन्य ग्रामों को सम्मिलित किया गया। बैगाचक में वर्तमान समय में 52 ग्राम हैं जोकि डिंडौरी जिले के अन्तर्गत आते हैं। यह क्षेत्र 60 कि.मी. चौड़ा और 300 किमी. लम्बा है।

मध्य प्रदेश की जनजातियों में बैगा समूह अपनी आदिम पहचान रखता है। बैगा जनजाति की उत्पत्ति के बारे में कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। लेकिन बैगाओं की उत्पत्ति संबंधी कई मिथक प्रचलित हैं।

सर आर.वी. रसेल और हीरालाल ने लिखा है कि प्रारम्भ में भगवान ने नांगा बैगा और नांगी बैगिन को बनाया । थोडे दिन बाद उनकी दो संताने पैदा हुई। पहली संतान बैगा व दूसरी संतान गोंड कहलाई। दोनों संतानों ने अपनी दोनों बहनों से विवाह कर लिया। आगे चलकर मनुष्य जाति की उत्पत्ति इन्हीं दो युगलों से हुई। पहले युगल से बैगा पैदा हुए और दूसरे युगल से गोंड़ उत्पन्न हुए। एक अन्य धारणा के अनुसार नांगा बैगा तुम्बें में से पैदा हुए। तुम्बें से दो आदमी निकले। पहला नांगा बैगा हुआ व दूसरा गोंड । नांगा बैगा टंगिया (कुल्हाडी) लेकर जंगल काटने चला गया और गोंड ने नागर (हल संभाल लिया।

इसी प्रकार की अनेक अवधारणाएँ बैगाजनों में प्रचलित हैं। सभी अवधारणाओं से यह तो स्पष्ट होता है कि बैगा लोग अपना संबंध धरती के प्रारम्भ से जोड़ते आए हैं। मिथकों में नांगा बैगा को पहला मानव चित्रित किया गया है। बाद में नांगा बैगा की संतान से मानव जाति का विकास हुआ। बैगाओं की उत्पत्ति संबंधी कोई ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। सर आर.वी. रसेल और हीरालाल ने बैगाओं को भूमिया की एक शाखा माना है।

बैगा एक आदिम जनजाति है। यद्यपि बैगा भूमिया की एक शाखा है तदापि बैगाओं का स्वतंत्र अस्तित्व और निजी अस्मिता है। बैगा प्रकृति पुत्र है। प्रकृति के सतत सानिध्य में रहने से इनकी त्वचा का रंग प्रायः गहरा काला होता हे। बैगाओं की नाम चौड़ी होती है व होंठ कुछ

मोटे होते हैं। आँखें औसतन कम गोल और काली होती हैं। पुरूष और स्त्री के बाल लम्बे होते हैं।

द्वितीय अध्याय पद्धतिशास्त्र या अध्ययन पद्धति से सम्बन्धित है। नए तथ्यों की खोज करना एवं पुरानों की पुर्नपरीक्षण करना अनुसंधान है। अनुसंधान के पूर्व अनुसंधान के उद्देश्य, क्षेत्र एवं पद्धतियों को सुनिश्चित कर लिया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु भी कुछ उद्देश्य बनाए गए हैं जिनके आधार पर अध्ययन की उपकल्पनाएँ तैयार की गई हैं। अध्ययन का क्षेत्र मध्य प्रदेश के डिंडौरी जिले के विकासखण्ड बजाग के अंतर्गत आने वाले चार बैगा बाहुल्य गाँव हैं। प्रत्येक गाँव से 75-75 परिवारों को साक्षात्कार के लिये चुना गया है। इस प्रकार कुल उत्तरदाताओं की संख्या 300 रखी गई है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची और निरीक्षण प्रविधि को काम में लाया गया है।

बैगाओं की आवास व्यवस्था जनजातीय संस्तरण में उनका स्थान, विवाह, जीवन साथी चुनने के तरीके, बहुपत्नी प्रथा, भोजन व खानपान, निषेध, लोक विश्वास, शैक्षिक स्थिति आदि सभी को सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत तृतीय अध्याय में रखा गया है। बैगा जनजाति में आवास संबंधी परिवर्तन को देखने से ज्ञात होता है कि प्रारंभ में इनकी आर्थिक व्यवस्था शिकार व झूम खेती पर ही आधारित थी। इस प्रकार के आर्थिक क्रिया-कलाप के लिए एक व्यक्ति ही नहीं वरन् कई व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती थी। इसीलिए बैगाजन अपने घरों का निर्माण इस प्रकार करते थे कि एक व्यक्ति पूरे टोले की सुरक्षा कर सके क्योंकि कई बार इन लोगों को बेवर खेती, शिकार व अन्य कार्यो के लिए समूह में जाना पड़ता था। ऐसी स्थिति में कुछ लोग ही टोला में देखभाल के लिए रह जाते थे। इस प्रकार की आवास व्यवस्था में टोले में आने जाने के लिए सिर्फ एक ही मुख्य रास्ता होता था। इसका एक लाभ यह होता था कि यदि कोई भी बाहरी व्यक्ति या किसी दूसरे टोले का व्यक्ति या कोई पशु आता था तो उसे टोले के व्यक्ति दूर से ही देख लेते थे।

शिकार, वनोपज व बेवर खेती की अवस्था में बैगाजनों के पास पालतू पशुओं के रूप सुअर, मुर्गी व बकरी ही थे जो इनके धार्मिक कार्यो में बलि चढ़ाने के अतिरिक्त, इनके

भरण-पोषण के काम भी आते थे और काफी हद तक आज भी हैं। ऐसी व्यवस्था एक बैगा परिवार के लिए एक ही घर काफी थी और चूंकि पालतू पशु थे ही नहीं, इसलिए ज्यादा घरों की आवश्यकता भी नहीं थी । सुअर, मुर्गी व बकरी के लिए घर के बगल में ही लकड़ी के छोटे से घर बना दिए जाते थे।

ब्रिटिश सरकार ने जब सर्वप्रथम बेवर खेती पर रोक लगाई और जंगलों में बसे हुए बैगाजनों को वनग्राम के रूप में स्थापित किया तभी से इनकी आवास व्यवस्था में परिवर्तन के लक्षण प्रकट होने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार ने वनों की हानि को देखते हुए इस प्रकार की खेती पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया और इसके बदले में जंगलों में बसे हुए बैगाजनों को खेती करने के लिए अस्थाई पटटा देना प्रारम्भ किया। बैगाजनों को खेती करने के लिए जो जमीन दी गई वह वास्तव में प्रारंभ में बैगाजनों द्वारा बेवर खेती के दौरान साफ की गई भूमि थी । चूंकि बेवर खेती समाप्त हो चुकी थी और बैगाजनों को खेती करने के लिए अस्थायी पटटे के रूप में खेत भी मिल चुके थे । अतः बैगाजनों ने फसलों की सुरक्षा की दृष्टि से अपने खेत पर ही घर बनाना उपयुक्त समझा। इसके साथ-साथ चूंकि अब कृषि कार्य के लिए पशुपालन भी प्रारंभ हो चुका था और पशुओं को बांधने व चराने के लिए जगह की आवश्यकता भी पड़ी। इस प्रकार एक सीमित घेरे में बसा बैगा टोला कई भागों में दूर-दूर तक छिटक गया। बैगाओं के जो घर अभी भी पास-पास बने हैं उनमें भी पहले जैसी व्यवस्था देखने को नहीं मिलती। आने-जाने के कई रास्ते हो गए हैं। घर एक घेरे में न रहकर, एक सीधी रेखा में भी देखे जा सकते हैं।

अधिकांशतया बैगाओं के घर मिटटी के बने हुए हैं। घर बनाने की पद्धति वही है परन्तु उसमें लगने वाली सामग्री में अंतर आ गया है। पूर्व में बैगाजन घर की दीवारों को बनाने के लिए बांस, सरई, अमेरा, अरहर की लकड़ियों का टट्टा बनाकर उसमें मिटटी की छपाई कर देते थे और घर की छत मोवा की घास से बनाते थे परन्तु अब बैगाजन घर की दीवारें ठोस मिट्टी व ईटों से बनाते हैं और घर की छत को खपरा से छाते हैं। दीवारों को गोबर व छुई मिटटी से पोतते हैं।

एक बैगा परिवार का घर एक लम्बा कोठा होता है, उसी कोठे के एक कोने में रसोईघर होता है जो अनाज भरने की मिटटी की कोठियों के द्वारा विभाजित रहता है। घर के बगल में लकड़ी का बना छोटा सा सुअर का घर होता है जिसे "गूडा" कहते हैं। रहने वाले घर के बगल में या सामने गाय-बैलों के लिए घर होता है, जिसे सार कहते हैं। आज बैगाजनों द्वारा दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाली अधिकतर वस्तुएँ धातुओं की बनी है। इनके घरों में पीतल के बर्तनों में हण्डा, टटियार (आटा गुँथनी), कांसे की थालियॉ, कांसे के लोटे, कांसे का भटवा, एल्युमिनियम की खुरिया (कटोरी), एल्युमिनियम की कलछुआ, लोहे का तवा, गिलास आदि आसानी से देखे जा सकते हैं।

परिवार और विवाह समाज की सार्वभौमिक संस्थाएँ हैं जिनके द्वारा समाज अपने सदस्यों के यौन व्यवहारों का नियमन करता है। बैगा जनजाति में एकल परिवारों की प्रधानता है और संयुक्त परिवार कम देखने को मिलता है। जो लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं उनका स्वरूप भी छोटा है, वे हिन्दू परिवार जैसे बड़े नहीं हैं। सर्वेक्षण के दौरान जो संयुक्त परिवार मिले उनमें पिता व एक या दो विवाहित पुत्र या दो विवाहित भाई आपस में रहते पाए गए। भरण-पोषण के साधनों की कठिनाई व रहने के लिए आवास का अभाव इनमें एकल परिवार के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है। वैसे संयुक्त परिवार जनजातियों की विशेषता नहीं रही है, यह हिन्दू जातियों की विशेषता है । इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए गेट ने लिखा है कि संयुक्त परिवार केवल उच्च हिन्दू जातियों की विशेषता है, निम्न जातियों और जनजातियों में यह प्रथा बहुत कम रही है।

बैगा जनजाति के लोग एक ही गोत्र में विवाह नहीं करते। एक गोत्र सभी बैगाजन भाई-बहन मानते हैं। परन्तु इनके गाँव जोकि अनेक टोलों के रूप में होते हैं, उनमें ही कई गोत्र के बैगा पाये जाते हैं जिस कारण कुछ लोगों के विवाह उसी गाँव में हो जाते हैं। बैगा जनजाति में जीवन साथी चुनने के छः तरीके प्रचलित रहे हैं - मंगनी या चढ़ विवाह, चोर विवाह, उठवा विवाह, पैठूल विवाह, लमसेना विवाह व उधरिया विवाह । वर्तमान समय में बैगा जनजाति में जीवन साथी चुनने के कई तरीके लुप्त होते जा रहे हैं। अब ये लोग भी मंगनी या

चढ़ विवाह जो सबसे अच्छा तरीका माना जाता है को मान्यता देने लगे हैं। निरंतर बढ़ता हुआ अन्य जातियों से संपर्क, शिक्षा व विकासात्मक प्रक्रियाओं के प्रभाव के कारण ये अन्य तरीकों को त्यागते जा रहे हैं। बैगा जनजाति की एक प्रमुख विशेषता बहुपत्नी प्रथा रही है। पहली पत्नी से संतान का न होना, भाग्यविदता, जीवकोपार्जन के साधनों क पर्याप्त उपलब्धता, जंगल में बसे होने के कारण मिलने के अवसर उपलब्ध होना, स्त्री-पुरूषों का साथ-साथ नृत्य करना, मंद पीने की आदत, हाट का प्रचलन आदि कुछ ऐसे कारक थे जो बैगाओं में बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। परन्तु आज इनके यहाँ बहुपत्नी प्रथा अवशेष के रूप में बची है क्योंकि इस प्रथा को जन्म देने वाले बहुत कारक लुप्त हो गए और जो बचे हैं, उनको ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता ।

बेवर खेती व शिकार की अवस्था में बैगाओं का प्रमुख भोजन कोदो, कुटकी व मांस था परन्तु आज बैगाजन कृषि अवस्था में है जिसके फलस्वरूप इनके खानपान में मूलभूत परिवर्तन आया है। अब बैगाजन शाकाहारी ज्यादा व मांसाहारी कम हो गए हैं क्योंकि अब शिकार की उपलब्धता ही नहीं रह गई और जो है भी उस पर कानूनी रोक लगी है। बेवर खेती के विलुप्त होने के साथ ही साथ बैगाजन कोदो, कुटकी की मात्रा भी कम करते गए क्योंकि बदलती हुई आर्थिक जरूरतों के कारण नगदी फसलों का महत्व बढ़ता गया और ये लोग मक्का, राई, रमतिला, धान, अरहर, गेहूँ, मसूर आदि को ज्यादा महत्व देने लगे। परिणामस्वरूप इनके खानपान में इन्हीं धान्यों का प्रयोग होने लगा। राई बोने के कारण अब ये लोग तेल का प्रयोग खाने व लगाने में करने लगे हैं। कोदो, कुटकी के स्थान पर अब दाल-भात खाने लगे हैं। अब ये लोग खानपान में मसाले इत्यादि का प्रयोग भी करने लगे हैं काफी लोगों ने रोटी खाना भी प्रारम्भ कर दिया है। पशुपालन के कारण अब ये लोग दूध व मटठा का प्रयोग भी करने लगे हैं। इतना ही नहीं अब बैगाजन कपडा धोने के लिये साजा वृद्ध की राख के स्थान पर साबुन व पाउडर, बाल धोने के लिए मिटटी के स्थान पर साबुन व शैम्पू, दातून के स्थान पर गुडाकू आदि का प्रयोग भलीभांति करने लगे हैं। इनके छोटे बच्चे आज बिस्कुट, कुल्फी, कम्पट व टॉफी की मांग करने लगे हैं, बडे लोग मंद के साथ नमकीन व प्याज खाने लगे हैं व

कई लोग तो घरों में चाय तक बनाने लगे हैं। पहनावे की दृष्टि से देखा जाए तो अब बैगा पुरूष व लड़के लगोटी के स्थान पर हाफ पैंट व शर्ट (सेकेण्ड हैण्ड हांटों से) पहनने लगे हैं। युवतियाँ व औरतें मूँगी व बगरा (परम्परागत वस्त्र) के साथ-साथ फतोही (ब्लाउज) पहनने लगी हैं और सजने-सवरने के आधुनिक प्रसाधनों जैसे - पाउडर, क्रीम, तेल, गेटिस, क्लिप व लिपिस्टिक आदि का प्रयोग करने लगी है। पैरो में स्त्री व पुरूष प्लास्टिक के जूते पहनने लगे हैं, लड़के बाल छोटे रखने लगे हैं, कुछ लोग अब प्रतिदिन नहाने भी लगे हैं। यद्यपि अभी भी काफी बैगाजन हफ्ते में एक-दो बार ही नहाते हैं। अन्य जातियों, जनजातियों से सम्पर्क, शिक्षा, आवागमन में वृद्धि आदि के कारण इनमें प्रचलित अंधविश्वासों में कमी आयी है जिससे अब काफी लोगों ने शौच क्रिया में पानी लेना भी प्रारम्भ कर दिया है।

बैगा जनजाति में शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न है। हालांकि वर्तमान समय में सरकारी नीतियों और जागरूकता के फलस्वरूप पाठशालाओं में बैगा बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई। लेकिन विभिन्न कारणों से आधे से ज्यादा बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं और जो बच्चे आगे पढ़ना भी चाहते हैं । ये कारण निम्नवत हैं :-

1. अधिकतर बैगाजन आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण अपने बच्चों को नहीं पढ़ा पाते और बच्चों को लकड़ी लाने व खेती के कार्यो में ही लगा देते हैं।
2. माता-पिता का बच्चों के प्रति ध्यान न देना। बच्चे कहाँ हैं, कहाँ जा रहे हैं, इसका कोई ध्यान न देना।
3. जिन आश्रमों में कई जनजातियों के लड़के रहते हैं, उनके साथ सामंजस्य न कर पाना।
4. शिक्षकों का नियमित रूप से न आना और जो आते भी हैं वे भी अधिकांशतः दारू-मुर्गा के लती हैं और इन सब क्रियाकलापों का बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
5. पढ़ाई में रूचि न होना व छोटी उम्र से ही दारू की लत लग जाना भी एक कारण है।

यद्यपि मध्याहन भोजन कार्यक्रम के फलस्वरूप बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई है लेकिन यह वृद्धि खाना खाने तक ही दिखाई देती है, उसके बाद घट जाती है। अधिकांशतः बैगा गाँव, जगलों, पहाड़ों व दूर-दराज के क्षेत्रों में बसे हैं, जिस कारण इन गाँव की पाठशालाओं में नियुक्त शिक्षक शहर या कस्बे से ही आवागमन करते हैं। जिससे ये बहुत ही कम समय दे पाते हैं और अधिकांशतया तो कभी-कभार ही आते हैं। जो बैगा जनजाति के व्यक्ति शिक्षक हैं व अपने ही गाँव में नियुक्त हैं, वे भी अपनी परम्परागत जीवन शैली को नहीं त्याग पाए। वे भी मंद के लती हैं और पढ़ाने की अपेक्षा दारू-मुर्गा में मस्त रहते हैं। बच्चे भी स्कूल में बस्ता रखकर घरों, खेत-खलिहानों व नदी-नालों में विचरण करते रहते हैं।

इन सबके बावजूद काफी बच्चे स्कूल जाने लगे हैं। उनके माता-पिता भी चाहते हैं कि उनके बच्चे पढ़े-लिखें। कई गाँवों में आश्रम विद्यालय हैं। यहाँ रहने वाले छात्रों को 350 रूपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी जाती है। प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ने वाली लड़कियों को 15 रूपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति दी जाती है जबकि माध्यमिक शाला में लड़के व लड़कियों दोनों को 50 रूपये प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति दी जाती है। इन सबके फलस्वरूप बच्चों की संख्या में वृद्धि हुई है।

जनजातीय समाज को आत्मनिर्भर माना जाता है। परन्तु वर्तमान में जनजातियाँ आत्मनिर्भर नहीं हैं, वे भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर होती जा रही है। जब से बैगा जनजाति ने स्थायी खेती करना प्रारम्भ किया तब से इनकी निर्भरता अन्य स्थानीय जनजातियों व जातियों पर ज्यादा बढ़ गई है। कृषि कार्य के उपकरण ये लोग अगरिया जनजाति से बनवाते हैं। परम्परागत वस्त्र पानिका व आधुनिक वस्त्र दुकानदारों से खरीदते हैं। जो लोग भूमिहीन या जिनके पास खेती बहुत कम है वे अधिया पर दूसरी जातियों व जनजातियों से खेती लेकर कृषि करते हैं। पशुओं की रखवाली का कार्य ये लोग यादव बिरादरी के लोगों को सौपते हैं। इस प्रकार अब बैगाओं का संबंध कई जनजातियों व जातियों से है।

बैगा जनजाति की परम्परागत चिकित्सा पद्धति व उसमें आए बदलाव, देवी-देवता, गुदना तथा लोकनृत्यों के व्यावसायीकरण की चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गई है। बैगा

जनजाति के लोग बीमारियों व रोगों के कारण देवी-देवताओं की नाराजगी, भूत-प्रेतों व निषेध तोड़ने का प्रतिफल आदि को मानते रहे हैं और इसीलिए इनका इलाज भी तंत्र-मंत्र, पूजा व बलि तथा जड़ी-बूटी आदि से करते रहे हैं। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बैगा आदिवासियों द्वारा पूजा व बलि, तंत्र-मंत्र, जड़ी बूटी आदि द्वारा रोगों के उपचार करने की पद्धति कमजोर पड़ती जा रही है। इसके कई कारण हैं जैसे-वनों का सरकार के कब्जे में चले जाना, जंगली जानवरों की निरंतर घटती संख्या, जड़ी-बूटियों का तेजी से विलुप्त होना, गाँव-गाँव में आँगनबाडी केन्द्रों की स्थापना, ग्राम पंचायतों व कस्बों में स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना आदि। पहले बैगाजन स्वतंत्र रूप से वनों का प्रयोग करते थे जिस कारण इनका सम्पर्क विभिन्न प्रकार की जडी बूटियों से बना रहता था। शिकार की तलाश में भी कई प्रकार की जड़ी-बूटियाँ मिल जाती थी परन्तु वनों के सरकार के कब्जे में चले जाने से बैगाजन अपने भरण-पोषण के लिये खेती पर ज्यादा निर्भर रहने लगे हैं जिससे वनों की और गतिशीलता कम होने लगी और इनका ध्यान जडी बूटियों से हटने लगा। चालाक ठेकेदारों व कर्मचारियों ने भी जानकार बैगाओं को लालच देकर जमकर जडी बूटियों की तस्करी की जिससे कीमती जडी बूटियाँ लुप्त हो गई। बैगाओं के स्वास्थ्य की देखरेख के लिये प्रत्येक ग्राम पंचायत में स्वास्थ्यकर्मी नियुक्त हैं जो बैगाओं के घर-घर जाकर उनका मुफ्त इलाज करते हैं। दवाइयाँ, इंजेक्शन आदि सभी मुफ्त लगाये जाते हैं। आज हालत यह है कि बैगाजन स्वास्थ्यकर्मियों को बुलाने जाने लगे हैं या स्वयं उनके केन्द्रों में आ जाते हैं। लापरवाही बरतने पर शिकायत भी करने लगे हैं। नई पीढ़ी के लोग गुनिया के पास बहुत ही कम जाते हैं।

बैगाजन अनेक देवी-देवता की पूजा में विश्वास करते रहे हैं। बहुत से देवी देवताओं की आकृति ही स्पष्ट नहीं है। ठाकुद देव की पूजा ग्राम देवता के रूप में, नर्मदा भाई की पूजा धन-धान्य के लिये , भैसासुर की पूजा मवेशियों की रक्षा के लिये, बाघेश्वर की पूजा बाघों से बचने के लिये, रातमाई की पूजा काली रात्रि से बचने के लिये, अन्नमाता की पूजा फसलों में वृद्धि के लिये, भवानीमाता की पूजा बच्चों को बीमारियों से बचने के लिये, बूढ़ा-नागदेव की पूजा सांपों से बचने के लिये, दूल्हा देव की पूजा विवाह के समय विपत्तियों से

बचने के लिये, नारायण देव की पूजा गाँव रक्षा के लिये, बडादेव की पूजा कुल देवता के रूप में, खेरमाई की पूजा बीमारियों से बचने के लिये, वनजारिन माई की पूजा जंगली जानवरों से बचने के लिये की जाती रही है। परन्तु आज बहुत से देवी-देवता रह ही नहीं गये जैसे- बंजारी माई, बाघेश्वर देव, नागदेव आदि की पूजा बैगाजन भूलते जा रहे हैं। दूसरी ओर बैगाओं के इन सभी देवी-देवता की पूजा सामूहिक रूप से की जाती थी, परन्तु वर्तमान समय में बैगाजनों में भी व्यक्तिवादिता पनपने लगी है। कई ऐसे देवता है जिनकी पूजा कई वर्षो बाद की जाती है जिससे उनका महत्व ही घट जाता है। हिन्दू जातियों के सम्पर्क के कारण बैगाज़न भी हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा प्रारम्भ कर दिया है। अब इनके घरों में हिन्दू देवी देवताओं के चित्र आसानी से देखे जा सकते हैं। ये लोग इनके सामने अगरबत्ती जलाने लगे हैं और शेष अवसरों पर नारियल भी फोड़ने लगे हैं। विशेष त्योहारों पर ये लोग अमरकंटक भी जाते हैं। इसके साथ-साथ नवरात्रि में दुर्गा की प्रतिमा भी सजाई जाती है जिसमें पढ़ने वाले बच्चे, क्षेत्रों में नियुक्त कर्मचारी व बैगाजन सभी भाग लेते हैं।

आदिवासियों की प्रमुख पहचानों में से ''आदिवासी नृत्य'' एक प्रमुख पहचान रही है परन्तु अब यह पहचान धीरे-धीरे कमजोर होने लगी है। जो बैगा आदिवासी गाँव, कस्बों, मुख्य सड़कों के किनारे बसे हैं उनमें बैगा लोकनृत्यों के दर्शन ही दुर्लभ हो गये हैं। आज आधुनिक मनोरंजन के साधनों के आगे जनजातीय मनोरंजन के साधन फीके पड़ते जा रहे हैं और वह स्वतः ही लुप्त होते जा रहे हैं। बैगा बाहुल्य गाँव, आमाडोब में स्थित आदिवासी बालक आश्रम के प्यून राजेन्द्र प्रसाद कुशवाहा ने बताया कि आज से 8-10 साल पूर्व इस गाँव में रातभर मांदर की थाप सुनाई पड़ती थी, परन्तु अब ऐसा कुछ नहीं है। किन्तु जो बैगा गाँव दूर-दराज व घने जंगलों में बसे हैं, उनमें अभी इस संस्कृति का कुछ पक्ष जीवित है जिनका कारण इन लोकनृत्यों का व्यावसायीकरण है अर्थात् अब बैगाजनों ने अपने इन लोकनृत्यों को आय का साधन बना लिया है। दूसरे शब्दों में समाज का उच्च्व वर्ग, नेता व मंत्रीगणन आदिवासी लोककला परिषदें, सांस्कृतिक केन्द्र, बड़े-बड़े सरकारी व गैर सरकारी अफसरी आदि ने इनके नृत्यों का व्यवसायीकरण कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन गाँवों के

बैगाजन तीज-त्योहारों, जन्म, अतिथि सत्कार आदि के समय उतना नृत्य नहीं करते जितना की किसी अफसर, नेता, मंत्रीगण, किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति या किसी संस्था के बुलाने या इन लोगों के गाँव में आने पर करते हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ पर नृत्य करने पर इनको पैसा मिलता है। यही कारण है कि इन गाँवों में अभी भी बैगा नृत्य जीवित हैं। सर्वेक्षित बैगा आदिवासी गाँवों में तो लोकनृत्यों की टीमें हैं जो काफी दूर-दूर तक नृत्य करने के लिये जाती है। किसी मंत्री के इनके क्षेत्र में आने पर उद्घाटन के अवसर पर बैगाओं का नृत्य तो एक रिवाज सा बन गया है। कई धार्मिक आयोजनों में भी इनको नृत्य प्रस्तुत करने के लिये बुलाया जाता है। सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न प्रदेशों की लोककला परिषदें व सांस्कृतिक केन्द्र भी इनके नृत्यों को संरक्षण देने के लिये समय-समय पर विभिन्न भागों में इनके कार्यक्रम करवाती रहती हैं और इनके आने-जाने का खर्चा तथा मेहनताना देती है।

बैगा लोकनृत्य प्रकृति की देन है। नृत्य मुद्राओं में कमर तक झुकना पृथ्वी को प्रणाम करना है, एक साथ पैर का उठाना सामूहिक प्रगति की प्रतीक है। एक दूसरे की कमर में हाथ डालकर नृत्य करना सहअस्तित्व का प्रतीक है, कतारबद्ध नृत्य करना आदिम भावनात्मक एकता का प्रतीक है, गोल-गोल घूमना पृथ्वी की गति का प्रतीक है। बैगाओं के सम्पूर्ण नृत्य प्रकृति की छटा से ओत-प्रोत हैं। परन्तु आज की बैगा नवयुवक पीढ़ी इन सभी प्रतीकों से पूरी तरह अनजान है। बैगा लोकनृत्यों का अब उन्हीं के समाज द्वारा संरक्षण ढीला पड़ता जा रहा है। अब ये लोकनृत्य प्रकृति की छटा से दूर होते जा रहे हैं और गैर जनजातीय समाज की शोभा बन रहे हैं।

बैगा जनजाति की स्त्रियों में शरीर अलंकरण के रूप में गुदने का विशेष महत्व है। कुछ लोग इसका कारण धार्मिक मानते हैं, तो कुछ लोग जातीय पहचान व जातीय सुरक्षा के रूप में इसका वर्णन करते हैं। कारण चाहे जो हो, इस जनजाति में शरीर अलंकरण के रूप में गुदने की एक सशक्त परम्परा विद्यमान रही है। यही कारण है कि स्त्रियाँ जननांगों व स्तन के आगे के भाग को छोडकर पूरे शरीर में गुदना गुदवाती रहती हैं। परन्तु वर्तमान समय में सजने-संवरने के अन्य साधन आ जाने के कारण, इनमें गुदने का प्रचलन कम होता जा रहा

है। आज की नवयुवतियाँ पूरे शरीर की अपेक्षा शरीर के कुछ अंगों में गुदवाना पसन्द करती हैं जैसे - कपाड, हॉथ व पैर आदि । इनमें भी सबसे ज्यादा महत्व कपाड के गुदने को दिया जाता है। पूरे शरीर में गुदना पुरानी पीढ़ी की औरतों में ही देखा जा सकता है। पहले गुदना, लकड़ी के आभूषण व पक्षियों के पंख ही इनके सजने के साधन थे परन्तु वर्तमान में बैगा स्त्रियाँ चादी, स्टील व पीतल के कई प्रकार के आभूषण पहनने लगी हैं । अब बैगा युवतियाँ व स्त्रियाँ कानों में स्टील व चांदी की तर्की व उतन्ना, गले में मूंगी का बना हुआ भवरी व छूटामाला, उँगलियों में पीतल की मुंदरी, हाथ की कलाई में पीतल के पाते, पैरों में तांबे या क़ांसे के चूड़े पहनती है। ये समान ये लोग पास के कस्बों की दुकानों या हाटों से खरीदती हैं। इसके अतिरिक्त बालों के क्लिप लगाती हैं और बालों को बांधने के लिये फूलदार गेटिस का प्रयोग करती हैं जिसे ये लोग अपनी भाषा में पपस कहती हैं।

बैगा जनजाति के आर्थिक जीवन और उसमें आये परिवर्तनों की चर्चा पंचम अध्याय में की गई है। बैगा जनजाति के आर्थिक जीवन के परिवर्तित स्वरूप को देखने पर ज्ञात होता है कि इनकी शिकार पर निर्भरता बहुत ही अल्प मात्रा में रह गई है। शिकार की प्रवृत्ति जो अभी भी अल्प मात्रा में शेष है, वह सिर्फ वनग्रामों तक ही सीमित है। अब बैगा जनजाति पूर्णतया खेती की ओर अग्रसर है जिस कारण शिकार के लिए ज्यादा समय ही नहीं मिल पाता। दूसरी ओर जंगली जानवरों की संख्या भी बहुत तेजी से कम हो रही है और उनका शिकार करना प्रतिबंधित है जिसकी देखरेख के लिए वनकर्मी नियुक्त रहते हैं। जंगली सुअर, सांभर, चीतल, आदि का शिकार बैगाजन अपनी फसलों की रक्षा के लिए ही करते हैं और भालू की शिकार अपनी रक्षा के लिए करते हैं। बैगा गांव के अगरिया ने बताया कि अब बैगाजन पहले की अपेक्षा बहुत ही कम 'बिसार' (तीर के आगे का लोहे वाला भाग) खरीदते हैं और दिनो दिन इनकी मांग कम होती जा रही है जबकि अन्य कृषि उपकरणों में लगने वाले लोहे की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है। अब बैगा लोग मांस के लिए अपने पालतू पशुओं जैसे सुअर, बकरा व मुर्गा-मुर्गी पर ही आश्रित है। अब बैगाजन पर्याप्त मात्रा में अन्न पैदा कर लेते हैं जिससे ये अपना भरण-पोषण करते हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जंगलों व जीव जन्तुओं की

लगातार घटती संख्या, वनकर्मियों का भय, समय का अभाव व कृषि की तरफ तेजी से रूझान आदि के कारण वनग्रामों के बैगाजनों की शिकार पर निर्भरता बहुत ही अल्प मात्रा में रह गई है।

वर्तमान समय में बैगा जनजाति का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। इसीलिए वनोपज अब इनका प्राथमिक नहीं वरन् द्वितीयक स्रोत बन गया है। जब से बैगा जनजाति ने स्थायी कृषि पद्धति को अपनाया है तब से इनके आस-पास वनों की संख्या तेजी से घटी है। बैगाजन अपने खेत के आसपास लगे हुए पेडों को धीरे-धीरे बडी चालाकी से साफ कर देते हैं। (गार्डर विधि द्वारा) और अपने खेत की परिधि बढ़ाते जाते हैं। इसके साथ-साथ नागर (हल), बख्खर, दतरी व अन्य कृषि उपकरणों तथा मकानों के निर्माण के लिए भी बैगाजन चोरी छिपे पेड़ों की कटाई करते हैं। वनोपज के मामले में बैगाजन हमेशा से शोषण का शिकार रहे हैं। ये लोग स्थानीय दूकानदारों, साहूकारों व व्यापारियों को वनोपज आधे मूल्य में बेंच देते हैं। ये लोग वास्तविक मूल्य से अनभिज्ञ होते हैं और ज्यादा बड़े कस्बे, नगरों में जाने की हिम्मत भी नही करते है। कई बार तो ऐसा होता हैं। कि जिस वनोपज को वे लोग आधे से भी कम मूल्य मे बेच देते हैं बाद में उसी को ये लोग दोबारा दुगने मूल्य में खरीदते है। जैसे महुए की बहार के समय ये लोग इसे तीन चार रूपये प्रति किलो के हिसाब से बेंच देते है, बाद में इसी महुए को 10-12रूपये प्रति किलो के हिसाब से खरीदते है।

पशुपालन के संबध में बैगा जनजाति के परिवर्तित स्वरूप के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि यह जनजाति अब सुअर पालन के साथ -साथ दूसरे पशुओ को भी पालने पर भी ध्यान दे रही है। अभी तक यही माना जाता था कि बैगा जनजाति एक सुअर पालक जनजाति है।और अन्य जानवर नही पालती क्यों कि बैगा लोग हल से खेती नही करते है, क्योकि 'नांगा बैगा' ने उन्हे हल से खेती न करने के लिए कहा था। परन्तु वर्तमान समय मे अर्थप्रधान समाज व खेती ही जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन होने के कारण बैगा जनजाति अपनी धार्मिक मान्यता के विरूद्ध तेजी से खेती की ओर अग्रसर है। इसी कारण अब इनमे गाय-बैल पालने की ललक ज्यादा है। दूसरी ओर अब पर्याप्त मात्रा में शिकार द्वारा मांस न

मिलने के कारण ये लोग दूध मट्ठा पर आश्रित होते जा रहे है जोकि पालतू पशुओं के द्वारा ही संभव है।अब बैगा जनजाति के लोग सुअर और बकरी केवल खाने और देवी- देवताओं पर चढाने के लिए ही नहीं पालते वरन् आवश्यकता पडने पर उनको बेंच भी लेते है।लगभग सभी बैगाजन मुर्गी पालते है। हालाँकि बैगाजन बडी मात्रा में मुर्गीपालन नही करते परन्तु अपनी आवश्यकतानुसार सभी लोग मुर्गी पालते है कुछ बैगाजन मुर्गियों के लिए छोटा सा घर भी बनाते है। जिसे गुडारी कहते है। व्यावहारिक दृष्टि से बैगाजन तीन उद्देश्यों के लिए मुर्गी पालते हैं-(1) देवी-देवताओ में बलि देने के लिए (2) स्वयं के खाने के लिए (3) बेचने के लिए। चूँकि जंगली इलाको में शाक-भाजी ज्यादा नही होती है, इसलिए बैगाजन मुर्गा अण्डे आदि के द्वारा इसकी पूर्ती करते है। इनके आसपास रहने वाली जनजातियाँ, जातियाँ व व्यापारी लोग भी इनसे मुर्गा मुर्गी अण्डे खरीदकर ले जाते है स्कूलों मे अध्यापक, स्वास्थ्यकर्मी, वन विभाग के कर्मचारी व अधिकारी एवं नगर-कस्बे के लोग भी इनसे देशी अंडे व मुर्गा खरीदते है।

प्रारम्भ में बैगाजन हल से खेती करना पाप समझते थे क्योकि उनका विश्वास था कि नांगा बैगा ने सृष्टि के प्रारम्भ में जंगल काटकर और जलाकर बोने का निर्देश दिया था तथा धरती को माता के समान मानने के कारण उस पर हल चलाना महा पाप समझते थे। 1867 के पहले तक बैगाजन केवल कुल्हाडी से खेती करते थे। 1887 में ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार की कृषि- प्रणाली पर रोक लगा दी तथा कहा कि केवल राज्य सरकार की अनुमति से ही इस प्रकर की खेती की जा सकती है। परन्तु सरकारी नियन्त्रण के बावजूद सरगुजा, जशपुर, शहडोल, मंडला बालाघाट, बस्तर, बिलासपुर, बैतूल छिंदवाडा, दुर्ग के पर्वतीय क्षेत्रो में स्थानान्तरण कृषि की जाती रही। 1948 मे इस कृषि प्रणाली पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया, परन्तु मंडला जिले में बैगाचक,बस्तर मे अबुझमाड व कुछ अन्य पर्वतीय क्षेत्रो मे इस प्रथा के लिए जनजातियों को अनुमति दी गई क्योकि इन क्षेत्रो की जनजातियो के जीविकोपार्जन के लिए कृषि उपत पर्याप्त नही थी। आज बैगा जनजाति मे बेवर खेती (स्थानान्तरति) अतीत की खेती बनकर रह गई है। यह बैगाओं के लिए पूर्णतया अस्तित्वहीन हो गई है। यह समय है कि किसी

समय विशेष में बैगाओं में इस प्रकार की खेती का प्रचलन अवश्य रहा है। जिसके पीछे वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ व धार्मिक कारक उत्तरदायी रहे है। शोध के लिए चयनित गाँवो का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि प्रारम्भ में यहाँ हल- बैलो से खेती की ही नही जा सकती थी। यहाँ की भूमि में पत्थर व जंगल इतनी मात्रा मे थे की हल चलाना सम्भव ही नही था दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि जमीन समतल न होकर घटियों व पहाडों की ढालानो पर है जहाँ अभी भी हल चलाने मे कठिनाई होती हैं। बैगाजनो के पास जो भी वर्तमान मे खेत है, वे बेवर खेती के फलस्वारूप ही है। स्थानान्तरित खेती में बार बार पेड-पौधो व झाडियो को काटने पर, वहाँ की जमीन साफ हो गई और यही बाद मे इनक स्थाई खेती बन गई। आज सभी गाँवो के बैगाजन हल बैलों से खेती करते है और इनकी धार्मिक मान्यता का बिल्कुल पतन हो चुका है कि धरती पर हल चलाना पाप हैं। अब बैगा जनजाति पूर्णतया स्थाई खेती करने वाली जनजाति मे परिवर्तित हो गई है।

सर्वेक्षित गाँवो के बैगाजनो के पास जो खेत है, वे अधिकांशतया सरकार द्वारा दिये गये है। कुछ ऐसे भी बैगाजन हैं। जिन्होने जंगलो को काटकर अपने खेत बनाये हैं और बाद मे सरकार ने वे खेत उन्ही के नाम कर दिये। वनग्राम के बैगाजनो को वन विभाग द्वारा जो भूमि दी गई है वह अस्थाई पट्टे के रूप बनग्राम के बैगाजनो को जो भूमि दी गई है वह स्थाई लिखित पट्टे के रूप मे है। वनग्राम के बैगाजनों की भूमि संबंधी जानकारी वनरक्षक के पास रहती है, वही पुरानी भूमि का नवीनीकरण व नई भूमि का आवंटन भी करता हैं। जबकि राजस्व ग्राम में यह कार्य पटवारी (लेखपाल) करता हैं। सर्वेक्षित गांव मे बहुत से बैगा परिवार ऐसे भी है जिनके पास एक भी भूमि नही है। ऐसे परिवार अपने आसपास रहने वालेजातियों व जनजातिों की खेती अधिया पर लेकर उस पर खेती करने है। इसीलिए ऐसे परिवार भी खेती न होते हुए भी गाय-बैल आदि जानवर पालते है क्योकि खेती बिना पशुओं के नही हो सकती। ऐसे बैगा परिवार जिनके पास भूमि बहुत ही कम है, वे भी दूसरे की खेती अधिया पर लेते है। अधिया पर खेती लेने की पद्धति बैगाजनो ने अपने आसपास रहने वाली

कृषक जातियों से सीखा है। वनग्रामों के ऐसे बैगा परिवार जिनके पास अस्थाई पट्टा नही होता, वे 'ठलुवा परिवार' कहलाते है। अधिया पर खेती देन वाला व्यक्ति खेत में बोने के लिये बीज भी देता है और किस खेत में कौन सी फसल बोनी है, यह उसी पर निर्भर करता है। वैसे जो लोग अपनी खेती अधिया पर देते है वे नगदी फसल ही बोने की सलाह देते है। क्योकि इससे दोनो को फायदा रहता है।

सर्वेक्षित गांवो के बैगाजन अपने परम्परागत साधनो यानि हल-बैल से ही खेती करते है। मात्र तीन शिक्षक बैगा परिवार है जिनके पास अपने निजी ट्रैक्टर है जिनके कुछ अन्यि बैगाजन भी पैसे देकर अपनी खेती करवा लेते है। बैगाजनों के कुछ कृषि उपकरण अटन्य कृषक जातियों से भिन्न है जैसे-'दतरी'। यह कृषि उपकरण विशेष रूप से वनग्रामो मे ही देखने को मिलता है।बनग्रामो मे लकडी की अधिकता के कारण,यहाँ के बैगाजन अरहर, सरसो, आदि के तनो को नीचे से नही काटते वरन् ऊपर की फली-फली ही काटते है ओर बाकी तना खेत में ही लगा रहता हैं जो बाद में कचरे के रूप में एकत्र हो जाता है जिसे जुताई के समय दतरी के द्वारा हटाया जाता है। वनग्रामों के खेतो मे जंगली पेंड-पौधो, झाडियाँ भी बहुत जल्दी उगती है जिनके हटान मे दतरी काम आती है। दतरी पूर्णतः काष्ठ की बनी होती है। इसमे एक मोटा लट्ठा रहता है जिसमे कई नुकीले डंडे घुसे रहते हैं। बैगाजनो को लकडी की अधिकता के कारण घरों के निर्माण में अरहर क तनो की आवश्कता नही पडती।

बैगाजन सबसे पहले अपने खेतों को हल से जोतते है जबकि ग्रामीण अंचलो में सबसे पहले खेत को बख्खर से जोता जाता है। इसका कारण यह है कि यहाँ के खेतों मे सरसात के बाद इतना चारा उग जाता है कि उसको बख्खर से नही जोता जा सकता। यहाँ की अधिकांश भूमि पत्थयुक्त है जो चारे के साथ जमीन में बैठ जाते है अतः पहले हल से जोतकर जमीन का हल्का कर दिया जाता है, फिर उसमे बख्खर चलाया जाता हैं। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि कुछ बैगाजन गायों से खेती करते है। इसका कारण यह कि कुछ

बैगाजन गरीबी के कारण बैल नही खरीद पाते। कई बैगाजन ऐसे भी मिले जो एक तरफ बैल व एक तरफ गाय को फांदकर खेती करते है।

सर्वेक्षित गाँवो के सभी बैगाजन धान (चावल), कोदो, कुटकी, मक्का, अरहर, रमतिला व सरसो की फसल बोते है। जल्दा, बौना और पिपरिया गाँव के बैगाजन गेहूँ, चना, मसूर आदि की फसलें नही बोते जबकि पचगांव रैयत के बैगाजन ये तीनों फसलों और बोने लगे है। इसका कारण यह कि पचगांव रैयत के बैगाजनो के खेत अन्य कृषक जातियों (गोंड, यादव व अन्य जातियाँ) से जुडे हुए है और यहाँ के काफी बैगाजन इन जनजातियों व जातियों की खेती अधिया पर लेतेहै।अतः यहाँ बैगाजनों ने इनके खेती करने के गुणों को पूरी तरह से आत्मसात् कर लिया है। इसके विपरीत जल्दा, बौना और पिपिरिया गांव के बैगाजनों का सम्पर्क कृषक जातियों से कम हुआ है और यहाँ के खेत भी थोडा जड प्रकृति के है। जल्दा, बौना एवं पिपरिया गांव के बैगाजन अपनी सभी फसलों को छीटकर बोते है, जबकि पचगांव रैयत के बैगाजन फसलों को बोने मे बऊका (बोने वाला लकडी का उपकरड)का प्रयोग भी करने लगे है।

प्रस्तुत अध्ययन का षष्टम अध्याय सरकारी योजनाओ और सुविधाओं से सम्बन्धित है। इस अध्याय के दूसरे खण्ड में आदिवासी और नक्सलवाद की चर्चा भी की गयी है। मध्य प्रदेश सरकार बैगा जनजातियों को विशेष पिछडी जनजाति की श्रेणी मे रखा है। बैगा जनजाति के विकास के लिए 1978-79 में बैगा विकास अभिकरण का गठन किया गया जिसका एक मुख्यालय डिंडौरी में है। यहाँ से बैगाओ के विकास के लिये समय-समय पर अनेक योजनायें संचालित की जाती है। अन्त्योदय योजना के तहत बैगाजनो को अति न्यूनतम दामों में अन्न उपलब्ध कराया जा रहा है। आँगनवाडी केन्द्रो के द्वारा गर्भवती महिलाओं व बच्चों को दलिया प्रदान किया जा रहा है जिससे महिलाएँ कुपोषण का शिकार न हों। इसके अतिरिक्त गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवारों में जन्मी लडकियों के लिये 500रूपये बैक में जमा किये

जाते है। जो उसके भविष्य में काम आते है। बैगाजनों का शोंषण से बचाने के लिये प्रशासन ने तेन्दूपत्ता तुडाई के समय तेन्दू पत्ता कार्ड की व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त अनेक बैगाजन कृषि व अन्य कार्यो के लिये बैंक से ऋण लेने लगे है।

7.1 सुझाव

बैगा आदिवासियों की व्यवसायिक एवं आर्थिक संरचना को सुदृढ़ करने हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं :-

1. बैगा आदिवासियों को उनके अधिवासों के निकट वनोंत्पादो को संग्रहीत करने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए ।
2. आधुनिक कृषि व्यवस्था का ज्ञान समय-समय पर उन्हें दिया जाना चाहिए तथा निःशुल्क / न्यूनतम दर पर आधुनिक कृषि यंत्र उपलब्ध कराये जाने चाहिए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके।
3. बैगाओं द्वारा उनके उत्पादों के विक्रय हेतु समुचित केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए जिससे उनके उत्पादों का उचित मूल्य इन्हें प्राप्त हो सके।
4. बैगाओं को न्यूनतम दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे वे अपने परम्परागत व्यवसाय को समुचित ढंग से संचालित कर सकें।
5. शासन द्वारा बैगाओं को शोषण मुक्त कराने हेतु समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
6. शासकीय योजनाओं का प्रचार-प्रसार एवं इनके शिक्षण हेतु समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

सन्दर्भ - ग्रन्थ

परिशिष्ट

ग्रन्थ

1 **Atal, Yogesh** : Adivasi Bharat, Rajkamal Prakshan, Delhi. 1965

2 **Bose, N.K.** : Tribal Life in India, National Book Trust, New Delhi 1971.

3 **Beteille, Andre** : The Definition of Tribe' Tribe Caste and Religion by Romesh Thaper, Mc-Millan and Co. 1977. P.8 -

4 **Dube, S.C.** : The Kamar, Universal Publishers, Lucknow, 1951

5 **Desai, A.R.** : Rural India in Transition, 1961. P.51-52

6 **Disuja, Alfred** : 'Sone Social and Economic determinates of Leadership in India', The Politics of Change and Lead earship Development (ed.) New Delhi, 1978.

7 **Elvin, Verrier** : Myths of Middle India, Oxford University Press, Geoffery cambridge, 1947.

8 **Elvin, Verrier** : The Baiga, Jhon Murray London, 1939

9 **Elvin, Verrier** : The Aboriginals, Oxford University Press Bombay, 1943. P.7-11

10 **Elvin, Verrier** : The Muriya and Their Ghotul, 1947

11 **Grigson, W.G.** : The Maria Gonds of Bastar, Oxford University Press, London, 1938.

12 **Griffith,W.G.** : The Kol Tribe of Central India, Royal Asiatic Society of Bengal, Culcutta,1946.

13 **Goode,W.J. and Hatt, Paul K.** : Methods in Social Research, Mc Graw Hill Book Co. Inc.New York, 1952 P.119

14 **Ghurye,G.S.** : The Scheduled Tribes, 1959.

15 **Ghurye, G.S.** : Caste, Class and Occupation, 1961

16 **Hutton, J.H.** : Caste in India, Oxford University Press, 1946.

17 **Hasan, Amier** : The Kols of Patha, Kitab Mahal, Allahabad, 1971

18 **Kothari, Rajni** : Politics in India, Orient Longman, New Delhi 1970. P. 282

19 **Majumdar, D.N.** : Races and Culture of India, Bombay : Asia Publishing House, 1921.P. 367-368

20 **Majumdar, D.N.** : Matrix of Indian Culture, The Universal Pulishers Ltd. Lucknow. 1947

21 **Majumdar, D.N.** : The Affairs of a Tribe : A Sudy in Tribal Publishers Ltd. Lucknow, 1947

22 **Majumdar, D.N. and Madan** : An Introduction Social Anthropology, Asia Publishing House.

23 **Moser, C.A.** : Survey Methods in Social Investigation, 1958.

24 **Nail, T.B. and Bhouraskar,K.M.** : Changing Tribes, Tribal Research Institute, Chhindwara, 1961

25 **Naik, T.B.** : 'What is Tribe' Collecting Definition in Applied Anthropology of India (ed.) L.P. Vidyarthi, 1968 P.86

26 **Pearson, Karl** : The Grammer of Science, A and C Black, London, 1911 P.1

27 **Prasad, N** : Land and People of Tribal Bihar, Tribal Research Institute, 1961

28 **Patel, G.P.** : 'Traditional Treatment in Baiga Tribe' Bullitin of Tribal Research and Development Bhopal, P.13-19

29 **Russell, R.V. and Heeralal** : Tribes and Castes of Central Provinces of India, 4 Vols, Macmillan and Co. London, 1916

30 **Roy, S.C.** : The Oraon Religion and Custiom, 1926

31 **Saha, P.G.** : Tribal Life in Gujrat, Gujrat Research Society. Bombay, 1964.

32 **Sacjcjodanand** : The Tribal Village in Bihar, A Study in Unity and Extension, Oriental Publishers, New Delhi. 1968.

33 **Troisi, J.** : 'Tribal Leadership in Bihar : The Problems of Continuity and Change : The Politics of Change and Leadership Development (ed.) New Delhi,1978.

34 **Vidyarthi,L.P.** : Cultural Contours of Tribal Bihar, Punthi Pustak, Calcutta, 1965.

35 **Young, P.V.** : Scientific Social Survey and Reserarch, Asia Publishing House, Bombay,1969.

36 उप्रेतीए हरिशचन्द्र : भारतीय जनजातियाँ : संरचना एवं विकास : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2002 प्र.1-22

37 श्रीवास्तव, ए.आर.एन. : भारत की जनजातियाँ, के.के. पब्लिकेसन्स, कटरा इलाहाबाद, 2002

38 गुलाब, शेख एवं निरगुणे, बसंत : 'गोड़' आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल

39 गुगालिया, एस.एस. : ''मालवी कथाएँ'' आदिवासी लोककला परिषद भोपाल

40 चौरसिया, विजय : प्रकृति पुत्र बैगा'' मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 2004 पृ. 1-5, पृ. 12-20

41 जौनसारी, वतन सिंह : अरूणाचल, आदिवासियों की विचित्र दुनिया' पवर्ततीय आदिम जाति कार्यालय, कालसो, देहरादून 1984

42 दुबे, श्यामाचरण : मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960

43 देवांगन, लक्ष्मीनारायन : 'बस्तर की गोंड जनजाति में शवाधान प्रथा', वन्यजाति भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नई दिल्ली, अप्रैल 2004.

44 निरगुणे, बसंत : सहरिया, मध्य प्रदेश आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल, 1987-88.

45 निरगुणे, वसंत : बैगा, आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल 1986

46 निरगुणे, वसंत : ''जनजाति और लोक संस्कृति'' ट्राईब जनजाति कला एवं संस्कृति विशेषांक, माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, अशोक नगर, उदयपुर, 2001, पृ.19

47 नैयर, विकास : जनजातीय क्षेत्रों में बालिका शिक्षा, 'कुरूक्षेत्र' ग्रामीण विकास मन्त्रालय, नई दिल्ली, अक्टूबर 2004 पृ. 55

48 पाटिल, अशोक डी. : कोरकू जनजीवन, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर, 1993

49 पाटिल अशोक डी. : भील जनजीवन और संस्कृति, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1991

50 महावर, निरंजन : देवार, मध्य प्रदेश आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल 1986

51 मीणा, लक्ष्मीनारायण : 'मीणा जनजाति एक परिचय' मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1991

52 मिश्र, श्रीनिवास : 'कोल आदिवासियों के विकास पद पर बढ़ते कदम' वन्यजाति, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नई दिल्ली, जुलाई, 2003

53 राय, शचीन एवं अग्रवाल, ऊषा : हमारे सीमा निवासी मित्र, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ नई दिल्ली, 1971.

54 वर्मा, चन्द्रकांत एवं नारायण कामेश्वर : ''आनन्द प्राप्ति का एक पर्व टूसु'' , वन्यजाति, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नई दिल्ली, अक्टूबर 2004 पृ.55

55 शुक्ल, नवल : दंडामी माड़िया, मध्य प्रदेश लोककला, परिषद भोपाल, 1988

56 शर्मा, निर्मला : 'बुन्देलखण्ड की सहरिया जनजाति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी, 1988, पृ. 15-18

57 शुक्ल, हीरालाल : आदिवासी अस्मिता और विकास, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकामदी, भोपाल, 1997 पृ.1-20

58 शांडिल्य, महेशचन्द्र एवं निरगुणे, वसंत : कोरूकू, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल

59 शुक्ल, नवल : मुरिया, आदिवासी लोककला परिषद भोपाल

60 सिन्हा, अनिल किशोर : मध्य प्रदेश की आदिम जनजातियाँ, के.के. पब्लिकेशन्स, कटरा इलाहाबाद, 1998 पृ.7, 46-47

61 जनगणना पुस्तिका : 2001

62 सांख्यिकी पत्रिका : डिण्डौरी जनपद 2006

Reports

1 World Development Report, Oxford University 1987

2 Report of the commissioner for Sc/St 28th Repord, New Delhi 1986-87

3 Report of the study team on over dues of cooperative credit societies, RBI, 1974

4 डोगरा, भारत : पाठा, सूखे खेत प्यासे दिल, (समाज के कमजोर तबके को संसाधनों से वंचित रखने व उनके शोषण पर एक रिपोर्ट पाठा क्षेत्र के सन्दर्भ में), 1991

5 सिंह, हजारी पंकज : धरती का दर्द, रिपोर्ट अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान, मानिकपुर 1993

6 डोगरा, भारत : बंधुआ मजदूरी की जंजीरें तोड़ने का एक प्रयास - एक रिपोर्ट, 1992

7 मध्य प्रदेश वार्षिकी : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग म.प्र.भोपाल

वर्ष 2004-05 : पूर्वोक्त

वर्ष 2005-06 : पूर्वोक्त

8 सांख्यकीय पत्रिका : जनपद डिण्डौरी, अर्थ एवं संख्याधिकारी

वर्ष 2004-05 : पूर्वोक्त

वर्ष 2005-06 : पूर्वोक्त

9 जनगणना पुस्तिका : खण्ड I, II, III, IV

वर्ष 2001 : पूर्वोक्त

10 मोहिनी गिरि : आदिवासी महिलाओं का उत्पीड़न देश के लिए शर्मनाक-राष्ट्रीय सहारा, लखनऊ, 28 मई 1997

11 ''पंचायतों को अधिकार देने में दो विभागों ने एतराज जताया'' अमर उजाला, 30 मई 1997

12 ''गाँव अब भी संभावनाएं हैं'' अमर उजाला 7 जून 1997

13 '' 1997-98 शिक्षा वर्ष के रूप में मनाने का संकल्प लक्ष्य प्राप्ति हेतु ग्राम शिक्षा समितियों की सक्रिय भूमिका जरूरी'' दैनिक जागरण, कानपुर 9 जून 1997

14 ''प्रदेश में ग्राम पंचायतों को अधिकार के नाम पर झुनझुना'' अमर उजाला 9 जून 1997

15 भट्ट राधा (सम्पादक) : Man and Himalaye, Himalya Seva Sangh, New Delhi, March 1998

16 भट्ट राधा (सम्पादक) : June 1998

17 डोगरा भारत : आतंक के साये में आशा, अ.भा.स.से.सं. पर एक रिपोर्ट

18 डोगरा भारत : फाइटिंग टरेर, प्रोटेक्टिंग डिग्निटी ए.बी.एस.एस.एस. गिज कोल ट्राइबल न्यू होप

19 डोगरा, भारत : नेचुरल रिसोर्सेज बेस्ड प्लानिंग फार पावर्टी एलिविएशन विद स्पेशल एम्फैसिस आन दि शेल आफ वमेन, अ.भा.स.से.सं. पर एक रिपोर्ट

पत्र - पत्रिकाएँ

1 डा.मैल्कम, एस.आदिशेषैया : भारतीय अर्थव्यवस्था के चालीस वर्ष, पाक्षिक योजना, 1987

2 यूनाइटेड नेशन्स इण्टरनेशनल साशेल डेवलपमेण्ट रिव्यू. 1984

3 देवेन्द्र बाबू एम. : टैक लिंग रूरल पावर्टी योजना 1986

4 जोगी, अजीत : आदिवासी-अनुसूचित जाति कल्याण कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए गठित समिति का प्रतिवेदन

मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, 1988

5 पालीवाल, चन्द्रमोहन : आदिवासी-हरिजन आर्थिक विकास बस्तर जिले के सन्दर्भ में, नार्दन बुक सेण्टर, नई दिल्ली 1986

6 हसन अमीर : स्मारिका : उ.प्र. के जनजातीय लोग, 1969

7 **Hasan Amir** : Meet the tribles of U.P.Social Welfare, New Delhi, October 1968

8 **Hasan Amir** : A study of Education Among the Kols of U.P. Eastern Anthropologist, Lucknow April, 1968

Occupational Pattern of Kols of U.P. Khadigramudyog, Bombay August 1967

A Socio-Economic : Study of Banda Kolins, Social Welfare New Delhi, April 1967

9 गौतम, अवधेश : अथाई, मासिक पत्रिका जुलाई 1997, पंचायत सन्दर्भ केन्द्र बाँदा

10 साख्यिकी पत्रिका : जनपद डिंड़ौरी 2006

अप्रकाशित सामग्री

1	पाण्डेय मनोहर राम	:	जनजातीय विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं आकांक्षाओं के सामाजिक पक्ष,शोध प्रबन्ध, काशी विद्यापीठ 1981
2	सिंह, रामबली	:	भूमिहीनों में वर्ग जागरूकता तथा संघर्षात्मक एवं राजनीतिक सहभागिता, शोध प्रबन्ध, काशी विद्यापीठ 1989
3	नाग, जसवन्त	:	पाठा के कोलों में राजनीतिक चेतना एवं सहभागिता, शोध प्रबन्ध, काशी विद्यापीठ, 1988
4	सिंह, इन्द्रपाल	:	पाठा के बन्धुआ कोल, लघु शोध प्रबन्ध, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
5	रजक, शालिग राम	:	बुन्देलखण्ड प्रदेश : परिवहन का समाजार्थिक प्रभाव, शोध प्रबन्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, 1989
6	नाग, सुधा	:	ग्रामीण हरिजन महिलाओं में राजनीतिक चेतना, 1989, काशी विद्यापीठ
7	नाग, सुधा	:	आदिवासी कोल महिलाएं 1998 म.गांधी वि.पी. वाराणसी
8	डा0 स्वामी प्रसाद	:	कोल जनजाति के विकास के अवरोध कारक (पाठा क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

साक्षात्कार-अनुसूची

गोपनीय

बैगा आदिवासियों की आर्थिक संरचना का विश्लेषणात्मक अध्ययन
(मध्य प्रदेश प्रान्त के डिण्डौरी जनपद के विशेष संदर्भ में)

शोध निर्देशक
डॉ0 किशन कुमार

शोधार्थी
देवेन्द्र कुमार खरे

साक्षात्कार अनुसूची

1 वैयक्तिक विवरण

1. नाम ....

1.2 पिता/ पति का नाम ....

1.3 निवास स्थान ....

1.4 आयु ....

1.5 शिक्षा - अशिक्षित/ प्राइमरी/ जू.हा./ हाईस्कूल/ इण्टरमीडिएट/ ग्रेजुएट/ अन्य

1.6 वैवाहिक स्थिति - विवाहित / अविवाहित / विधुर/ विधवा

1.7 पारिवारिक जानकारी -

क्र.सं.	सदस्यों के नाम	मुखिया से सम्बन्ध	लिंग	आयु	वैवाहिक स्थिति	शिक्षा	व्यवसाय	मासिक आय	अन्य

1.8 आपका मकान कैसा है ?

(1) झोपड़ी (2) कच्चा (3) अर्द्ध पक्का (4) पक्का (5) अन्य

1.9 पहले आपका मकान कैसा था ? ....

1.10 आपका परिवार कैसा है ? (1) एकाकी (2) संयुक्त

1.11 आपके घर का मुखिया कौन है ?

(1) पिता (2) माता (3) स्वयं (4) पत्नी (5) अन्य

1.12 क्या किसी परिस्थिति में स्त्री मुखिया हो सकती है ? ....

1.13 आपके यहां घर के मुखिया का आधार क्या होता है ?

(1) जो घर में सबसे बड़ा हो, वही मुखिया बनता है ।

(2) जो परिवार का भरण-पोषण करने में सक्षम हो ।

(3) उपरोक्त दोनों

(4) अन्य कोई आधार

2. सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवरण

2.1 आपके गांव में कौन-कौन सी जातियाँ निवास करती हैं ?

2.2 आप अपने से तीन ऊपर की जातियों/ जनजातियों के नाम बतायें ?

(1)......................... (2)......................... (3)...................

2.3 आप अपने से तीन नीचे की जातियों के नाम बतायें ?

(1)......................... (2)......................... (3)...................

2.4 आपका प्रमुख भोजन क्या-क्या है ?

(1) कोदो (2) कुटकी (3) मक्कां (4) कांदा (5) रोटी

(6) रोटी (7) अन्य

2.5 भोजन बनाने में आप निम्न में से किसका प्रयोग करते हैं ?

(1) लकड़ी (2) कंड़े (3) स्टोव (4) गैस (5) अन्य

2.6 (अ) क्या आपके यहाँ एक से अधिक पत्नी रखने का विधान है ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किन परिस्थितियों में ?

(1) पत्नी पत्नी की मृत्यु होने पर (2) पहली पत्नी से बच्चे न होने पर

(3) सामाजिक प्रथाओं के निर्वाह हेतु (4) अन्य कारण

(स) यदि हाँ तो क्या यह नियम पहले की अपेक्षा कमजोर पड़ता जा रहा है ? हाँ/ नहीं

(द) क्या आपके एक से अधिक पत्नी हैं ? हाँ/ नहीं

2.7 क्या किसी स्त्री के एक से अधिक पति हो सकते हैं ? हाँ/ नहीं

2.8 आपके समाज में स्त्रियों की स्थिति कैसी है ?

(1) पूर्णतया पुरूषों के अधीन (2) पुरूषों के समान

(3) पुरूषों से अधिक स्वतन्त्र (4) पूर्णतया स्वेच्छाचारी

2.9 आपके यहाँ विवाह की न्यूनतम आयु क्या है ?

(अ) वर - 10/ 15/ 20/ 25/ 30

(ब) कन्या - 5/ 10/ 15/ 20/ 25/ 30

2.10 आपने कौन सा विवाह किया है ?

(1) मंगनी विवाह या चढ़ विवाह (2) उठवा विवाह (3) चोर विवाह

(4) पैठूल विवाह (5) लमसेना विवाह

2.11 वैवाहिक कार्यो का सम्पादन आपके समाज में कौन करता है ?

(1) पुरोहित (2) मुखिया (3) नाते-रिश्तेदार (4) अन्य

2.12 क्या आपके यहाँ दहेज प्रथा का प्रचलन है ? हाँ/ नहीं

2.13 क्या विधवा स्त्री विवाह कर सकती है ? हाँ/ नहीं

2.14 क्या विवाह में लड़कियों की सहमति ली जाती है ? हाँ/ नहीं

2.15 (अ) क्या आपके यहाँ कोई विवाहित पत्नी को छोड़ सकता है ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किन परिस्थितियों में ?

(1) पत्नी का चरित्र ठीक न होने पर

(2) पत्नी में भूत-प्रेत का चक्कर होने पर

(3) बच्चे न होने पर

(4) अन्य कारण

2.16 स्नान हेतु निम्नांकित में से किसका प्रयोग करते हैं ?

(1) काली मिट्टी (2) साबुन-शैम्पू (3) उपरोक्त दोनो (4) अन्य

2.17 आपके घर में निम्न में से कौन-कौन सी वस्तुएँ हैं ?

क्र.	वस्तुएं	क्र.	वस्तुएँ	क्र.	वस्तुएँ
1	स्टोव	2.	रेडियो	3.	अलमारी
4	गैस	5.	साइकिल	6.	टेप-रिकार्डर
7.	टी.बी.	8.	मोटर-साइकिल	9.	टेलीफोन
10.	ट्रेक्टर	11.	बन्दूक	12.	पंखे

2.18 (अ) क्या आपके गाँव में विद्यालय है ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि नहीं तो गांव से विद्यालय कितनी दूर पर है ? ....

(द) यदि हाँ तो निम्न में से कौन हैं ?

(1) प्राथमिक विद्यालय (2) जूनियर हाईस्कूल (3) हाईस्कूल (4) माध्यमिक

2.19 (अ) क्या आपके बच्चे पढ़ने जाते हैं ?

(ब) यदि नहीं तो क्यों ?

(1) स्कूल के दूर होने के कारण (2) आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण

(3) बच्चों में शिक्षा के प्रति रूचि न होने के कारण (4) पढ़ाई से कोई लाभ न होने के कारण

(5) पढ़ाई की अपेक्षा जीविका कमाना आवश्यक है (5) अन्य कारण

2.20 (अ) क्या आप लड़की को भी स्कूल भेजते हैं हाँ/ नहीं

(ब) यदि नहीं तो क्यों ? ....

2.21 (अ) परिवार के कितने बच्चों ने स्कूल जाना आरम्भ करने के बाद अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड दी ? (1) 1 (2) 2 (3) 3 (4) 4 (5) 5

(ब) शिक्षा बीच में ही छोड देने के किन्हीं तीन कारणों को बताइयें ?

(1)....................... (2)....................... (3)..................

2.22 (अ) क्या आपको सरकार द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ मिल रही हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किस प्रकार की ?

(1) छात्रवृत्ति की (2) छात्रावास की (3) निःशुल्क पुस्तकों की (4) उपरोक्त सभी

2.23 आप अपने बच्चों को निम्न में से क्या करना चाहेंगे ?

(1) कृषि (2) नौकरी (3) व्यवसाय (4) अन्य

2.24 आपके प्रमुख देवी/ देवता कौन-कौन से हैं ?

(1) ठाकुर देव (2) बघेश्वर देव (3) नाग बाबा (4) नारायण देव

(5) रात-माई (6) अन्न माता (7) वनजारिन माई (8) खैर माई (9) उपरोक्त सभी

2.25 (अ) क्या आप भूत-प्रेत पर विश्वास करते हैं ?

(ब) भूत-प्रेत को झाड़ने वाले या उतारने वाले को किस नाम से पुकारते हैं ? ....

2.25 क्या आप महामारी या अनिष्ट के पीछे मृत-आत्मा/ देवी-देवता का प्रकोप मानते हैं ? हाँ/ नहीं

2.27 (अ) क्या आप मृत आत्मा / देवी-देवताओं को प्रसन्न करने हेतु बलि देते हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किन-किन पशु-पक्षियों की ? ....

2.28 (अ) क्या कभी किसी धर्म के अनुयायियों द्वारा आपको धर्म परिवर्तित करने के लिये दबाब डाला गया था ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किस धर्म के द्वारा ? ....

2.29 आपके प्रमुख पर्व कौन-कौन से हैं ?

(1) बिदरी (2) हरेली (3) नवा (4) छेरता (5) जवारा

(6) होली (7) दीवाली (8) उपरोक्त सभी

3. आर्थिक एवं व्यावसायिक विवरण

3.1 आपके आर्थिक जीवन के प्रमुख आधार क्या हैं ?

(1) शिकार (2) जंगल (3) खेती (4) पशुपालन (6) उपरोक्त सभी

(7) अन्य

3.2 (अ) क्या पहले आपका आर्थिक जीवन पूरी तरह जंगलों पर निर्भर था ?

(1) हाँ (2) नहीं (3) नहीं मालुम

(ब) यदि हाँ तो अब क्यों नहीं ?

(1) जंगलों की संख्या घट गई (2) शिकार पर प्रतिबन्ध लग गया

(3) पहले व्यवस्थित कृषि का ज्ञान नहीं था (4) जंगलों को सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया

(5) पहले दूसरे समाजों से सम्पर्क न होने के कारण भरण-पोषण की वस्तुओं का निर्माण स्वयं करना पड़ता था। (6) उपरोक्त सभी

3.3 (अ) क्या जंगलों से प्राप्त वस्तुओं से आपका भरण-पोषण हो जाता है ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि नहीं तो क्या पहले हो जाता था ? हाँ/ नहीं

3.4 (अ) क्या आप पशु/ पक्षियों का शिकार करते हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो कौन-कौन से पशुओं का शिकार करते हैं ?

(1) साभंर (2) खरहा (3) बरहा (4) चूहा (5) उपरोक्त सभी

(स) कौन-कौन से पक्षियों का शिकार करते हैं ?

(1) हारिल (2) परेवा (कबूतर) (3) सुआ (4) कौआ (5) मोर (6) लीटिया

(7) बोकली (8) उपरोक्त सभी

3.5 शिकार का उद्देश्य क्या है ?

(1) केवल उदर पूर्ति (2) आर्थिक लाभ (3) मनोरंजन (4) उपरोक्त सभी

3.6 क्या आपको मालुम है कि सरकार ने शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया है ? हाँ/ नहीं

3.7 क्या आपको ऐसा लगता है जिन पशु: पक्षियों का शिकार आप करते हैं, उनकी संख्या लगातार घट रही है ?

3.8 शिकार करने के लिए आप कौन-कौन साधनों का प्रयोग करते हैं ?

(1) फंदे (2) तीर-कमान (3) लकड़ी के औजार (4) पत्थर के औजार

(5) लोहे के औजार (6) बन्दूक (7) अन्य

3.9 (अ) क्या आप स्थानान्तरित खेती (वेबर) करते हैं ?

(ब) यदि नहीं तो क्या पहले करते थे ?

(स) यदि हाँ तो अब क्यों बन्द कर दिया ?

(1) पहले व्यवस्थित कृषि का ज्ञान नहीं था ,

(2) इससे वनों की हानि होती है ।

(3) इस प्रकार की खेती से भरण-पोषण नहीं हो पाता

(4) उपरोक्त सभी

(5) अन्य कारण

3.10 आपके पास कितनी खेती है ?

(1) 2 हेक्टेयर (2) 4 हेक्टेयर (3) 6 हेक्टेयर (4) 8 हेक्टेयर (5) 10 हेक्टेयर

(6) इससे अधिक (7) बिल्कुल नहीं

3.11 आपको यह खेती कैसे प्राप्त हुई ?

(1) पूर्वजो से (2) सरकार द्वारा दी गई (3) जंगलों को काटकर स्वयं बनाया

(4) अन्य जातियों/ जनजातियों से खरीदा

3.12 खेती आप किससे करते हैं ?

(1) परम्परागत साधनों से (2) आधुनिक साधनों से (3) उपरोक्त दोनों से

3.13 (अ) आपकी खेती कैसी है ?

(1) सिंचित (2) असिंचित (3) उपरोक्त दोनों प्रकार की

(ब) यदि सिंचित है तो सिंचाई के साधन कौन-कौन से हैं ?

(1) नदी (2) नहर (3) नाला (4) ट्यूबवेल

(5) तालाब (6) कुआँ (7) स्वयं के पम्प द्वारा (8) अन्य

3.14 आप साल में कितनी बार फसल लेते हैं ?

(1) सिर्फ एक बार (2) दो बार (3) इससे अधिक

3.15 (अ) क्या आप मजदूरी का काम भी करते हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो किस प्रकार की मजदूरी (कूटी/ कवारी) करते हैं ?

(1) वनों में मजदूरी (2) कृषि मजदूरी (3) खदान में मजदूरी (4) ठेकेदार की मजदूरी

(5) सरकारी कार्यो में मजदूरी (6) उपरोक्त सभी (7) अन्य प्रकार की

3.16 आपकों मजदूरी कैसे प्राप्त होती है ?

(1) साप्ताहिक (2) माहवार (3) तिमाही (4) छमाही (5) सलाना

3.17 क्या आप मजदूरी को अपनी मर्जी से छोड़ सकते हैं ? हाँ/ नहीं

3.18 (अ) क्या आप बंधुआ मजदूर हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो कितने वर्षो से ....

3.19 (अ) क्या आपके बच्चे भी मजदूरी कार्य हेतु जाते हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हाँ तो कहाँ जाते हैं ? ....

(स) किस प्रकार के कार्य करते हैं ? ....

(द) कितनी मजदूरी मिलती हैं ? ....

(य) कितने घण्टे काम करते हैं ? ....

3.20 कृषि व वनोपज के अलावा अन्य कोई कुटीर उद्योग जिससे आपको आर्थिक मदद मिलती है ?

(1) बांस की टोकनियाँ (2) जड़ी-बूटी संग्रह (3) फंदा निर्माण (4) अन्य

3.21 (अ) क्या आप ऋण/ कर्ज भी लेते हैं ? हाँ/ नहीं

(ब) यदि हॉ तो किससे ?

(1) किसी सरकारी संस्था से (2) बैंक से (3) दुकानदार/ साहूकार से

(4) बड़े भूस्वामियों से (5) नाते-रिश्तेदारों से (6) अन्य से

3.21 कर्ज किसलिए लेते हैं ?

(1) दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु (2) रोजगार हेतु (3) लड़का/ लडकी के विवाह हेतु

(4) सामाजिक प्रथाओं के निर्वाह हेतु (5) नशा आदि के लिये (6) अन्य

3.22 कर्ज कैसे चुकाते हैं ?

(1) पैसे ब्याज में देकर (2) उसके घर में काम करके (3) अन्य प्रकार से

*****